मुखबंध

परिचय

कबीर साहब एक पंथ के प्रवर्त्तक थे। उनकी बहुत सी साखियाँ और भजन इस प्रांत के लोगों को स्मरण हैं। साखियाँ प्राय: कहावतों का काम देती हैं; भजन मंदिरों, समाजों और सत्संगों के अवसरों पर गाए जाकर लोगों को परमार्थ का पाठ पढ़ाते हैं; इसलिये उनसे कौन परिचित नहीं है? सभी उनको जानते हैं। किंतु जानना भी कई प्रकार का होता है। वे संत थे, उन्होंने अच्छे अच्छे भजन कहे, कबीर पंथ को चलाया, एक जानना यह है; और एक जानना यह है कि उनकी विचार-परंपरा क्या थी, वह कैसे उत्पन्न हुई, किन सांसारिक घटनाओं और कार्य्य-कलापों में पड़कर वह पल्लवित हुई, किन संसर्गों और महान् वचनों के प्रभावों से विकसित बनी। इन बातों का ज्ञान जितना हृदयग्राही और मनोरम होगा, उतना ही वह अनेक कुसंस्कारों और निर्मूल विचारों के निराकरण का हेतु भी होगा। अतएव पहली अभिज्ञता से इस दूसरी अभिज्ञता का महत्त्व कितना अधिक होगा, यह बतलाने की आवश्यकता नहीं। इस ग्रंथ में संगृहीत पदों और साखियों में आप जिन विचारों को पढ़ेंगे,

जिन सिद्धांतों का निरूपण देखेंगे, उनके तत्त्वों को उस समय और भी उत्तमता से समझ सकेंगे, जब आप यह जानते होंगे कि उनका रचयिता कैसा हृदय रखता था, और किन सामयिक घटनाओं के घात-प्रतिघात में पड़कर उसका जीवनस्रोत प्रवाहित हुआ था। कविता या रचना कवि-हृदय का प्रतिबिंब मात्र है। उसमें वह अपने मुख्य रूप में प्रतिबिंबित रहता है; इसलिये किसी कविता का यथातथ्य मर्म्म समझने के लिये रचयिता के हृदय-संगठन का इतिहास-पाठ बहुत उपयोगी होता है। हृदय-संगठन का इतिहास जीवन-घटना से संबद्ध है। अतएव यह बहुत उपयुक्त होगा, यदि मैं इन समस्त बातों का निरूपण इस ग्रंथ के आदि में किसी प्रबंध द्वारा करूँ। निदान अब मैं इसी कार्य्य में प्रवृत्त होता हूँ।

Birth childhood of Kabir Sahib

जन्म और बाल्य-काल X

रेवरंड जी० एच० वेसूकट, एम० ए०, वर्त्तमान प्रिंसिपल कानपुर क्रिश्चियन कालेज ने "कबीर ऐंड दी कबीर पंथ" नाम की एक उत्तम पुस्तक अँगरेज़ी भाषा में लिखी है। यह पुस्तक बड़ी योग्यता से लिखी गई है और अभिज्ञताओं एवं विवेचनाओं का आगार है। उक्त सज्जन इस ग्रंथ के पृष्ठ ३ में लिखते हैं—"यदि हम केवल उन्हीं कहानियों पर ध्यान देते हैं, जिनमें ऐतिहासिक सचाई है, तो हम पर ये सब बातें स्पष्टतया प्रकट नहीं होतीं कि कबीर का जन्मस्थान कहाँ है,

वे किस समय उत्पन्न हुए, उनका नाम क्या था, बचपन में वे कौन धर्मावलंबी थे, किस दशा में थे, उनका विवाह हुआ था या वे अविवाहित थे और कितने समय तक कहाँ कहाँ रहे। यह सत्य है कि उनके नाम पर बहुत सी कथा-वार्ताएँ कही जाती हैं। परंतु चाहे वे कितनी ही मन बहलानेवाली क्यों न हों, उन लोगों की आवश्यकताओं को कदापि पूरा नहीं कर सकतीं, जो वास्तविक समाचार जानने के इच्छुक हैं"।

श्रीयुत बाबू मन्मथनाथ दत्त, एम० ए० कलकत्ता-निवासी ने अँगरेजी में 'प्राफेट्स आफ इंडिया' नाम का एक सुंदर ग्रंथ लिखा है। उसका उर्दू अनुवाद बाबू नारायणप्रसाद वर्मा ने 'रहनुमायाने हिंद' के नाम से किया है। इस ग्रंथ के पृष्ठ २२३ के निम्नलिखित वाक्य में भी हम ऊपर के अवतरण की ही प्रतिध्वनि सुनते हैं—"उनकी सवानेह उमरी एक मुख़फ़्फ़ो इसरार है। हम उनके दौराने ज़िंदगी के हालात से बिल्कुल वाक़िफ़ नहीं हैं"।

परंतु मेरी इन सज्जनों के साथ एकवाक्यता नहीं है; क्योंकि प्रथम तो आगे चलकर श्रीयुत वेस्कट महोदय स्वयं निम्नलिखित वाक्य लिखते हैं, जिसका दूसरा टुकड़ा उनके प्रथम विचार का कियदंश में बाधक है—"आज तक जितनी कहानियाँ कही गई हैं, उनसे ज्ञात होता है कि कबीर काशी के रहनेवाले थे। यह बात स्वाभाविक है कि उनके हिंदू शिष्य जहाँ तक हो सके, उनका अपने पवित्र नगर से संबंध

दिखलाने की इच्छा करें। परंतु दोनों बीजक और आदि ग्रंथ से यह बात स्पष्ट है कि उन्होंने कम से कम अपना सारा जीवन काशी ही में नहीं व्यतीत किया।''

क० ए० क० पृष्ठ १८, १९

दूसरे जिस बात को कबीर साहब स्वयं स्वीकार करते हैं, उसमें तर्क-वितर्क की आवश्यकता क्या। उनके निम्नलिखित पद उनका काशी-निवासी होना स्पष्ट सिद्ध करते हैं—

'तू बाम्हन मैं काशी का जुलहा बूझहु मोर गियाना'।

आदि ग्रंथ, पृ० २६२

'सकल जनम, शिवपुरी गँवाया। मरति बार मगहर उठि धाया।'

आदि ग्रंथ, पृ० १७७

'काशी में हम प्रगट भए हैं रामानंद चेताए'।

कबीर शब्दावली, द्वितीय भाग पृ० ६१

मैं समझता हूँ कि यह बात निश्चित सी है कि पुनीत काशीधाम कबीर साहब का जन्मस्थान, उनकी माता का नाम नीमा और पिता का नाम नीरू था। दोनों जाति के जोलाहे थे। कहा जाता है कि वे इनके औरस नहीं पोष्य पुत्र थे। नीरू जब अपनी युवती प्रिया का द्विरागमन कराकर गृह को लौट रहा था, तो मार्ग में उसको काशी-अंक-स्थित लहरतारा के तालाब पर एक नवजात सुंदर बालक पड़ा हुआ दृष्टिगत हुआ। नीमा के कलंक-भय से भीत हो मना करने पर भी नीरू ने उस नवजात शिशु को ग्रहण किया और वह

उसे घर लाया। वही बालक पीछे इन दयामय दंपति द्वारा परिपालित होकर संसार में कबीर नाम से प्रसिद्ध हुआ।

यह किसका बालक था, लहरतारा के तालाब पर कैसे आया, इन कतिपय पंक्तियों को पढ़कर स्वभावत: यह प्रश्न हृदय में उदय होता है। इसका उत्तर कबीर पंथ के भावुक विश्वासी विद्वान् इस प्रकार देते हैं कि संवत् १४५५ की ज्येष्ठ शुक्ला पूर्णिमा को जब कि मेघमाला से गगनतल समाच्छन्न था, बिजली कौंध रही थी, कमल खिले थे, कलियों पर भ्रमर गूँज रहे थे, मोर, मराल, चकोर कलरव करके किसी के स्वागत की बधाई गा रहे थे, उसी समय पुनीत काशीधाम के तरंगायमान लहर तालाब पर एक अलौकिक घटना हुई; और वह अलौकिक घटना इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं थी कि उक्त तालाब के अंक में विकसे हुए एक सुंदर कमल पर आकाश-मंडल से एक महापुरुष उतरा। महापुरुष वही कबीर बालक था, जिसने कुछ घड़ियों पीछे पुण्यवती नीमा की गोद और भाग्यवान् नीरू का सदन समलंकृत किया।

उक्त प्रश्न का एक और उत्तर दिया जाता है, किंतु वह बहुत ही हृदयद्रावक है। वह अध:पतित हिंदू समाज से उत्पीड़ित, भयातुरा एक दु:खमयी विधवा की व्यथामयी कथा है। वह उस खिन्नमना, भग्नहृदया, अभागिनी, ब्राह्मण बाला की वार्त्ता है, जिसके उपयोगी अंक से कबीर जैसा लाल गिरकर एक ऐसे स्थान में जा पड़ा कि जहाँ से उसकी

परम हृदयोल्लासिनी ज्योतिर्माला फिर उसकी आँखों तक न पहुँची। तब भी मैं उसे एक प्रकार से भाग्यवती ही कहूँगा, क्योंकि उसका लाल किसी प्रकार सुरक्षित तो रहा। परम भाग्यहीना है वह हिंदू जाति और नितांत ही कुत्सित-कपाला है वह आर्य्य बाला, जिसके न जानें कितने एक से एक सुंदर लाल कुप्रथा के कुचक्र में पड़कर अकाल ही इस धराधाम से लुप्त हो जाते हैं और अपनी उस कमनीय आलोकमाला को विकीर्ण करने का अवसर नहीं पाते, जो पतनशील हिंदू समाज का न जाने कितना अंधकार शमन करने में समर्थ होती। आह! कहते हृदय दग्ध होता है कि तो भी हिंदू जाति वैसी ही निश्चल, निस्पंद है, वैसी ही विवेकशून्य और किं-कर्तव्य-विमूढ़ है, आज पाँच शतक बीत जाने पर भी उसकी मोह-निद्रा वैसी ही प्रगाढ़ है। कब उसकी यह समाजध्वंसिनी मोहनिद्रा विदूरित होगी, ईश्वर ही जाने।

कहते हैं कि स्वामी रामानंदजी की सेवा में एक दिन उनका अनुरक्त एक ब्राह्मण उपस्थित हुआ। उसके साथ उसकी विधवा पुत्री भी थी। जिस समय इस संकोचमयी विधवा ने विनीत होकर उक्त महात्मा के श्री चरण-कमलों में प्रणाम किया, उस समय अचानक उनके श्रीमुख से निकला--पुत्रवती भव। काल पाकर यह आशीर्वचन सफल हुआ और विधवा ने एक पुत्र जना। परंतु लोकलज्जा-वश, हिंदू समाज की रोमांचकारी कुप्रथा के निंदनीय आतंकवश, यह

सशंकिता विधवा अपने कलेजे पर पत्थर रखकर अपनी इस प्यारी संतान को त्याग देने के लिये बाध्य हुई। कुछ घड़ी पीछे लहर तालाब की हरी भरी शांतिमयी भूमि में इसे जोलाहा दंपति ने पाया, यह प्रसंग भी आप लोगों को अविदित नहीं है।

इन दो उत्तरों में से मुझे दूसरा उत्तर युक्तिसंगत और प्रामाणिक ज्ञात होता है। पहले उत्तर को श्रद्धा, विश्वास-वाले कबीरपंथी ही या उन्हीं के से विचार के कुछ लोग मान सकते हैं; परंतु दूसरा उत्तर सर्वमान्य और ऐतिहासिक है। उसको विजातीय और विधर्मी भी स्वीकार कर सकता है। यह कोई नहीं कहता कि कबीर साहब नीमा और नीरू के औरस पुत्र थे; और जब वे इनके औरस पुत्र नहीं माने जाते, तो यह अवश्य स्वीकार करना पड़ेगा कि किसी अन्य की संतान थे। और जब उनका अन्य की संतान होना निश्चित है, तो हम को बिना किसी आपत्ति के दूसरा उत्तर ही स्वीकार करना पड़ेगा। कहा जा सकता है कि दूसरे उत्तर में भी स्वामीजी के आशीर्वाद की एक अस्वाभाविक वार्ता सम्मिलित है; किंतु इस अंश का मुख्य घटना के साथ कोई विशेष संबंध नहीं है। यह अंश निकाल देने पर भी वास्तविक घटना की स्वाभाविकता में अंतर नहीं आता। मुझे ज्ञात होता है कि ब्राह्मण-विधवा के कलंक-भंजन अथवा कबीर साहब की जन्म-कथा को गौरवमयी बनाने के लिये ही स्वामी जी की आशीर्वाद-संबंधिनी वार्त्ता का इस घटना के साथ संयोग किया गया है।

कबीर साहब के बाल्यकाल की बातें किसी ग्रंथ में कुछ लिखी नहीं मिलतीं। कबीरपंथियों के ग्रंथों में इतना लिखा अवश्य मिलता है कि वे बाल्यकाल ही से धर्म्मपरायण और उपदेशनिरत थे। जन-साधारण के सम्मुख वे मुझे उस समय दिखलाई पड़ते हैं, जब उनको सुध-बुध हो गई थी और जब वे तिलक इत्यादि लगाकर राम-नाम जपने में लीन हो रहे थे। यह भी लिखा मिलता है कि इसी समय उनसे कहा गया कि तुम निगुरे हो; इसलिये जब तक तुम कोई गुरु न कर लोगे, तब तक तिलक-मुद्रा देने अथवा राम राम जपने से पूरे फल की प्राप्ति न होगी। यह एक हिंदू विचार है। इसमें एक अच्छे पथ-प्रदर्शक से अभिलाषित मार्ग में सहायता ग्रहण करने के सिद्धांत की ओर संकेत है। कथन है कि कबीर साहब पर लोगों के इस कहने का प्रभाव पड़ा और उन्हें गुरु करने की आवश्यकता समझ पड़ी। ये बातें भी यही प्रकट करती हैं कि जिस काल की ये घटनाएँ हैं, उस समय कबीर सुबोध हो चुके थे और बाल्यावस्था उत्तीर्ण हो गई थी।

मंत्र-ग्रहण

कबीर साहब हिंदू थे या मुसलमान, वे स्वामी रामानंदजी के शिष्य वैष्णव थे, या किसी मुसलमान फ़क़ीर के चेले सूफ़ी, इस विषय में, "कबीर ऐंड दी कबीर पंथ" के दूसरे अध्याय में उसके विद्वान् रचयिता ने एक अच्छी विवेचना की

है। मैं उनके कुल विचारों को यहाँ नहीं उठा सकता; परंतु उनके मुख्य स्थानों को उठाऊँगा और इस बात की मीमांसा करूँगा कि उनके विचार कहाँ तक युक्तिसंगत हैं।

उक्त ग्रंथ के २५-२६ पृष्ठ में एक स्थान पर उन्होंने लिखा है–

खजीनतुल असूफिया * में कहा गया है कि "शेख़ कबीर जोलाहा, शेख तकी के उत्तराधिकारी और चेले थे। वह अपने समय के महापुरुष और ईश्वर-वादियों के नेता थे। उन्होंने सूफियों के विसाल (ईश्वरमिलन) नामक सिद्धांत की शिक्षा दी और फिराक (वियोग) के संबंध में चुप रहे। यह भी कहा जाता है कि वे पहले मनुष्य हैं जिन्होंने परमेश्वर और उसकी सत्ता के विषय में हिंदी में लिखा। वे बहुत सी हिंदी कविताओं के रचयिता हैं। धार्मिक सहनशीलता के कारण हिंदू और मुसल्मान दोनों ही ने उन्हें अपना नेता माना। हिंदुओं ने उन्हें भगत कबीर और मुसल्मानों ने पीर कबीर कहा।"

इसके आगे चलकर उनका दूसरा अध्याय प्रारंभ होता है। उसमें उन्होंने इस ऊपर लिखे विचार की ही पुष्टि की है। पहले वे कहते हैं––

"संस्कृत के नामी विद्वान् विलसन साहब, जिनकी खोज के लिये प्रत्येक भारतवर्षीय धार्मिक विचारों का जिज्ञासु अँग-

---

* यह पुस्तक मौलवी गुलाम सरवर की बनाई हुई है और १८६८ ई० में लाहौर में छपी थी।

रेज धन्यवादरूपी ऋण से दबा है, लिखते हैं कि यह बात विचारविरुद्ध है कि कबीर एक मुसलमान थे, यद्यपि यह असंभव नहीं है। मैलकम साहब की इस अनुमति का कि वे सूफियों में से थे, विलसन साहब अधिक आदर नहीं करते। बाद के लेखकगण एक ऐसे विद्वान् पुरुष की सम्मति मान लेने में ही संतुष्ट रहे हैं और इनकी निष्पत्ति को उन्होंने निश्चित की हुई सत्य बात की भाँति स्वीकार कर लिया है।"

क० ए० क० पृष्ठ २९

इसके अनंतर नाभाजी के प्रसिद्ध छप्पय इत्यादि का अनुवाद देकर, जिसमें यह कहा गया है कि "कबीर साहब ने वर्णाश्रम धर्म्म और षट् दर्शन की कानि नहीं मानी" उन्होंने यह बतलाया है कि कबीर साहब ने किस प्रकार झाँसी-निवासी शेख तकी का शिष्यत्व स्वीकृत किया। तदुपरांत वे यह कहते हैं---

"हमने संभवतः पूरी तौर पर इस बात को सिद्ध कर दिया है कि यह असंभव नहीं है कि कबीर मुसलमान और सूफी दोनों रहे हों।...मगहर में उनकी कब्र है जो मुसलमानों के संरक्षण में रहती आई है। किंतु यह बात आश्चर्य्यजनक है कि एक मुसलमान हिंदी साहित्य का जन्मदाता हो। परंतु इसको भी नहीं भूलना चाहिए कि हिंदुओं ने भी फारसी कविता लिखने में प्रतिष्ठा पाई है। फिर कबीर साधारण योग्यता और निश्चय के मनुष्य नहीं थे। उनके जीवन का उद्देश्य यह था

कि अपनी शिक्षाओं को उन लोगों से स्वीकृत करावें, जो हिंदी भाषा द्वारा ज्ञान प्राप्त कर सकते थे।"

कबीर ऐंड कबीर पंथ, पृष्ठ ४४

कबीर साहब का मुसल्मान होना निश्चित है। उन्होंने स्वयं स्थान स्थान पर जोलाहा कहकर अपना परिचय दिया है। जब जन्मकाल ही से वे जोलाहे के घर में पले थे, तो उनका दूसरा संस्कार हो नहीं सकता था; उनके जी में यह बात समा भी नहीं सकती थी कि मैं हिंदू संतान हूँ। नीचे के पद्यों को देखिए। इनमें किस स्वाभाविकता के साथ वे अपने को जोलाहा स्वीकार करते हैं—

छाँड़े लोक अमृत की काया जग में जोलह कहाया।

कबीर बीजक, पृष्ठ ६०५

कहैं कबीर राम रस माते जोलहा दास कबीरा हो।

प्रथम ककहरा, चरण १५

जाति जुलाहा क्या करै हिरदे बसे गोपाल।
कबिर रमैया कंठ मिलु चुकै सरब जंजाल॥

आदि ग्रंथ, पृष्ठ७३७, साखी ८२

किंतु वे सूफी और शेख तकी के चेले थे, यह बात निश्चित रूप से स्वीकृत नहीं की जा सकती। श्रीयुत वेसकट ने अपने ग्रंथ में जितने प्रमाण दिखलाए हैं, वे सब बाहरी हैं। कबीर साहब के वचनों अथवा उनके ग्रंथों से उन्होंने कोई प्रमाण ऐसा नहीं दिया जो उनके सिद्धांत को पुष्ट करे। बाहरी

प्रमाणों की अपेक्षा ऐसे प्रमाण कितने मान्य और विश्वसनीय हैं, यह बतलाना व्यर्थ है। कबीर साहब कहते हैं—

भक्ती लायर ऊपजी, लाए रामानंद।
परगट करी कबीर ने, सात द्वीप नौ खंड ॥
चौरासी अंग की साखी, भक्ति का अंग।
काशी में हम प्रगट भए हैं रामानंद चेताए।

कबीर शब्दावली, द्वितीय भाग, पृष्ठ ६१

काशी में कीरति सुन आई, कबीर मोहि कथा बुझाई।
गुरु रामानंद चरण कमल पर धोबिन * दीनी वार ॥

कबीर-कसौटी, पृष्ठ ५

कबीर साहब के ये वचन ही पर्य्याप्त हैं, जो यह सिद्ध करते हैं कि वे स्वामी रामानंद के शिष्य थे। तथापि मैं कुछ बाहरी प्रमाण भी दूँगा।

धर्म्मदास जी कबीर साहब के प्रधान शिष्य थे। वे कबीर पंथ की एक शाखा के आचार्य भी हैं। वे कहते हैं—

काशी में प्रगटे दास कहाए, नीरू के गृह आए।
रामानंद के शिष्य भए, भवसागर पंथ चलाए ॥

कबीर-कसौटी, पृष्ठ ३३

फारसी की एक तवारीख दबिस्ताँ में मुहसिनफ़नी कश्मीरवाला, जो अकबर के समय में हुआ है, लिखता है—

---

* धोबिन अर्थात् माया।

"कबीर जोलाहे और एकेश्वरवादी थे। कोई आध्यात्मिक पथ-दर्शक मिले, इस इच्छा से वे हिंदू साधुओं एवं मुसल्मान फकीरों दोनों के पास गए; और अंत में जैसा कहा गया है, रामानंद के शिष्य हुए।"

कबीर ऐंड कबीर पंथ, पृष्ठ ३७

इन बातों के अतिरिक्त यदि कबीर साहब की रचनाओं को पढ़िए, तो वे इतनी हिंदू-भावापन्न मिलेंगी, कि उन्हें पढ़कर आप यह स्वीकार करने के लिये विवश होंगे कि उन पर परम शास्त्रपारङ्गत किसी महापुरुष का प्रभाव पड़ा था। कबीर साहब अशिक्षित थे, यह बात उनके समस्त जीवनी-लेखक स्वीकार करते हैं। अतएव उनके लिये ज्ञानार्जन का मार्ग सत्संग के अतिरिक्त और कुछ न था। यदि वे मुसल्मान धर्म्माचार्य्यों द्वारा प्रभावित होते, तो उनकी रचनाओं में अहिंसावाद और जन्मांतरवाद का लेश भी न होता। जो हिंसावाद मुसल्मानी धर्म्म का प्रधान अंग है, उस हिंसावाद के विरुद्ध जब वे कहने लगते हैं, तब ऐसी कड़वी और अनुचित बातें कह जाते हैं जो एक धर्मोपदेशक के मुख से अच्छी नहीं लगतीं। क्या हिंसावाद का उन्हें इतना विरोधी बनानेवाला मुसल्मानी धर्म्म या सूफी संप्रदाय हो सकता है? उनका सृष्टिवाद देखिए, वही है जो पुराणों में वर्णित है। उनकी रचनाओं में हिंदू शास्त्रों और पौराणिक कथाओं एवं घटनाओं के परिज्ञान का जितना पता चलता है, उसका शतांश भी मुस-

इस्मानी धर्म्म-संबंधी उनका ज्ञान नहीं पाया जाता। जब वे किसी अवसर पर मुसल्मान धर्म्म पर आक्रमण करते हैं, तब उन्हीं ऊपरी बातों को कहते हैं जिनको एक साधारण हिंदू भी जानता है। किंतु हिंदू-धर्म्म विवेचन के समय उनके मुख से वे बातें निकलती हैं, जिन्हें शास्त्रज्ञ विद्वानों के अतिरिक्त दूसरा कदाचित् ही जानता हो। इन बातों से क्या सिद्ध होता है? यही कि उन्होंने किसी परम विद्वान् हिंदू महात्मा के सत्संग द्वारा ज्ञानार्जन किया था; और स्वामी रामानंद के अतिरिक्त उस समय ऐसा महात्मा कोई दूसरा नहीं था।

(एक बात और है। वह यह कि हम उनके प्रामाणिक ग्रंथों में कहीं कहीं ऐसे वाक्य पाते हैं, जो उनको हिंदुओं का पक्षपाती बनाते हैं या मुसल्मान जाति पर उनकी घृणा प्रकट करते हैं, और जिन्हें मुसल्मान धर्म्माचार्य्य का शिष्य कभी कथन नहीं कर सकता) नीचे के पदों को पढ़िए—

"सुनत कराय तुरुक जो होना, औरत को का कहिए।
अरध शरीरी नारि बखानै, ताते हिंदू रहिए॥"

कबीर बीजक, पृष्ठ ३६३, शब्द ८४

किते मनावै पायँ परि, किते मनावैं रोइ।
हिंदू पूजैं देवता, तुरुक न काहुक होइ॥

साखी १८७, कबीर बीजक, पृष्ठ ५६३

मैंने अब तक जो कुछ कहा, उससे इसी सिद्धांत पर उपनीत होना पड़ता है कि कबीर साहब स्वामी रामानंद के शिष्य

थे; किंतु उनके मंत्रग्रहण की वार्ता से मैं सहमत नहीं हूँ। भक्तमाल और उसी के अनुसार दूसरे ग्रंथों में लिखा हुआ है कि गुरु करने की इच्छा उदित होने पर कबीर साहब ने स्वामी रामानंद को गुरु करना विचारा; किंतु यवन होने के कारण वे स्वामी रामानंदजी तक नहीं पहुँच सकते थे; अतएव उनसे मंत्रग्रहण करने के लिये उन्होंने दूसरी युक्ति निकाली। स्वामी रामानंद शेष रात्रि में गंगास्नान के लिये नित्य मणिकर्णिका घाट पर जाया करते थे। एक दिन उसी समय कबीर साहब घाट की सीढ़ियों में जाकर पड़ रहे। जब स्वामी जी आए, तब सीढ़ियों से उतरते समय उनका पाँव कबीर साहब पर पड़ा। वे कुलबुलाए। स्वामीजी ने जाना कि मनुष्य के ऊपर पाँव पड़ा, इसलिये वे बोल उठे "राम! राम!!" कबीर साहब ने इसी राम शब्द को मंत्रस्वरूप ग्रहण किया; और उसी दिन से काशी में अपने को स्वामी रामानंद का शिष्य प्रकट किया।

बतलाया गया है कि उनके माता पिता और कुछ लोगों को वंशमर्य्यादा-प्रतिकूल कबीर साहब की यह क्रिया अच्छी न लगी; इसलिये उन लोगों ने जाकर स्वामीजी को उलाहना दिया। स्वामीजी ने उनको बुलवाया और पूछा—कबीर! हमने तुझे मंत्र कब दिया? कबीर साहब ने कहा—और लोग तो कान में मंत्र देते हैं; परंतु आपने तो सिर पर पाँव रखकर मुझे राम नाम का उपदेश दिया। स्वामीजी को बात

याद आ गई; उठकर हृदय से लगा लिया, और कहा कि निस्संदेह तू इसका पात्र है। गुरु शिष्य का यह भाव देखकर लोगों को फिर और कुछ कहने का साहस नहीं हुआ।

स्वामी रामानंद असाधारण आध्यात्मिक शक्तिसंपन्न महापुरुष थे। जो रामावत संप्रदाय इस समय उत्तरीय भारत का प्रधान धर्म्म है, वह उन्हीं की लोकोत्तर मेधा का अलौकिक फल है। उस राममंत्र से सर्वसाधारण को परिचित करानेवाले यही महोदय हैं, जो हिंदू जाति के मोक्ष-पथ का अभूतपूर्व संबल हैं, जिनके सुयश गान से कबीर साहब के सांप्रदायिक ग्रंथ मुखरित हैं, गुरु नानक का विशाल आदि ग्रंथ गौरवान्वित है, दादू ग्रंथावली पवित्रीकृत है, और अन्य कितनी ही सांप्रदायिक पुस्तकमालाएँ प्रशंसित और सम्मानित हैं। कुछ लोग ऊँचे उठे, बहुत कुछ चिंताशीलता का परिचय दिया, तनधारी राम से संबंध तोड़ा, किंतु वे इस राम शब्द की ममता न छोड़ सके। इस महात्मा के आध्यात्मिक विकास की वहाँ पराकाष्ठा होती है, जहाँ वे सोचते हैं कि प्रवहमान मरुत, सुशीतल जल और सूर्य्यदेव की ज्योतिर्माला-तुल्य भगवद्भक्ति पर प्रत्येक मानव का समान अधिकार है। भारतवर्ष के उत्तर काल में वे पहले महात्मा हैं, जो नितांत उदार हृदय लेकर सामने आते हैं और उसी सहृदयता से जाट, नाई, जोलाहे और चमार को अंक में ग्रहण करते हैं, जिस प्यार से किसी सजातीय ब्राह्मण बालक को वे हृदय से लगाते हैं। आँख

उठाकर देखिए, किसकी शिष्यमंडली में एक साथ इतने महात्मा और मतप्रवर्त्तक हुए जितने कि इस महानुभाव के सदुपदेश-आलोक से आलोकित सत्पुरुषों में पाए जाते हैं। जब इस महात्मा की पूत कार्य्यावली पर दृष्टि डालते हैं, और फिर सुनते हैं कि उनके सन्निकट कोई मनुष्य जोलाहा होने के कारण नहीं पहुँच सका, तो हृदय को बड़ी व्यथा होती है। यदि रैदास चमार उनके द्वारा अंगीकृत हुआ तो कबीर जोलाहा कैसे तिरस्कृत हो सकता था? वास्तविक बात यह है कि इन कथाओं के गढ़नेवाले संकुचित विचार के कतिपय वे ही अदूरदर्शी जन हैं, जिनके अविवेक से प्रति दिन हिंदू समाज का ह्रास हो रहा है। मुझे इन कथाओं का स्वीकार करना युक्तिसंगत नहीं ज्ञात होता। मैं महसिन फ़नी के इस विचार से सहमत हूँ कि "आध्यात्मिक पथप्रदर्शक मिले, इस इच्छा से कबीर साहब हिंदू साधुओं एवं मुसलमान फकीरों दोनों के पास गए और अंत में स्वामी रामानंद के शिष्य हुए।"

जो लोग मणिकर्णिका घाट की घटना ही को सत्य मानते हैं, उनसे मैं कोई विवाद नहीं करना चाहता; किंतु इतनी विनीत प्रार्थना अवश्य करता हूँ कि इस घटना को लक्ष्य कर जो मनीषी स्फीतवक्ष से "पुनंतु मां ब्राह्मण-पादरेणवः" वाक्य पर गर्व करते हैं, उनकी मनीषिता केवल गर्व करने में ही पर्य्यवसित होती है, अथवा वे इस वाक्य के मर्म्म-ग्रहण की भी

कुछ चेष्टा करते हैं। प्रति वर्ष सहस्रों हिंदू हमारे समाज अंक को शून्य करके अन्य धर्म्म की शरण ले रहे हैं। प्रति दिन हिंदू धर्म्म माननेवालों की संख्या क्षीण होती जा रही है। क्या उनके विषय में उनका कुछ कर्तव्य नहीं है? क्या स्नान, ध्यान, पूजा, पाठ, व्रत, उपवास करने में ही पुण्य है? क्या धर्म्म से च्युत होते हुए प्राणियों की संरक्षा में पुण्य नहीं है? क्या कुल-गौरव, मान-मर्य्यादा, वर्णाश्रम-धर्म्म का संरक्षण ही सत्कर्म्म है? क्या नित्य स्वधर्म-परित्याग-परायण अध:पतित जातियों का समुद्धार सत्कर्म्म नहीं है? यदि है तो कितने महोदय ऐसे हैं जिन्होंने आत्मत्यागपूर्वक निर्भीक चित्त से इस मार्ग में पदविन्यास किया है? पदरेणु की बात जाने दीजिए, मैं पूछता हूँ कि कितने लोगों का हृदय इतना पुनीत है, शरीर इतना पुण्यमय है, स्वयं आत्मा इतनी पवित्रीभूता है कि जिनके संस्पर्श से अपावन भी पावन हो जाता है? जब हम स्वयं अपावन को छूकर आज अपवित्र होते हैं, तो हमको 'पुनंतु मां ब्राह्मण-पादरेणव:' वाक्य मुख पर लाते हुए लज्जित होना चाहिए। यदि नहीं, तो एक आत्मोत्सर्गी महापुरुष की भाँति कार्य्यक्षेत्र में अवतीर्ण होना चाहिए और यह दिखला देना चाहिए कि स्वामी रामानंद का आध्यात्मिक बल अब भी भारतवासियों में शेष है, अब भी अपावन को पावन बनाने की बलवती शक्ति उनमें विद्यमान है, भारत वसुंधरा अभी ऐसे अलौकिक रत्नों से शून्य नहीं हुई है।

संसार-यात्रा

कबीर साहब अपने जीवन का निर्वाह अपना पैतृक व्यवसाय करके ही करते थे, यह बात उनके सभी जीवनीलेखकों ने स्वीकार की है। उनके शब्दों में भी ऐसे वाक्य बहुत मिलते हैं कि 'हम घर सूत तनहिं नित ताना' इत्यादि जिनसे उनका यही व्यवसाय करके अपना जीवन बिताना सिद्ध होता है। इस विषय में उनका एक बड़ा सुंदर शब्द है; उसे नीचे लिखता हूँ—

मुसि मुसि रोवै कबीर की माय,
ए बालक कैसे जीवहिं रघुराय।
तनना बुनना सब तज्यो है कबीर,
हरि का नाम लिखि लियो शरीर।
जब लग तागा बाहउँ बेही,
तब लग बिसरै राम सनेही।
ओछी मति मेरी जाति जोलाहा,
हरि का नाम लह्यों मैं लाहा।
कहत कबीर सुनहु मेरी माई,
हमारा इनका दाता एक रघुराई।

आदि ग्रंथ, पृष्ठ २८५

किंतु इनके विवाह और संतानोत्पत्ति के विषय में मतांतर है। कबीरपंथ के विद्वान् कहते हैं कि लोई नाम की स्त्री उनके

साथ आजन्म रही, परंतु उससे उन्होंने विवाह नहीं किया। इसी प्रकार कमाल उनके पुत्र और कमाली उनकी पुत्री के विषय में भी वे लोग विचित्र बातें कहते हैं। उनका कथन है कि ये दोनों अन्य की संतान थे, जो मृतक हो जाने के कारण त्याग दिए गए थे; परंतु कबीर साहब ने उनको पुनः जिलाया और पाला; इसी लिये ये दोनों उनकी संतान करके प्रख्यात हुए। यह कदाचित् वे लोग इसलिये कहते हैं कि कबीर साहब ने स्त्री-संग को बुरा कहा है। यथा—

नारि नसावै तीन गुन, जो नर पासे होय।
भक्ति मुक्ति निज ध्यान में, पैठि सकै नहिं कोय॥
नारी की झाँई परत, अंधा होत भुजंग।
कबिरा तिनकी कौन गति, नित नारी को संग॥

चौरासी अंग की साखी, कनक-कामिनी का अंग

किंतु कबीर साहब ने अपना विवाह होना स्वयं स्वीकार किया है। यथा—

नारी तो हम भी करी, जाना नाहिं विचार।
जब जाना तब परिहरी, नारी बड़ा बिकार॥

चौरासी अंग की साखी, कनक-कामिनी का अंग

भ्रमण करते हुए एक दिन कबीर साहब भगवती भागीरथी-कूलस्थित एक बनखंडी वैरागी के स्थान पर पहुँचे। वहाँ एक-विंशति वर्षीया युवती ने आपका स्वागत किया। वह निर्जन स्थान था; परन्तु कुछ काल ही में वहाँ कुछ साधु और

आए। युवती ने साधुओं को अतिथि समझा, उनका शिष्टाचार करना चाहा, अतएव वह एक पात्र में दूध लाई। साधुओं ने उस दूध को सात पनवाड़ों में बाँटा। पाँच उन लोगों ने स्वयं लिया, एक कबीर साहब को और एक युवती को दिया। कबीर साहब ने अपना भाग लेकर पृथ्वी पर रख दिया, इसलिये युवती ने कुछ संकोच के साथ पूछा—आपने अपना दूध धरती पर क्यों रख दिया? आप भी और साधुओं की भाँति उसे कृपा करके अंगीकार कीजिए। कबीर साहब ने कहा—देखो, गंगा पार से एक साधु और आ रहा है; मैंने उसी के लिये इस दूध को रख छोड़ा है। युवती कबीर साहब की यह सज्जनता देखकर मुग्ध हो गई और उसी समय उनके साथ उनके घर चली आई। पश्चात् इसी के साथ कबीर साहब का विवाह हुआ। इसका नाम लोई था। यह बनखंडी बैरागी की प्रतिपालिता कन्या थी। इसे बैरागी ने अचानक एक दिन जाह्नवीकूल पर पड़ा पाया था। कमाली और कमाल इसी की संतान थे।

शील और सदाचार

एक दिन कबीर साहब ने सश्लोक एक थान बुनकर प्रस्तुत किया और बेचने की कामना से वे उसे लेकर घर से बाहर निकले। अभी कुछ दूर आगे बढ़े थे कि एक साधु ने सामने आकर कहा—बाबा कुछ दे! कबीर साहब ने आधा थान

फाड़ दिया। उसने कहा—बाबा, इतने में मेरा काम न चलेगा। कबीर साहब ने दूसरा आधा भी उसको अर्पण किया और आप प्रसन्न-बदन घर लौट आए।

एक दिन कबीर साहब के यहाँ बीस पचीस भूखे फकीर आए। उस दिन उनके पास कुछ न था, इसलिये वे घबराए। लोई ने कहा—यदि आज्ञा हो तो मैं एक साहूकार के बेटे से कुछ रुपए लाऊँ। उन्होंने कहा—कैसे! स्त्री ने कहा—वह मुझ पर मोहित है। मैं पहुँची नहीं कि उसने रुपया दिया नहीं। कबीर साहब ने कहा—किसी तरह काम चलाना चाहिए। लोई साहूकार के बेटे के पास पहुँची, रुपया लाई और रात में मिलने का वादा कर आई। दिन खाने-खिलाने में बीता, रात हुई, सब ओर अँधेरा छा गया, झड़ बाँधकर मेंह बरसने लगा, रह रहकर हवा के झोंके जी कँपाने लगे। किंतु कबीर साहब को चैन न था, वे सब जान चुके थे। उन्होंने सोचा—जिसकी बात गई, उसका सब गया; इसलिये वे पानी और हवा से न डरे। कम्मल ओढ़ाकर उन्होंने स्त्री को कंधे पर लिया और साहूकार के घर पहुँचे। साहूकार का लड़का तड़प रहा था। उसको आया देख वह खिल उठा। किंतु जब उसने देखा कि न तो उसके पाँव कीचड़ से भरे हैं और न कपड़ा भींगा है, तो चकित हो गया और बोला—तुम कैसे आई? लोई ने कहा—मेरे पति मुझे अपने कंधे पर चढ़ाकर लाए हैं। यह सुनकर साहूकार के लड़के

8992

के जी में बिजली कौंध गई, उँजाले के सामने अँधियारा न ठहर सका। वह लोई के पाँवों पर गिर पड़ा और बोला—आप मेरी माँ हैं। कबीर साहब ने मेरी आँख खोलने के लिये ही इस कठिनाई का सामना किया है। इतना कहकर वह घर से बाहर निकल आया और कबीर साहब के पाँवों से लिपट गया तथा उसी दिन से उनका सच्चा सेवक बन गया)।

श्रीमान् वेस्कट लिखते हैं कि "कबीर साहब के वर्णित जीवन चरित में एक प्रकार का काव्य का सा सौंदर्य्य पाया जाता है"* यह बात सत्य है, किंतु वह इतना रंजित और अस्वाभाविक बातों से भरा है, कि मेरी प्रवृत्ति इन दो प्रसंगों के अतिरिक्त किसी दूसरे प्रसंग को लिखने की नहीं होती। आप लोग इन दो कथानकों से ही उनके शील और सदाचार के विषय में बहुत कुछ अवगत हो सकते हैं।

धर्मप्रचार

भागीरथी के तट की बातें लिखकर 'रहनुमायाने हिंद' के रचयिता लिखते हैं—"रामानंद कबीर के बशरे से कुछ आसारे सआदत देखकर उन्हें अपने मठ में ले आए और वह उसी रोज बाजाब्ता रामानंद के मजहब में दाखिल हो गए। मगर हम यह नहीं बता सकते कि वह कब तक अपने गरोह की

---

* देखो कबीर ऐंड दी कबीर पंथ, पृष्ठ २६।

इताअ़त व पैरवी में साबित-क़दम रहे। गालिबन मुरशिद की वफ़ात के बाद उन्होंने अपने मजहब का वाज व तलक़ीन शुरू की"। मेरा भी यही विचार है। उनका उपदेश देने का ढंग निराला था। संभव है कि वे कभी कभी यों भी लोगों को उपदेश देते रहे हों, किंतु अधिकतर वे अपने विचारों को सीधी-सादी बोलचाल की भाषा में भजन बनाकर और उन्हें गाकर प्रकट करते थे। उनके भजनों को देखिए, उनकी रचना अधिकांश प्रचलित गीतों के ढंग की है। वे स्वयं कहते हैं—

बोली हमरी पूर्व की, हमें लखा नहीं कोइ।
हमको तो सोई लखै, घर पूरब का होइ॥
मसि कागद तो छुयो नहिं, कलम गही नहिं हाथ।
चारिहु जुग माहात्म्य तेहि, कहि कै जनायो नाथ॥

कबीर बीजक साखी १७७, १८१

उनके धार्मिक सिद्धांत क्या थे और वे लोगों को किस बात की शिक्षा देते थे, इस बात का वर्णन मैं अंत में करूँगा। यहाँ केवल यह प्रकट करना चाहता हूँ कि संसार में जो लोग मुख्य योग्यता के होते हैं, उनमें कुछ आकर्षिणी शक्ति अवश्य होती है। कबीर साहब में भी यह शक्ति थी। उनके भावमय भजनों को सुनकर और उनके शील और सदाचरण से प्रभावित होकर उनके समय में ही अनेक लोग उनके अनुगत हो गए। इनमें अधिकतर हिंदुओं की ही संख्या है,

मुसल्मानों के हृदय पर उनका अधिकार नहीं हुआ। किसी किसी राजा पर भी उनका प्रभाव पड़ा, चाहे यह प्रभाव केवल एक साधु या महात्मा-मूलक हो, या धर्म्म-मूलक।

विरोधी दल

यह सत्य है कि हिंदू और मुसल्मान दोनों धर्म के नेताओं से अंत में उनका विरोध हो गया। क्यों हो गया, इसके कारण स्पष्ट हैं। हिंदू धर्म्म के नेताओं को एक अहिंदू का हिंदू धर्म्मोपदेशक रूप से कार्य्यक्षेत्र में आना कभी प्रिय नहीं हो सकता था; इसलिये उन लोगों का कबीर साहब का कट्टर विरोधी हो जाना स्वाभाविक था। हिंदू आचार्य्य का शिष्यत्व ग्रहण करने और मुसल्मान होकर हिंदू सिद्धांतों के अनुगत और प्रचारक हो जाने के कारण मुसल्मान धर्म्म के नेताओं से भी उनका वैमनस्य हो गया। परिणाम इसका यह हुआ कि उन्होंने दोनों धर्म्मों के नेताओं पर कठोरता के साथ आक्रमण किया और उद्दंड स्वभाव होने के कारण उन पर बड़ी कटूक्तियाँ कीं, उनके धर्म्म-ग्रंथों को भला बुरा कहा। फिर विरोध की आग क्यों न भड़कती। निदान इस विरोध के कारण उनको अनेक यातनाएँ भोगनी पड़ी। किंतु उनमें वह दृढ़ता मौजूद थी, जो प्रत्येक समय के धर्म्मप्रचारकों में पाई जाती है। इसलिए अनेक कष्ट सहकर भी वे अपने सिद्धांत पर आरूढ़ रहे और उनकी इसी निश्चलता ने उनको सर्व-

साधारण में समादृत बनाया। उस समय सिकंदर लोदी उत्तरीय भारत में शासन करता था। शेख तकी (जो एक प्रभावशाली और मान्य व्यक्ति थे) और दूसरे मुसल्मानों के शिकायत करने पर बादशाह की क्रोधाग्नि भी भड़की और उन्होंने कबीर साहब को कुछ कष्ट भी दिया; किंतु अंत में उन्हें फकीर होने के कारण छुटकारा मिल गया।

कबीर साहब को धर्म्मप्रचार में जिन आपदाओं का सामना करना पड़ा, उनको उनके अनुयायियों ने बहुत रंजित करके लिखा है। यद्यपि उनका अधिकांश अस्वाभाविक है, परंतु आप लोगों की अभिज्ञता के लिये मैं उनका दिग्दर्शन मात्र कराऊँगा।

कहा जाता है कि शाह सिकंदर ने पहले उनको गंगा में और बाद को अग्नि में डलवा दिया, किंतु वे दोनों स्थानों से जीवित निकल आए। इसके उपरांत उनके ऊपर मस्त हाथी छोड़ा गया; परंतु वे उसके सामने शार्दूल होकर प्रकट हुए। मस्त हाथी भागा और उनका बाल भी बाँका न हुआ। कबीर साहब के एक शब्द में भी इसमें की एक घटना का वर्णन है--

गंगा गुसाँइनि गहिर गंभीर, जँजिर बाँध कर खरे कबीर।
मन न डिगै तन काहे को डेराइ, चरन कमल चित्त रह्यो समाइ।
गंग की लहर मेरी टूटी जँजीर, मृगछाला पर बैठे कबीर।
कह कबीर कोउ संग न साथ, जल थल राखत हैं रघुनाथ।

आदि ग्रंथ पृष्ठ ६२६

अंतिम काम

कबीर साहब की परलोक-यात्रा के विषय में यह अति प्रसिद्ध बात है कि उस समय वे काशी छोड़कर मगहर चले गए थे। बस्ती के जिले में मगहर एक छोटा सा ग्राम है, जिसमें अब तक उनकी समाधि है। यहाँ वर्ष में एक बार साधारण मेला भी होता है। कबीर पंथ के अनुयायी कुछ मुसल्मान मिलते हैं तो यहीं मिलते हैं। कबीर साहब काशी छोड़कर अंत समय क्यों मगहर चले आए, इसका उत्तर वे स्वयं अपने निम्नलिखित शब्दों में देते हैं—

लोगा तुम ही मति के भोरा ।
ज्यों पानी पानी में मिलिगो, त्यों ढुरि मिल्यो कबीरा ।
ज्यों मैथिल को सच्चा वास, त्योंहि मरण होय मगहर पास ।।
मगहर मरै मरन नहिं पावै, अंत मरै तो राम लजावै ।
मगहर मरै सो गदहा होई, भल परतीत राम सों खोई ।।
क्या काशी क्या ऊसर मगहर, राम हृदय बस मोरा ।
जो काशी तन तजै कबीरा, रामै कौन निहोरा ।।

कबीर बीजक शब्द १०३

ज्यों जल छोड़ि बाहर भयो मीना,
पुरुष जन्म हौं तप का हीना ।
अब कहु राम कवन गति मोरी,
तजिले बनारस मति भई थोरी ।

सकल जनम शिवपुरी गँवाया,
मरति बार मगहर उठि धाया।
बहुत बरख तप कीया काशी,
मरन भया मगहर को बासी।
काशी मगहर सम बीचारी,
ओछी भगति कैसे उतरै पारी।
कह गुरु गज शिव सम को जानै,
मुआ कबीर रमत श्री रामै॥

आदि ग्रंथ पृष्ठ १७७

जहाँ इन शब्दों से कबीर साहब की विचित्र धार्मिक दृढ़ता सूचित होती है, वहाँ दूसरे शब्द के कतिपय आदिम पदों से उनका दुःखमय आंतरिक क्षोभ भी प्रकट होता है, और उनके संस्कार का भी पता चलता है। मनुष्य जब किसी गूढ़ कारणवश अपनी अत्यंत प्रिय आंतरिक वासनाओं की पूर्त्ति में असमर्थ होता है, तो जैसे पहले वह हृदयोद्वेग से विह्वल होकर पीछे दृढ़ता ग्रहण करता और कोई अवलंब ढूँढ़कर चित्त को बोध देता है, दूसरे शब्द में कबीर साहब के हृदय का भाव ठीक वैसा ही व्यंजित हुआ है। इससे क्या सूचित होता है? यही कि कबीर साहब को किसी घोर धार्मिक विरोधवश काशी छोड़नी पड़ी थी भक्ति-सुधा-बिंदु-स्वाद नामक ग्रंथ (पृष्ठ ८४०) के इस वाक्य को देखकर कि "श्रीकबीरजी संवत् १५४९ में मगहर गए। वहीं से संवत् १५५२

की अगहन सुदी एकादशी को परमधाम पहुँचे" यह विचार और पुष्ट हो जाता है; क्योंकि यह वाक्य यह नहीं बतलाता कि मरने के केवल कुछ दिन पहले कबीर साहब मगहर में आए।

कबीर साहब मुसल्मान के घर में पले थे, मुसल्मान फकीरों से व्यवहार रखते थे; इसलिए उनमें मुसल्मानों की ममता होना स्वाभाविक है। वे एक हिंदू आचार्य्य के शिष्य थे, राम नाम के प्रचारक और उपदेशक थे, अतएव हिंदू यदि उन्हें अपना समझें तो आश्चर्य क्या? निदान यही कारण है कि उनका परलोक हो जाने पर रुधिरपात की संभावना हो गई। काशिराज वीरसिंह उनके शव को दग्ध और बिजली खाँ पठान समाधिस्थ करना चाहता था, अतएव तलवार चल ही गई थी कि एक समझ काम कर गई। शव की चद्दर उठाई गई तो उसके नीचे फूलों का ढेर छोड़ और कुछ न मिला। हिंदुओं ने इसमें से आधा लेकर जलाया और उसकी राख पर समाधि बनाई। यही काशी का कबीरपंथियों का प्रसिद्ध स्थान कबीर चौरा है। मुसल्मानों ने दूसरा आधा लेकर वहीं मगहर में उसी पर कब्र बनाई जो अब तक मौजूद है। कबीरपंथियों के ये दोनों पवित्र स्थान हैं।

कबीर कसौटी (पृष्ठ ५४) में लिखित मरने के समय के इस वाक्य से कि "कमल के फूल और दो चद्दर मँगवाकर लेट गए" फूल का रहस्य समझ में आता है। कबीर साहब ने जब शव के लिए तलवार चल जाने की संभावना देखी, तो

उन्होंने ही अपने बुद्धिमान् शिष्यों द्वारा दूरदर्शिता से ऐसी सुव्यवस्था की कि शरीरांत होने पर शव किसी को न मिला। उसके स्थान पर लोगों ने फूलों का ढेर पाया, जिससे सब झगड़ा अपने आप मिट गया। कहा जाता है कि गुरु नानक के शव के विषय में भी ठीक ऐसी ही घटना हुई थी।

ग्रंथावलि

कबीर साहब ने स्वयं स्वीकार किया है कि "मसि कागद तो छुयो नहिं कलम गही नहिं हाथ। चारिहुँ युग माहात्म्य तेहि कहिकै जनायो नाथ"। इसलिए यह स्पष्ट है कि कबीर साहब ने न तो कोई पुस्तक लिखी, न उन्होंने कोई धर्म्म-ग्रंथ प्रस्तुत किया। कबीर संप्रदाय के जितने प्रामाणिक ग्रंथ हैं, उनके विषय में कहा जाता है कि उन्हें कबीर साहब के पीछे उनके शिष्यों ने रचा। यह हो सकता है कि जिन शब्दों या भजनों में कबीर नाम आता है, वे कबीर साहब के रचे हुए हों, जो शिष्यों द्वारा पीछे ग्रंथ स्वरूप में संगृहीत हुए हों; परंतु यह बात सत्य ज्ञात होती है कि अधिकांश ग्रंथ कबीर साहब के पीछे उनके शिष्यों द्वारा ही रचे गए हैं। प्रोफेसर वी० बो० राय, जो एक क्रिश्चियन विद्वान् हैं, अपने 'संप्रदाय' नामक उर्दू ग्रंथ के पृष्ठ ६३ में लिखते हैं—

"जहाँ तक मालूम होता है, कबीर ने अपनी तालीमी बातों को कलमबंद नहीं किया। उसके बाद उनके चेलों ने बहुत

सी किताबें तसनीफ कीं। यह किताबें अकसर गुफ्तगू की सूरत और हिंदी नजम में लिखी गईं। काशी के कबीरचौरे में इस संप्रदाय की मशहूर और पाक किताबों का मजमूआ पाया जाता है, जिसे कबीरपंथी लोग 'खास ग्रंथ' कहते हैं''। प्रसिद्ध बंगाली विद्वान् बाबू अक्षयकुमार दत्त भी अपने 'भारतवर्षीय उपासक-संप्रदाय' नामक बँगला ग्रंथ (प्रथम भाग, पृष्ठ ४९) में यही बात कहते हैं—

"ए संप्रदायेर प्रामाणिक ग्रंथसमुदाय कबीरेर शिष्यदिगेर आर ताहार उत्तर कालवर्त्ती गुरुदिगेर रचित बलिया प्रसिद्ध आछे।"

श्रीमान् वेसूकट कहते हैं—"ज्ञात यह होता है कि कबीर की शिक्षाएँ मौखिक थीं, और वे उनके पीछे लिखी गईं। सबसे पुराने ग्रंथ, जिनमें उनकी शिक्षाएँ लिखी गईं, बीजक और आदि ग्रंथ हैं। यह भी संभव है कि इनमें से कोई पुस्तक कबीर के मरने से पचास वर्ष पीछे तक न लिखी गई हो। यह विचारना कठिन है कि वे ठीक उन्हीं शब्दों में लिखी गई हैं, जो कि गुरु के मुख से निकले हैं। और यह बात तो और भी कठिनता से मानी जा सकती है कि उनमें और शब्द नहीं मिला दिए गए हैं।"

कबीर एंड दी कबीर पंथ, पृ० ४६

'खास ग्रंथ' में निम्नलिखित इक्कीस छोटी बड़ी पुस्तकें हैं।

१—सुखनिधान—इस ग्रंथ के रचयिता 'श्रुतगोपाल-

दास' हैं। कबीर पंथ की द्वादश शाखाओं में से कबीरचौरा स्थान की शाखा के ये प्रवर्त्तक हैं। सुखनिधान समस्त ग्रंथों का कुंचिका स्वरूप, बोध-सुलभ और सुप्रसन्न शब्दों में लिखित है। पठद्दशा की चरमावस्था प्राप्त हुए बिना किसी को इस ग्रंथ के पढ़ने की व्यवस्था नहीं दी जाती। इस ग्रंथ में ८ अध्याय हैं; और धर्म्मदास और कबीर साहब के प्रश्नोत्तर रूप में ब्रह्म, जीव, माया इत्यादि धार्मिक विषयों का इसमें निरूपण है।

२—गोरखनाथ की गोष्ठी—इस ग्रंथ में महात्मा गोरखनाथ के साथ कबीर साहब का धार्मिक वार्तालाप है।

३—कबीर पाँजी, **४—बलख की रमैनी**, **५—आनंद राम सागर**—ये साधारण ग्रंथ हैं। इनके विषय में कहीं कुछ विशेष लिखा नहीं मिला।

६—रामानंद की गोष्ठी—इस ग्रंथ में स्वामी रामानंद के साथ कबीर साहब का धार्मिक वार्तालाप है।

७—शब्दावली—इसमें एक सहस्र धार्मिक शब्द हैं, किंतु वे क्रमबद्ध नहीं हैं। इसमें छोटी-छोटी धार्मिक शिक्षाएँ हैं।

८—मंगल—इसमें एक सौ छोटी कविताएँ हैं।

९—वसंत—इसमें वसंत राग के एक सौ धर्म्म-संगीत हैं।

१०—होली—इसमें होली के दो सौ गीत हैं।

११—रेखता—इसमें एक शत रेखते हैं, किंतु उनमें छंदोभंग बहुत हैं।

१२—**झूलन**—इसमें अनेक धार्मिक विषयों पर पाँच सौ गीत हैं।

१३—**कहरा**—इसमें कहरा चाल के पाँच सौ भजन हैं।

१४—**हिंदोल**—इसमें नाना प्रकार के द्वादश भजन हैं, जिनमें नैतिक और धार्मिक शिक्षाएँ हैं।

१५—**बारहमासा**—इसमें बारह महीनों पर धार्मिक संगीत हैं।

१६—**चाँचर**—इसमें चाँचर चाल के गीतों में नाना प्रकार के भजन और शब्द हैं।

१७—**चौंतीसी**—इसमें हिंदी भाषा के तैंतीस व्यंजनों और चौंतीसवें ऊँकार में से एक एक को प्रत्येक पद्य के आदि में रखकर धार्मिक कविता की गई है। कुल ३४ पद्य हैं।

१८—**अलिफ़नामा**—इसमें फारसी अक्षरों की धार्मिक व्याख्या है।

१९—**रमैनी**—इसमें कबीर पंथ के सिद्धांतों का शब्दों में विस्तृत वर्णन है। स्वधर्म्म-प्रतिपादन और परधर्म्म-खंडन पंथ के सिद्धांतानुसार किया गया है। कूट शब्द भी इसमें पाए जाते हैं।

२०—**साखी**—इसमें पाँच सहस्र दोहे हैं, जो पंथ में साखी नाम से पुकारे जाते हैं। इन दोहों में अनेक प्रकार की नीति और धर्म्म की शिक्षाएँ हैं। चौरासी अंग की साखी इसी के अंतर्गत है। इस ग्रंथ की कतिपय साखियाँ बड़ी ही सुंदर हैं।

२१—**बीजक**—इस ग्रंथ में ६५४ अध्याय हैं। इसको कबीरपंथी लोग बहुत मानते हैं। बीजक दो हैं, पर उन दोनों में बहुत अंतर नहीं है। कबीरपंथी कहते हैं कि इनमें जो बड़ा बीजक है, उसे स्वयं कबीर साहब ने काशिराज से कहा था; दूसरे बीजक को भग्गूदास नामक कबीर के एक शिष्य ने संग्रह किया है। यह दूसरा बीजक ही अधिक प्रचलित है। इसमें स्वमत-प्रतिपादन की अपेक्षा अपर धर्म्मों पर आक्रमण और आक्षेप ही अधिक हैं। यह भग्गूदास भी कबीरपंथ की द्वादश शाखाओं में से एक शाखा का प्रवर्त्तक है। इसके परंपरागत शिष्य धनौती नामक ग्राम में रहते हैं।

श्रीमान् वेसूकट कहते हैं—"बीजक कबीर साहब की शिक्षा का प्रामाणिक ग्रंथ मान लिया गया है। यह संभवत: १५७० ई० में या सिक्खों के पाँचवें गुरु अर्जुन द्वारा नानक की शिक्षा आदि-ग्रंथ में लिखे जाने के बीस वर्ष पहले लिखा गया था। बहुत से वचन जो आदि ग्रंथ में कबीर के कथित माने जाते हैं, बीजक में भी पाए जाते हैं।" क० ऐ० क० पृष्ठ ७

इस दूसरे बीजक की कई छपी आवृत्तियाँ हैं। उनमें से दो, जो अधिक प्रसिद्ध हैं, सटीक हैं। एक के टीकाकार रीवाँ के महाराज विश्वनाथसिंह और दूसरे के नागझारी जिला बुरहानपुर निवासी कबीरपंथी साधु पूरनदास हैं, जो सन् १८७० ई० में जीवित थे। बैप्टिस्ट मिशन, मुँगेर के रेवरेंड प्रेमचंद ने भी इसकी एक आवृत्ति कलकत्ते में सन् १८८०

ई० में छपाई थी। इन ग्रंथों के अतिरिक्त आगम और बानी इत्यादि भिन्न भिन्न नामों की कुछ और स्फुट कविताएँ भी पाई जाती हैं।

श्रीमान् वेस्कट ने अपने ग्रंथ में कबीर पंथ के ८२ ग्रंथों के नाम लिखे हैं। इन ग्रंथों में कबीरकसौटी और कबीर मनसूर आदि आधुनिक ग्रंथों के भी नाम हैं, जिनका रचना-काल अर्द्ध शताब्दी से कम है। इसके अतिरिक्त उन्होंने तीन सटीक बीजकों को भी पृथक् पृथक् गिना है। चौरासी अंग की साखी जो एक ग्रंथ है, उसके सतसंग का अंग, समदरसी का अंग, आदि बारह अंगों की साखियों को अलग अलग लिखकर उनको बारह पुस्तकें माना है, इसी से उनकी नामावली लंबी हो गई है। उसमें मूसाबोध, महम्मदबोध, हनुमानबोध आदि कतिपय ऐसे ग्रंथों के नाम हैं, जो सर्वथा कल्पित हैं; क्योंकि उक्त महोदयों और कबीर साहब के समय में कितना अंतर है, यह विद्वानों को अविदित नहीं है। उन्होंने अमरमूल आदि दो एक प्राचीन ग्रंथों का नाम भी अपनी सूची में लिखा है, और सुखनिधान आदि कई ऐसे ग्रंथों के नाम भी लिखे हैं, जो उक्त २१ ग्रंथों के अंतर्गत हैं।

प्रोफेसर एच० एच० विलसन ने अपने "रिलिजन आफ दी हिंदूज" नामक ग्रंथ के प्रथम खंड, पृष्ठ ७६–७७में कबीर साहब के निम्नलिखित ग्रंथों के ही नाम लिखे हैं। यह कहना कि ये ग्रंथ उक्त २१ ग्रंथों के ही अंतःपाती हैं, बाहुल्य मात्र है।

१—आनंद रामसागर, २—अलख की रमैनी, ३—चाँचर, ४—हिंडोला, ५—झूलना, ६—कबीरपाँजी, ७—कहरा, ८—शब्दावली।

प्रशंसित महाराज रीवाँ ने अपनी टीका में कबीर साहब विरचित निम्नलिखित ग्रंथों के नाम लिखे हैं; और इनमें से प्रायः शब्द और साखियों को उद्धृत करके प्रमाण दिया है। किंतु ज्ञात होता है कि इन ग्रंथों की गणना "खास ग्रंथ" में नहीं है; क्योंकि ये उनके अतिरिक्त हैं।

१—निर्भय ज्ञान, २—भेदसार, ३—आदि टकसार, ४—ज्ञान सागर, ५—भवतरण।

मुझे कबीर साहब के मौलिक ग्रंथों में से केवल दो ग्रंथ मिले, एक बीजक और दूसरा चौरासी अंग की साखी। इनके अतिरिक्त बेलवेडियर प्रेस की छपी कबीर शब्दावली, चार भाग, ज्ञानगुदड़ी व रेखते, और साखी संग्रह नाम की पुस्तकें भी हस्तगत हुईं। बेलवेडियर प्रेस के स्वामी 'राधा-स्वामी मत' के हैं। इस मतवाले कबीर साहब को अपना आदि आचार्य्य मानते हैं; इसलिए इस प्रेस की छपी पुस्तकों के बहुत कुछ प्रामाणिक होने की आशा है। उन्होंने भूमिका में इस बात को प्रकट भी किया है। गुरु नानक संप्रदाय के 'आदिग्रंथ' में भी कबीर साहब के बहुत से शब्द और साखियाँ संगृहीत हैं। मैंने उक्त दो मौलिक और इन्हीं सब संगृहीत ग्रंथों के आधार पर अपना संग्रह प्रस्तुत किया है।

इन ग्रंथों की अधिकांश कविता साधारण है। सरस पद्य कहीं कहीं मिलते हैं। हाँ, जहाँ कबीर साहब पूरबी बोलचाल और चलते गीतों में अपने विचार प्रकट करते हैं, वहाँ की कविता निस्संदेह अधिक सरस है। किंतु छंदोभंग इन सबमें इतना अधिक है कि जी ऊब जाता है। जहाँ तहाँ कविता में अश्लीलता भी है। कोई कोई कविताएँ तो इतनी अश्लील हैं कि मैं उन्हें यहाँ उठा तक नहीं सकता। यदि आप लोग ऐसी कविताएँ देखना चाहें, तो नमूने के लिए साखी संग्रह के पृष्ठ १४८ का छठा, पृष्ठ १७५ का २६, २७, २८ और पृष्ठ १८२ का अंतिम दोहा देखिए। उनकी कविता में असंयत-भाषिता भी दृष्टिगत होती है। वे कहते हैं—

बोली एक अमोल है जो कोइ बोलै जानि।
हिए तराजू तौलि कै तब मुख बाहर आनि॥

कबीर बीजक, पृष्ठ ६२३

साधु भया तो क्या जो नहिं बोल विचार।
हतै पराई आतमा लिए जीभ तलवार॥

कबीर बीजक, पृष्ठ ६३१

साधु लच्छन सुगुनवंत गंभीर है वचन लौलीन भाखा सुनावै।
फूहरी पातरी अधम का काम है राँड़ का रोवना भाँड़ गावै॥

ज्ञानगुदड़ी, पृष्ठ ३२

किंतु खेद है कि जब वे विरोध करने पर उतारू होते हैं, तब इन बातों को भूल जाते हैं। यह दोष उनकी कविता में

प्राय: मिलता है। नमूने के लिये साखी संग्रह पृष्ठ १८७ का दोहा १९, २० और ज्ञानगुदड़ी तथा रेखते नामक ग्रंथ का रेखता ६० देखिए। मैंने इस प्रकार की कविताओं से अपने संग्रह को बचाया है; और जहाँ शब्दों के हेर फेर या ह्रस्व दीर्घ करने से काम चल गया, वहाँ छंदोभंग भी नहीं रहने दिया है।

कबीर साहब के ग्रंथों का आदर कविता-दृष्टि से नहीं, विचार-दृष्टि से है। उन्होंने अपने विचार दृढ़ता और कट्टरपन के साथ प्रकट किए हैं। उनमें स्वाधीनता की मात्रा भी अधिक झलकती है।

इन ग्रंथों में बहुत से कूट शब्द भी हैं। कबीर साहब का उलटा प्रसिद्ध है। चूहा बिल्ली को खा गया, लहर में समुद्र डूब गया, प्राय: ऐसी उलटी बातें आपको इन्हीं शब्दों में मिलेंगी। इन शब्दों का लोगों ने मनमाना अर्थ किया है। ऐसे शब्दों का दूसरा अर्थ हो ही क्या सकता है! प्राय: लोगों को आश्चर्य में डालने के लिये ही ऐसे शब्दों की रचना होती है। मैं समझता हूँ कि कबीर साहब का भी यही उद्देश्य था। उन्होंने ऐसे शब्द बनाकर लोगों को अपनी ओर आकर्षित किया है; क्योंकि धर्म का गूढ़ रहस्य जानने के लिये संसार उत्सुक है। ऐसे दो शब्द नीचे लिखे जाते हैं।

देखो लोगों हरि की सगाई, माय धरै पुत धिय संग जाई।
सासु ननद मिल अदल चलाई, मादरिया गृह बेटी जाई॥

हम बहनोई राम मोर सारा, हमहिं बाप हरि पुत्र हमारा।
कहै कबीर हरी के बूता, राम रमें ते कुकुरी के पूता॥

कबीर बीजक, पृष्ठ ३९३

देखि देखि जिय अचरज होई, यह पद बूझै बिरला कोई।
धरती उलटि अकासहिं जाई, चींटी के मुख हस्ति समाई॥
बिन पवनै जहँ पर्वत उड़ै, जीव जंतु सब बिरछा बुड़ै।
सूखे सरवर उठै हिलोल, बिन जल चकवा करै कलोल॥
बैठा पंडित पढ़ै पुरान, बिन देखे का करै बखान।
कह कबीर जो पद को जान, सोई संत सदा परमान॥

कबीर बीजक, पृष्ठ ३९४

विद्वान् मिश्रबंधुओं ने 'मिश्रबंधुविनोद' के प्रथम भाग में कबीर साहब के ग्रंथों और उनकी रचना के विषय में जो कुछ लिखा है, वह नीचे अविकल उद्धृत किया जाता है—

"इस समय तक भाषा और भी परिपक्व हो गई थी। महात्मा कबीरदास ने उसका बहुत बड़ा उपकार किया। इन्होंने कोई पचास ग्रंथ बनाए, जिनमें से ४६ का पता लग चुका है।"

पृष्ठ ११३

"कविता की दृष्टि से इनकी उलटवाँसी बहुत प्रशंसनीय है। इनकी रचना सेनापति श्रेणी की है। इन्होंने खरी बातें बहुत उत्तम और साफ़ साफ़ कही हैं और इनकी कविता में हर जगह सचाई की झलक देख पड़ती है। इनके ऐसे बेधड़क

कहनेवाले कवि बहुत कम देखने में आते हैं। कबीर जी का अनुभव खूब बढ़ा चढ़ा था और इनकी दृष्टि अत्यंत पैनी थी। कहीं कहीं इनकी भाषा में कुछ गँवारूपन आ जाता है; पर उसमें उद्दंडता की मात्रा अधिक होती है।

"इनके कथन देखने में तो साधारण समझ पड़ते हैं, परंतु उनमें गूढ़ आशय छिपे रहते हैं। इन्होंने रूपकों, दृष्टांतों, उत्पेक्षाओं आदि से धर्म्म-संबंधी ऊँचे विचारों एवं सिद्धांतों को सफलतापूर्वक व्यक्त किया है।"

पृष्ठ २५२, २५३

कबीरपंथ

इस पंथवाले युक्त प्रांत और मध्य भारत में अपनी संख्या के विचार से अधिक हैं। पंजाब, बिहार और दक्षिण प्रांत में भी कहीं कहीं ये लोग पाए जाते हैं। यद्यपि इनकी संख्या अन्य भारतवर्षीय संप्रदायों की अपेक्षा बहुत थोड़ी है, तथापि इनमें निम्नलिखित द्वादश शाखाएँ हैं—

१—श्रुत गोपालदास—इनके परंपरागत शिष्य काशी के कबीरचौरा, मगहर की समाधि और जगन्नाथ एवं द्वारका के मठों पर अधिकार रखते हैं। यह शाखा अपर शाखाओं की अपेक्षा प्रतिष्ठित मानी जाती है। दूसरी शाखावाले इसको प्रधान मानते हैं।

२—भग्गूदास—इनके परंपरागत शिष्य धनौती नामक गाँव में रहते हैं।

३—नारायणदास-४–चूड़ामणिदास—ये दोनों धर्म्मदास नामक एक बनिए के बेटे थे, जो कबीर साहब के एक प्रधान शिष्य थे। धर्म्मदास जबलपुर के पास बंधो नामक एक गाँव में रहते थे। बहुत दिनों तक उसके वंश के लोग वहाँ के मठ के महंत होते रहे। परंतु नारायणदास के वंश में अब कोई न रहा। इधर चूड़ामणि-वंश के एक महंत ने एक कुचरित्रा स्त्री रख ली; इसलिये यह वंश भी अब गद्दी से उतार दिया गया।*

---

* कबीर पंथ की द्वादश शाखाओं के विषय में यहां जो कुछ लिखा गया है, वह बंगाल के प्रसिद्ध विद्वान् बाबू अक्षयकुमार दत्त के ग्रंथ भारतवर्षीय उपासकसंप्रदाय, (देखो इस ग्रंथ का प्रथम भाग, पृष्ठ ६४, ६५, ६६) और प्रोफेसर बी० बी० राय के ग्रंथ 'संप्रदाय' (देखो पृष्ठ ७४, ७५, ७६) के आधार पर लिखा गया है। इन शाखाओं के विषय में मुझको एक लेख कबीरधर्म्मनगर, जिला रायपुर (मध्य प्रदेश)-निवासी कबीरपंथी साधु युगलानंद बिहारी का मिला है। उसको भी मैं नीचे अविकल उद्धृत करता हूँ—

"मध्यप्रदेश, बिहार, युक्तप्रांत, गुजरात और काठियावाड़ में कबीरपंथियों की संख्या विशेष है। हाँ, पंजाब, महाराष्ट्र, मैसूर, मदरास इत्यादि प्रांतों में ये लोग थोड़े पाए जाते हैं।

"इसमें अनेक शाखाएँ वर्त्तमान हैं, जिनमें धर्म्मदास के पुत्रों में से—

५—जग्गूदास—कटक में इनकी गद्दी है और इनके शिष्य उसी ओर हैं।

१—वचन चूड़ामणि के वंशज की शाखा ही प्रधान है। इस समय इनका मुख्य स्थान कबीरधर्म्मनगर जिला रायपुर सी०पी० में है। धर्म्मदास और कबीर के प्रश्नोत्तर में मिले हुए ग्रंथों में कालीवंशी के नाम जिस प्रकार लिखे हैं, उन्हीं नामों से अब तक इस शाखा का क्रम बराबर चला आता है। इस समय इस शाखा के तेरहवें आचार्य्य श्री पं० दयानाम साहब गद्दी पर वर्त्तमान हैं।

“इस शाखा में पूर्व निर्मित नियम के अनुसार आचार्य्य के ज्येष्ठ पुत्र के अतिरिक्त कोई दूसरा आचार्य्यपद नहीं पा सकता; इसलिये इसमें सबको एक ही आचार्य्य के अधीन रहना पड़ता है। कबीरपंथियों में इस समय इसी शाखा की प्रधानता है। इसके बराबर उन्नत (इस समय) कोई दूसरी शाखा नहीं है।”

“२—नारायणदास—धर्मदास के बड़े पुत्र थे, जो गुरु की अवज्ञा करने से पिता के द्वारा त्याज्य हुए थे; तथापि उनका भी पंथ चलता है। पहले ये लोग बांधवगढ़ में रहते थे; किन्तु वचन चूड़ामणि के वंशजों के समान विशेष नियम नहीं होने से इनमें कई आचार्य हो गए। इस शाखा के लोग परस्पर विरोध के कारण बांधवगढ़ छोड़कर भिन्न भिन्न स्थानों में रहकर गुरुआई करते हैं।

“३—जागू पंथी—इनकी गद्दी बिहार प्रान्त के मुजफ्फरपुर जिले के सबडिवीजन हाजीपुर के निकट विद्दूपूर नामक ग्राम में है। इस पंथ में यही स्थान प्रधान माना जाता है। यह बी० एन० डब्लू० रेलवे का एक स्टेशन है।

“४—सत्यनामी पंथ—इस नाम के तीन पंथ चलते हैं। १—कोटवा (अवध में); २—फरुंखाबाद में; ये लोग साधु के नाम से

६--जीवनदास--इन्होंने सत्तनामी संप्रदाय स्थापित किया। कोटवा जिला गोंडा में इनका स्थान है। इस स्थान के अधिकार में सात-आठ और गद्दियाँ हैं।

७--कमाल--ये बंबई नगर में रहते थे। इनके चेले योगी होते हैं। जनश्रुति है कि कमाल कबीर के पुत्र थे। कबीर साहब का निम्नलिखित दोहा स्वयं इसका प्रमाण है।

बूड़ा वंश कबीर का उपजा पूत कमाल।
हरि का सुमिरन छोड़ के घर ले आया माल॥

आदि ग्रंथ, पृष्ठ ७३८

८--टकसाली--यह बड़ौदा के निवासी थे और वहीं इनका मठ है।

९--ज्ञानी--यह सहसराम के निकटवर्ती मझनी ग्राम में रहते थे। इसी के आसपास उनकी कुछ शिष्य-मंडली है।

१०--साहेबदास--ये कटक में रहते थे। इनके चेले और और कबीरपंथियों की अपेक्षा कुछ निराली शिक्षा और विलक्षणता रखते हैं; इसलिये मूलपंथी कहलाते हैं।

११--नित्यानंद, १२--कमलानंद--ये दोनों दक्षिण में जा बसे और उधर ही इन्होंने अपनी शिक्षा का प्रचार किया।

इनके अतिरिक्त हंसकबीर, दानकबीर और मंगलकबीर नामक कबीरपंथियों की और कतिपय शाखाएँ हैं।

प्रसिद्ध हैं। २--मध्यप्रदेश के छत्तीसगढ़ में भँडारा नामक स्थान में; इसमें प्रायः चमार ही होते हैं।"

१९०१ की जनसंख्या (मर्दुमशुमारी) की रिपोर्ट में कबीरपंथियों की संख्या ८४३१७१ लिखी गई है। मैं समझता हूँ, कुछ न्यूनाधिक यही संख्या ठीक है। इनमें अधिकांश नीच जाति के हिंदू हैं; उच्च वंश के हिंदू नाममात्र हैं। गुरु भी इस पंथ के अधिकांश नीच वर्ण के ही हैं। त्यागी और गृहस्थ इनमें भी हैं; पर गृहस्थों की ही संख्या अधिक है। ये सब हिंदू धर्म्म के ही शासन में हैं, और उसी की रीति और पद्धति को बर्त्तते हैं; केवल धार्मिक सिद्धांतों में कबीरपंथ का अनुसरण करते हैं; यहाँ तक कि अनेक ऐसे हैं जो हिंदू देवी-देवताओं तक को पूजते हैं। त्यागी निस्संदेह अपने को हिंदू धर्म्म के सिद्धांतों से अलग रखते हैं; और वे हिंदू धर्म्म के क्रिया-कलाप में नहीं फँसना चाहते; किंतु यतः उनका यह संस्कार बना है कि वे हिंदू हैं, इसलिये वे अनेक अवसरों पर हिंदू क्रिया-कलाप में फँसे भी दृष्टिगत होते हैं। परंतु यह सत्य है कि कबीरपंथी साधु हिंदू समाज से एक प्रकार पृथक् से रहते हैं, उसमें उनकी यथेष्ट प्रतिपत्ति नहीं। इनका अपर हिंदू धर्म्म-संप्रदायों से कुछ वैमनस्य और द्वेष सा रहता है।

धर्मसंकट

(कबीर साहब का धर्म्म सिद्धांत क्या था, मैं समझता हूँ, यह अभ्रांत रीति से नहीं बतलाया जा सकता। मैं इसकी मीमांसा के लिये तत्पर होकर धर्मसंकट में पड़ गया हूँ।

उनके सिद्धांतों के जानने के साधन उनकी शब्दावली और साखियाँ हैं; परन्तु वे हम लोगों तक वास्तविक रूप में नहीं पहुँचतीं। यह बतलाना भी कठिन है कि कौन शब्द उनका रचा है, कौन नहीं। श्रीमान् वेस्कट का निम्नलिखित वाक्य, जिसे मैं ऊपर लिख आया हूँ, आप लोग न भूले होंगे।

"यह विचारना कठिन है कि वे ठीक उन्हीं शब्दों में लिखी गई हैं, जो गुरु के मुख से निकले हैं। और यह बात तो और भी कठिनता से मानी जा सकती है कि उनमें और शब्द नहीं मिला दिए गए हैं।"

एक दूसरे स्थान पर वे कहते हैं—

"कम से कम यह बात मानने के लिये हमको कोई स्वत्व नहीं है कि कबीर की शिक्षा वही शिक्षा है कि जिसको कबीर-पंथ के महंत आजकल देते हैं।"

कबीर ऐंड दी कबीरपंथ, पृष्ठ ४६

इन वाक्यों से क्या सिद्ध होता है? यही कि उनकी रचनाओं में बहुत कुछ काट छाँट हुई है और अब तक हो रही है। जो बीजक ग्रंथ आजकल अधिकता से प्रचलित है, और जो कबीरपंथ का सबसे प्रामाणिक ग्रंथ माना जाता है, वह भागूदास का प्रस्तुत किया हुआ है। इस भागूदास के विषय में रीवाँ-नरेश महाराज विश्वनाथसिंह लिखते हैं—

"भागूदास बीजक ले भागे हैं, सो बघेलवंश-विस्तार में कबीर ही जी कहि दियो है,--

भागूदास कि खबरि जनाई। लै चरणामृत साधु पियाई ॥
कोउ आव कह कलि जरि गयऊ। बीजक ग्रंथ चोराय लै गयऊ ॥
सतगुरु कह वह निगुरा पंथी। कहा भयो लै बीजक ग्रंथी ॥
चोरी करि वह चोर कहाई। काह भयो बड़ भक्त कहाई ॥"

कबीर बीजक, पृष्ठ २६

जिस भागूदास की यह व्यवस्था है, उसके हाथ में पड़कर बीजक की क्या दशा हुई होगी, इसे ईश्वर ही जाने। आगे चलकर महाराज ने लिखा है कि इसका वास्तव में नाम तो भगवानदास था, पर इस प्रकार पुस्तक लेकर भागने से ही कबीर साहब ने इसका नाम भागूदास रखा। इन बातों से बीजक की प्रामाणिकता में कितना संदेह होता है, इस बात का उल्लेख व्यर्थ है।

प्राय: कबीरपंथियों से सुना जाता है कि कबीर साहब के ग्रंथों में जो वेद-शास्त्रों अथवा अवतारों के विरुद्ध बातें पाई जाती हैं, या असंगत भाव से खंडन और आक्षेप देखा जाता है, वास्तव में वह उनके किसी शिष्य की ही करतूत है। जो हो, परंतु भागूदास की कथा इस विचार को दृढ़ करती है। कबीर साहब की परलोक यात्रा के पश्चात् ग्रंथों के संगृहीत होने से इस प्रकार का अवसर हाथ आना असंभव नहीं। यहाँ तक संदेह होता है कि जब कबीर साहब के समय में ग्रंथ संगृहीत हुए ही नहीं थे, तो भागूदास किस ग्रंथ को ले भागे। परंतु सोचने की बात है कि यदि कुछ शब्द

पहले संगृहीत न होते, तो ग्रंथ प्रस्तुत कैसे होते। ज्ञात यह होता है कि कागज के नाना टुकड़ों पर अथवा अशृंखल अवस्था में जो लेख इत्यादि थे, उन्हीं को लेकर भागूदास भागे।

एक कबीरपंथी संत की गुरुभक्ति आपने सुनी। अब एक पूरनदास नामक साधु की लीला देखिए। आपने कबीर बीजक पर टीका लिखी है। इस टीका में आपने कबीर साहब के इस वाक्य को कि "मन मुरीद संसार है गुरु मुरीद कोई साध" सिद्ध कर दिया है। श्रीमान् वेसूकट कहते हैं—"यह बात कि कबीर जोलाहा और एकेश्वर-वादी थे, अबुल फजल ने भी मानी है, कि जिसके प्रतिकूल किसी ने कुछ नहीं कहा"।* परंतु कदाचित् उन्हें यह ज्ञात नहीं हुआ कि पूरनदास ने उनके प्रतिकूल कहा है। आपने बीजक की टीका लिखकर और उसके शब्दों का मनमाना अर्थ करके यह प्रतिपादित कर दिया है कि कबीर साहब एकेश्वर-वादी नहीं, किंतु कुछ और थे। कुछ प्रमाण लीजिए—

"साखी—अमृत केरी मोटरी सिर से धरी उतार।
जाहि कहौं मैं एक है सो मोहि कह दुइ चार॥१२२॥

टीका गुरुमुख—इस संसार ने विचार की मोटरी सिर से उतार धरी, कोई विचार करता नहीं, जाको मैं कहता हूँ कि एक जीव सत्य है, और सब मिथ्या भ्रम है, सो मेरे को दुइ चार कहता है—एक ईश्वर, एक जीव, दो ब्रह्मा, विष्णु,

---

* देखो कबीर एँड दी कबीरपंथ पृष्ठ ६८।

महेश, और देवी देवता ये बताते हैं।" सटीक बीजक पूरनदास, पृष्ठ ५८४।

साखी—पाँच तत्त्व का पूतरा युक्ति रची मैं कीव।
मैं तोहि पूछों पंडिता शब्द बड़ा की जीव ॥८२॥

टीका मायामुख—पाँच तत्त्व का पूतरा युक्ति से रचि के मैंने पैदा किया, जीव पुतले मैंने पैदा किए, इस प्रकार वेद में माया ने कहा, सोई सब पंडित लोग भी कहते हैं।

गुरुमुख—ताते गुरु पूछते हैं कि पंडित तुमने वेद का शब्द माना, और कहने लगे कि ब्रह्म बड़ा कि ईश्वर बड़ा जाने सब संसार पैदा किया, परंतु अपने हृदय में विचार के देखो कि शब्द बड़ा कि जीव। अरे जो जीव न होता तो वेद आदिक नाना शब्द कौन पैदा करता और ब्रह्म, ईश्वरादि अध्यारोप कौन करता। ताते जीव ही सब ते बड़ा जाने, सब ही को थापा। शब्द, ब्रह्म आदि उपाधि सब मिथ्या जीव की करतूत, जीव सबका करनेवाला आदि।"

सटीक बीजक पूरनदास, पृष्ठ ४२४।

जिस राम शब्द के विषय में श्रीमान् वेस्कट कबीर साहब की यह अनुमति प्रकट करते हैं—

"कबीर साहब का विचार है कि जो दो अक्षर का शब्द राम इस संसार में उस एक अनिर्वचनीय सत्य का सबसे अधिक निकटवर्ती है।"

कबीर ऐंड दी कबीरपंथ, पृष्ठ ७५

उसके विषय में पूरनदास की कल्पना सुनिए—

काला सर्प सरीर में खाइनि सब जग झारि।
विरले ते जक बाँचिहैं रामहिं भजै बिचारि ॥१०१॥

इस साखी के 'रामहिं भजै बिचारि' का अर्थ उन्होंने यह किया है—"इस जगत् में जाको विचाररूपी अमृत प्राप्त भया, ते सर्प के जहर से बचे। एक राम ऐसा जो वेद ने अन्वय किया था, सो उससे बचे, भाग के न्यारे हुए।"—सटीक बीजक पूरनदास पृष्ठ ४६८। 'भजै' के वास्तविक अर्थ स्मरण करने या गुणानुवाद गाने के स्थान पर उन्होंने भाजना अर्थात् भागना किया है। काशी छोड़कर मगहर जाने का जो प्रसिद्ध और ऐतिहासिक शब्द कबीर साहब का है, जरा उसके कतिपय शब्दों का अर्थ देखिए। "त्योंहि मरन होय मगहर पास" इसका अर्थ सुनिए। "मग कहिए रास्ता, हर कहिये ज्ञान, सो मगहर ज्ञान मार्ग तामें मरन होय, लौलीन होय" (पृष्ठ २४५)। "अंतै मरै तो राम लजावै" का अर्थ वे यों करते हैं—जहाँ से जीव का स्फुरण हुआ सो अधिष्ठान छोड़कै अंतै जो नाना प्रकार की स्वर्ग भोगादि वासना अथवा जगत आदि मोहवासना में जो मरा, सो बंधन में परा। राम कहिए जीव और लज्या कहिए बंधन (पृष्ठ २३५)।" निदान इसी प्रकार उन्होंने समस्त ग्रंथ का अर्थ उलट दिया है। इस प्रसिद्ध गुरुमुख शब्द को उन्होंने मायामुख बना दिया है; अर्थात् गुरु की कही हुई बात को माया का कहा

हुआ बतलाया है। यों ही शब्द के चार चरणों में से कहीं यदि एक चरण को मायामुख बनाया है, तो दूसरे को गुरुमुख, कहीं तीसरे को मायामुख और चौथे को गुरुमुख। कहीं पूरा शब्द गुरुमुख, कहीं आधा, कहीं तिहाई! कहीं पूरा शब्द मायामुख, कहीं चौथाई, कहीं केवल एक चरण। मायामुख और गुरुमुख ही नहीं, जीवमुख आदि की कल्पना भी शब्दों में की गई है। उन्हें वाच्यार्थ से, कवि के भाव से, अन्वय से, शब्दों के उचितार्थ से कुछ प्रयोजन नहीं। वे किसी न किसी प्रकार प्रत्येक शब्द और साखी को अपने विचार के अनुकूल कर लेते हैं, कबीर साहब के लक्ष्य की कुछ परवाह नहीं करते। जहाँ इस प्रकार खींचातानी है, वहाँ कबीर साहब के सिद्धांत का ज्ञान दुरूह क्यों न होगा?

बेलवेडियर प्रेस में मुद्रित ज्ञानगुदड़ी व रेखता नाम की पुस्तक की भूमिका के प्रथम पृष्ठ में लिखा गया है—

"पर कितने ही पद पुराने प्रामाणिक हस्तलिखित ग्रंथों में ऐसे भी हैं जिनमें राम नाम की महिमा गाई गई है। इस नाम का मतलब औतारस्वरूप श्रीरामचंद्रजी से नहीं है, बल्कि ब्रह्मांड की चोटी (शून्य) धुन्यात्मक शब्द 'राँ' से है।" श्रीमान् वेस्कट भी यही लिखते हैं—

"ऐसे वाक्यों के राम शब्द से कबीर का अभिप्राय परब्रह्म से है, न कि विष्णु के अवतार से। क्योंकि वे बीजक

में लिखते हैं, कि सत्य गुरु ने कभी दशरथ के घर में जन्म नहीं लिया।"*

ऐसा विचार होने पर भी हम देखते हैं कि कबीर साहब के शब्दों में से पौराणिक नामों के निकालने की चेष्टा प्रथम से ही होती आई है, और अब भी हो रही है। कुछ प्रमाण भी लीजिए—

गुरु नानक साहब का आदि-ग्रंथ साढ़े तीन सौ वर्ष का प्राचीन है। यह ग्रंथ रामावतों का नहीं है कि उसमें साग्रह राम शब्द रखने की चेष्टा की गई हो, वरन् वाह गुरु जाप करनेवालों का है। वह प्रामाणिक कितना है, यह बतलाने की आवश्यकता नहीं। उसमें कबीर साहब के निम्नलिखित दोहों में राम शब्द पाया जाता है—

कबीर कसौटी राम की झूठा टिकै न कोय।
राम कसौटी सो सहै जो मर जीवा होय॥ पृ०७३५
सुपनेहूँ बरड़ाइकै जेहि मुख निकसै राम।
वाके पग की पानही मेरे तन को चाम॥ पृ०७३६
कबीर कूकर राम को मोतिया मेरा नाउँ।
गले हमारे जेंवरी जहँ खीचैं तहँ जाउँ॥

बेलवेडियर प्रेस में छपी 'साखीसंग्रह' नामक पुस्तक में इन दोहों में राम के स्थान पर 'नाम' पाया जाता है (देखो पृष्ठ २१ का १२, व ९६ का ३३, व १२८ का १० दोहा)।

---

* देखो कबीर ऐंड दी कबीर पंथ, पृष्ठ ४।

ऐसे ही उक्त प्रेस की छपी पुस्तकों में प्रायः हरि के स्थान पर गुरु, राजा राम के स्थान पर 'परमपुरुष' इत्यादि नाम पाए जाते हैं। मैं यह नहीं कहता कि यह उक्त प्रेस के स्वामी का काम है। संभव है कि जिस प्रति से उन्होंने अपना संग्रह छापा है, उसी में ऐसा पाठ हो। परंतु ऐसी चेष्टा होती आई है, यही मेरा कथन है। उक्त दोनों में राम शब्द से जो भाव और वाच्यार्थ की सार्थकता एवं सुंदरता है, वह नाम शब्द से नहीं। तथापि राम शब्द रखना उचित नहीं समझा गया, इसका कारण अवतारसंबंधी नामों से घृणा छोड़ और क्या हो सकता है।

केवल अवतारों के नामों का ही परिवर्त्तन नहीं मिलता, मुझे वाक्यों, शब्दों और भजनों अथवा साखियों के पदों एवं चरणों में भी न्यूनाधिक्य और अंतर मिला है। एक शब्द को मैं तीन स्थानों से उठाता हूँ। आप उसमें हुए परिवर्त्तनों को देखिए।

गाउ गाउ री दुलहिनी मंगलचारा।
मेरे गृह आए राजाराम भतारा॥
नाभि कमल में वेदी रच ले ब्रह्मज्ञान उचारा।
राम राइ सो दूलह पायो अस बड़ भाग हमारा॥
सुर नर मुनि जन कौतुक आए कोटि तैंतीसो जाना।
कह कबीर मोहिं ब्याहि चले हैं पुरुष एक भगवाना॥

आदि ग्रंथ, पृष्ठ २६१.

दुलहिन गावो मंगलचार । हमरे घर आए राम भतार ॥
तन रति कर मैं मन रति करिहैं पाँचो तत्त्व बराती ।
रामदेव मोंहि ब्याहन ऐहैं मैं जोबन मदमाती ॥
सरिर सरोवर बेदी करिहैं ब्रह्मा वेद उचारा ।
रामदेव सँग भाँवरि लैहों धनि धनि भाग हमारा ॥
सुर तैंतीसो कौतुक आए मुनिवर सहस अठासी ।
कह कबीर हम ब्याहि चले हैं पुरुख एक अबिनासी ॥

कबीर बीजक, पृष्ठ ४३१

दुलहिन गावो मंगलचार । हम घर आए परमपुरुष भरतार ।
तन रति करि मैं मन रति करिहैं पाँचो तत्त्व बराती ।
गुरुदेव मेरे पाहुन आए मैं जोबन में माती ॥
सरीर सरोवर वेदी करिहैं ब्रह्मा वेद उचार ।
गुरुदेव सँग भाँवरि लैहों धन धन भाग हमार ॥
सुर तैंतीसो कौतुक आए मुनिवर सहस अठासी ।
कह कबीर हम ब्याहि चले हैं पुरुष एक अविनासी ॥

कबीर शब्दावली प्रथम भाग, पृष्ठ ९, १०

इस प्रकार विरुद्धाचरण, शब्द, वाक्य और अर्थों में लौट-फेर, अवतारसंबंधी नामों के बहिष्कार इत्यादि का प्रभूत प्रमाण होते हुए भी श्रीमान् वेस्कट कहते हैं—

“फिर भी इस बात का विश्वास करने के लिये दलीलें हैं कि कबीर की शिक्षाएँ धीरे धीरे अधिकतर हिंदू आकार में ढल गई हैं।”

कबीर ऐंड दी कबीरपंथ, पृष्ठ ४६

उनका यह कथन कहाँ तक युक्तिसंगत है, इसको विद्वान् लोग स्वयं विचारें।

धर्म्मसिद्धांत

जो हो, चाहे कबीर की शिक्षाएँ अधिकतर हिंदू आकार में धीरे धीरे ढल गई हों, चाहे अहिंदू भावापन्न हो गई हों, परंतु प्राप्त रचनाओं को छोड़कर उनके धर्म्म-सिद्धांतों के निर्णय का दूसरा मार्ग नहीं है। यह सत्य है, जैसा कि श्रीमान् वेस्कट लिखते हैं कि—

"उनकी शिक्षाओं का स्पष्टीकरण चुनी बातों में से भी चुनी बातों के आधार पर अवश्य ही सदोष होगा; और यह भी संभव है कि वह भ्रांत बनादे, यदि वह उनके समस्त सिद्धांतों की व्याख्या समझी जाय।"

कबीर ऐंड दी कबीर पंथ, पृष्ठ ४७

किंतु यह भी वैसा ही सत्य है कि प्राप्त रचनाओं में से मौलिक और कृत्रिम रचनाओं का पृथक् करना अत्यंत दुर्लभ, वरन् असंभव है। उनमें परस्पर विरुद्ध विचार इस अधिकता से हैं कि उनके द्वारा किसी वास्तविक सिद्धांत का अभ्रांत रूप से निर्णय हो ही नहीं सकता। हाँ, इस पथ का अवलंबन किया जा सकता है कि इन रचनाओं में जो विचार व्यापक भाव से बारंबार प्रकट और प्रतिपादित किए गए हैं, उन्हें मुख्य और उसी विषय के दूसरे विचारों

को गौण मान लिया जाय। पक्व और अपक्व अवस्था के विचारों में अंतर हुआ करता है। अनुभव, ज्ञान-उन्मेष और वयस मनुष्य के विचारों को बदलते हैं। कबीर साहब इस व्यापक नियम से बाहर नहीं हो सकते; इसलिये उनके विचारों में भी अंतर पड़ जाना असंभव नहीं। निदान इसी सूत्र की सहायता से मैं कबीर साहब के धर्म्म-सिद्धांतों के निरूपण का प्रयत्न करता हूँ।

मेरा विचार है कि कबीर साहब एकेश्वरवाद, साम्यवाद, भक्तिवाद, जन्मांतरवाद, अहिंसावाद और संसार की असारता के प्रतिपादक, एवं मायावाद, अवतारवाद, देववाद, हिंसावाद, मूर्तिपूजा, कर्म्मकांड, व्रत-उपवास, तीर्थयात्रा और वर्णाश्रम धर्म्म के विरोधी हैं। वे हिंदुओं और मुसल्मानों के धर्म्म-ग्रंथों और धर्म्मनेताओं के कट्टर प्रतिवादी हैं और प्रायः इनके धर्म्मयाजकों पर बुरी तौर से आक्रमण करते हैं। कहीं कहीं इस आक्रमण की मात्रा इतनी कलुषित और अश्लील है, जो समुचित नहीं कही जा सकती।

हमने कबीर साहब को ऊपर 'एकेश्वरवाद' का प्रतिपादक कहा है, किंतु उनका एकेश्वरवाद कुछ भिन्न है। उनका प्रभु विलक्षण है। उनके मुहाविरे के अनुसार एकेश्वर शब्द ठीक नहीं है; क्योंकि उनका प्रभु ईश्वर, ब्रह्म, पारब्रह्म, निर्गुण, सगुण सब के परे है। इस प्रभु को वे एक स्थान विशेष 'सत्यलोक' का निवासी मानते हैं और उसके लक्षण वे ही बतलाते हैं;

जो वैष्णव ग्रंथों में सगुण ब्रह्म के बतलाए गए हैं। वे कहते हैं कि वह सत्य गुरु के प्रसाद से केवल भक्ति द्वारा प्राप्त होता है। इसके अतिरिक्त उसकी प्राप्ति का और कोई साधन वे नहीं बतलाते। (देखो, शब्द १६—२४)

वे उसका परिचय प्राय: राम शब्द द्वारा देते हैं; किंतु अपनी रचनाओं में हरि, नारायण, सारंगपानी, समरथ, कर्त्ता करतार, ब्रह्म, पारब्रह्म, निरच्छर, सत्यनाम, मुरारि इत्यादि शब्दों का प्रयोग भी उसके लिये करते हैं। अपना रखा हुआ उसका 'साहब' नाम उन्हें बहुत प्यारा है। इस ग्रंथ के अधिकांश पद्य इसके प्रमाण हैं।

साम्यवाद, अहिंसावाद, जन्मांतरवाद, भक्तिवाद और संसार की अनित्यता का निरूपण उन्होंने सर्वत्र किया है। इस ग्रंथ के साम्यवाद, उद्बोधन, उपदेश और चेतावनी, मिथ्याचार और संसार की असारता शीर्षक पद्यों में आप इन सिद्धांतों का उत्तम रीति से प्रतिपादन देखेंगे।

अवतारवाद के विषय में उनकी अनुमति आप इस ग्रंथ में शब्द ४—५ में देखेंगे। और भी स्थानों पर उनको अवतारवाद का विरोध करते देखा जाता है; तथापि ऐसे शब्द भी मिलते हैं, जिनमें अवतारवाद का प्रतिपादन है। निम्नलिखित शब्दों को देखिए—

प्रहलाद पठाए पढ़न शाल। संग सखा बहु लिए बाल।
मोको कहा पढ़ावसि आल जाल। मेरी पटिया लिख देहु श्री गोपाल।

नहिं छोड़ों रे बाबा राम नाम। मोहि और पढ़न सों नहीं काम।
काढ़ि खरग कोप्यो रिसाय। तुझ राखनहारा मोहिं बताय।
प्रभु थंभ तें निकसे कर बिसथार। हरनाखस छेद्यो नख बिदार।
ओइ परमपुरुष देवादिदेव। भगत हेत नरसिंह भेव।
कह कबीर को लखै न पार। प्रहलाद उधारे अनिक बार।
आदि ग्रंथ, पृष्ठ ६५३

राजन कौन तुम्हारे आवै।
ऐसो भाव विदुर को देख्यो वह गरीब मोहिं भावै।
हस्ती देख भरम ते भूला श्रीभगवान न जाना।
तुमरो दूध विदुर को पानी अमृत कर मैं माना।
खीर समान साग मैं पाया गुन गावत रैनि बिहानी।
कबीर को ठाकुर अनंद बिनोदी जाति न काहु की मानी।
आदि ग्रंथ, पृष्ठ ५९६

दर माँ दे ठाढ़े दरबार।
तुझ बिन सुरति करै को मेरो दरसन दीजै खोल किवार।
तुम धन धनी उदार तियागी स्रवनन सुनियत सुजस तुम्हार।
माँगो काहि रंक सब देखों तुम ही ते मेरो निस्तार।
जय देव नामा विप्र सुदामा तिन कौ किरपा भई है अपार।
कह कबीर तुम समरथ दाते चार पदारथ देत न बार।
आदि ग्रंथ, पृष्ठ ४६२

इसके अतिरिक्त उनके पद्यों में सैकड़ों स्थानों पर रघुनाथ, रघुराय, राजाराम, गोविंद, मुरारि इत्यादि अवतार-संबंधी

नामों का प्रयोग उनको अवतारवाद का प्रतिपादक बतलाता है। किंतु जिस दृढ़ता और व्यापक भाव से वे अवतारवाद का विरोध करते हैं, उसे देखकर मैं उनके विरोधमूलक विचार को ही मुख्य और दूसरे विचार को गौण मानता हूँ। एक और प्रकार से इसका समाधान किया जाता है। वह यह कि जब वे परमात्मा का निरूपण करने लगते हैं, तब उस आवेश में अवतारों को साधारण मनुष्य सा वर्णन कर जाते हैं; किंतु जब स्वयं प्रेम में भरकर अवतारों के सामने आते हैं, तब उनमें ईश्वर भाव ही प्रकट करते हैं। यह बात स्वीकार भी कर ली जाय, तो भी इस विचार में गौणता ही पाई जाती है।

मायावाद, देववाद, हिंसावाद, मूर्तिपूजा, कर्म्मकांड, व्रत-उपवास, तीर्थयात्रा, वर्णाश्रम धर्म्म के अनुकूल कुछ कहते उनको कदाचित् ही देखा जाता है। वे इन विचारों के विरोधी हैं। इस ग्रंथ की माया प्रपंच और मिथ्याचार शीर्षक शब्दावली पढ़िए; उस समय आपको ज्ञात होगा कि किस प्रकार वे इन सिद्धांतों की प्रतिकूलता करते हैं।

विचार-परंपरा

श्रीमान वेस्कट कहते हैं कि संभवतः कबीरपंथ हमको एक ऐसा धर्म्म मिलता है, जिस पर हिंदू, मुसल्मान और ईसाई इन तीनों धर्म्मों का थोड़ा बहुत प्रभाव पड़ा है*।

---

* देखो कबीर ऐण्ड दी कबीर पंथ, प्रिफेस पंक्ति १९—२२।

परंतु जब मैं देखता हूँ कि कबीर साहब को ईसाई मजहब का ज्ञान तक नहीं था, तब यह बात कैसे स्वीकार की जा सकती है कि उनके पंथ पर ईसाई मत का भी कुछ प्रभाव पड़ा है। भारत के परम प्रसिद्ध बौद्ध धर्म्म से भी वे कुछ अभिज्ञ नहीं थे; क्योंकि वे इस धर्म्म का भी किसी स्थान पर कुछ वर्णन नहीं करते हैं। वे जब चर्चा करते हैं, तब दो राहों की चर्चा करते हैं और कहते हैं कि कर्त्ता ने यही दो राहें चलाईं। यदि वे कोई तीसरी राह जानते, तो उसका नाम भी अवश्य लिखते। इसके अतिरिक्त वे और अवसरों पर भी इन्हीं दो राहों को सामने रखकर अपने चित्त का उद्गार निकालते हैं; अन्य की ओर उनकी दृष्टि भी नहीं जाती। निम्नलिखित वचन इसके प्रमाण हैं—

"करता किरतिम बाजी लाई। हिंदू तुरुक दुइ राह चलाई।"

कबीर बीजक, पृष्ठ ३९१

"सन्तो राह दोउ हम डीठा।
हिंदू तुरुक हटा नहिं मानै स्वाद सबन को मीठा।"

कबीर बीजक, पृष्ठ २१०

"अरे इन दोहुन राह न पाई।
हिंदुअन की हिंदुआई देखी तुरकन की तुरकाई।
कहैं कबीर सुनो भाई साधो कौन राह है जाई॥"

कबीर शब्दावली, प्रथम भाग पृष्ठ ४८

अब रहे हिंदू और मुसलमान धर्म। पहले मैं यह देखूँगा कि कबीरपंथ, वैष्णवधर्म्म की एक शाखा मात्र है और उसी की विचारपरंपरा और विशाल हिंदू धर्म्म के सिद्धांत उसमें ओतप्रोत हैं, या क्या ? तदुपरांत मुसलमान धर्म्म के प्रभाव की भी मीमांसा करूँगा।

१६०८ ईसवी में धर्म्मेतिहास की सार्वजनिक सभा में श्रीमान् ग्रियर्सन साहब ने 'भागवत धर्म्म' पर एक प्रबंध पढ़ा था। उसका सारमर्म्म 'प्रवासी' नामक बँगला पत्र के दशम भाग, प्रथम खंड, पृष्ठसंख्या ५३८, ५३६ में प्रकाशित हुआ है। उस सारमर्म्म में 'भागवत धर्म्म' के निम्नलिखित सिद्धांत बतलाए गए हैं—

१—भगवान् एक हैं, उन्हीं से विश्व चराचर उत्पन्न हुआ है। अपना विशेष आदेश पालन करने के लिये उन्हीं ने कतिपय देवताओं को बनाया। किंतु जब इच्छा होती है तो, प्रयोजन होने पर पृथ्वी का पापमोचन करने के लिये वे स्वयं धरा में अवतीर्ण होते हैं। भगवान् को पितृ-रूप में स्वीकार करने के लिये भारतवर्ष भागवतों का ऋणी है।

२—इस धर्म्मवाले एक मात्र उस भगवान् की ही भक्ति करते हैं। इस धर्म्म का यही एक विशेषत्व है। इस प्रकार सगुण ईश्वर की उपासना भागवतों से ही भारतवर्ष ने सीखी है।

३—प्रत्येक आत्मा ही परमात्मा से प्रसूत है। जो प्रसूत हुई है, वह अनंत काल तक स्वतंत्र रहेगी और उसका बार

बार जन्म होगा। किसी कर्म्म या ज्ञान के द्वारा नहीं, केवल भक्ति के द्वारा जन्मपरिग्रह रुकता है। उस समय मुक्त आत्मा अनंत काल तक भगवान् के चरणाश्रय में रहती है। इस प्रकार भारत को भागवतों ने ही आत्मा के अमरत्व की दीक्षा दी है।

४—भगवान् के निकट सभी आत्माएँ समान हैं। मुक्तिलाभ के लिये केवल उच्च जाति वा शिक्षित श्रेणी ही विशेष रूप से अधिकारी है, यह ठीक नहीं। समाज के लिये जातिभेद मंगलकारक हो सकता है; परंतु भगवान् की दृष्टि सभी पर समान है। भगवान् को पिता स्वीकार कर लेने से स्वभावतः समस्त मानवों के प्रति भ्रातृभाव अंगीकृत हुआ। भारत ने इसे भी भागवतों से ही पाया।

अब इन सिद्धांतों के साथ कबीर साहब के एकेश्वरवाद, साम्यवाद, भक्तिवाद, जन्मांतरवाद और अहिंसावाद को मिलाइए, देखिए कहीं कुछ अंतर है। पहले जो मैं कबीर साहब के एकेश्वरवाद की व्याख्या कर आया हूँ, वह दूसरों को कुछ उलझन पैदा कर सकती है। परंतु वैष्णव उस एकेश्वरवाद से भली भाँति परिचित हैं। समस्त रामोपासक वैष्णव रामचंद्र को साकेतलोक का निवासी बतलाते हैं। साकेतलोक और उसके निवासी का वैष्णव वैसा ही वर्णन करते हैं, जैसा कबीर साहब ने सत्यलोक और उसके निवासी का किया है। प्रमाण लीजिए और अद्भुत साम्य अवलोकन कीजिए—

अयोध्या च परब्रह्म सरयू सगुणः पुमान् ।
तन्निवासी जगन्नाथः सत्यं सत्यं वदाम्यहम् ।। १ ।।
अयोध्यानगरी नित्या सच्चिदानंदरूपिणी ।
यद्दशांशेन गोलोकः वैकुंठस्थः प्रतिष्ठितः ।। २ ।।

वशिष्ठसंहिता (कबीरबीजक पृ० ४)

कबीरपंथ और संत मतवाले अपने 'साहब' को चैतन्य देश का धनी कहते हैं। वशिष्ठसंहिता में भी साकेतलोक का लक्षण यही लिखा है—

यत्र वृक्ष-लता-गुल्म-पत्र-पुष्प-फलादिकम् ।
यत्किंचित् पक्षिभृंगादि तत्सर्वं भाति चिन्मयम् ।।

कबीरबीजक पृष्ठ २८

साकार, निराकार, परब्रह्म के परे रामचंद्रजी को वैष्णव भी मानते हैं। आनंदसंहिता के निम्नलिखित श्लोकों को देखिए—

स्थूलं चाष्टभुजं प्रोक्तं सूक्ष्मं चैव चतुर्भुजम् ।
परातु द्विभुजं रूपं तस्मादेतत् त्रयं त्यजेत् ।।
आनंदो द्विभुजः प्रोक्तो मूर्त्तश्चामूर्त्त एव च ।
अमूर्त्तस्याश्रयो मूर्त्त परमात्मा नराकृतिः ।।

कबीरबीजक पृष्ठ ३३

महारामायण में श्रीरामचंद्र को सत्यलोकेश ही लिखा है—

वाङ्नोगोचरातीतः सत्यलोकेश ईश्वरः ।
तस्य नामादिकं सर्वं रामनाम्ना प्रकाश्यते ।।

कबीरबीजक पृष्ठ २४८

एक स्थान पर कबीर साहब ने भी कह दिया है कि उनका स्वामी 'साकेत' निवासी है। नीचे के पदों को देखिए—

जाय जाहूत में खुद खाविंद जहँ वहीं मक्कान 'साकेत' साजी।
कहै कबीर ह्वाँ भिश्त दोजख थके वेद कीताब काहूत काजी॥

कबीरबीजक पृ० २६७

इसलिये जिस प्रभु की कल्पना कबीर साहब ने की है, वह वैष्णव विचार-परंपरा ही से प्रसूत है; वह वैष्णव धर्म्म के एकेश्वरवाद का रूपांतर मात्र है।

जब वैष्णव धर्म्म का यही विशेषत्व है कि वह एक मात्र भगवान् की ही भक्ति करता है (देखो सिद्धांत २) श्रौर जब श्रीमद्भागवत को उच्च कंठ से यह कहते सुनते हैं—

वासुदेवं परित्यज्य योऽन्यदेवमुपासते।
तृषितो जाह्नवीतीरे कूपं खनति दुर्मतिः॥

जब वह यही कहता है कि किसी कर्म्म वा ज्ञान के द्वारा नहीं, केवल भक्ति के द्वारा जन्मपरिग्रह रुकता है (देखो सिद्धांत ३) श्रौर जब भक्ति की महिमा यों गाई जाती है—

हरिभक्तिं विना कर्म्म न स्याद्वोशुद्धिकारणम्।
न वा सिद्धेरद्विवेकादि न ज्ञानं नापि मुक्तता॥

तो मायावाद, बहुदेववाद, कर्म्मकांड, व्रत-उपवास, तीर्थ-यात्रा श्रादि श्राप ही उपेक्षित हो गए। चतुर्थ सिद्धांत के श्रनुसार ईश्वर की कृपादृष्टि के सब के समान अधिकारी हो जाने, श्रौर एक परमात्मा की संतान होने के कारण सबको भ्राता मान

लेने पर, और भागवत के मुख से यह सुनकर कि "विप्राद्‌द्विषट् गुणयुतादरविंदनाभपादारविंदविमुखाच्छ्‌वपचं वरिष्ठम्" वर्णाश्रम धर्म्म भी अप्रधान हो जाता है। अहिंसावाद के विषय में गीता का यह गंभीर नाद श्रुतिगत होता है—'अहिंसा परमो धर्म्मः'। अतएव कबीर साहब के सब सिद्धांत लगभग वे ही पाए गए, जो वैष्णव धर्म्म के हैं। निदान इस बात को प्रोफेसर वी० बी० राय भी स्वीकार करते हैं—

"अगर्चे इबादत के बारे में हिंदुओं के और और संप्रदायों के साथ कबीरपंथियों का कुछ भी तअल्लुक नहीं है, ताहम हिंदू मजहब से उनके मजहब के निकलने का काफी सबूत मिलता है। उनकी और पौराणिक वैष्णवों की तालीमात नतीजन् अनक़रीब एकसाँ हैं"। संप्रदाय पृ०-६९, ७०।

कबीर साहब की शिक्षा में दो बातें तो ऐसी हैं जिनका वैष्णव धर्म्म से कोई संबंध नहीं, वरन् उनकी यह शिक्षा उस धर्म्म के प्रतिकूल है। ये दोनों बातें अवतारवाद और मूर्तिपूजा की प्रतिकूलता हैं। अवतारवाद के अनुकूल ही उनकी शिक्षा में कुछ वचन मिलते भी हैं; और इसमें कोई संदेह नहीं कि गौण रूप से वे इसे स्वीकार करते हैं; परंतु मूर्तिपूजा के वे कट्टर विरोधी हैं। मेरा विचार यह है कि उनका यह संस्कार मुसल्मान-धर्म्म-मूलक है। वैदिक काल से उपनिषद् और दार्शनिक कालपर्यंत आर्य्य-धर्म में भी कहीं अवतारवाद और मूर्तिपूजा का पता नहीं चलता, पौराणिक काल में ही

इन दोनों बातों की नीव पड़ी है। अतएव यदि ऊँचे उठा जाय, तो कहा जा सकता है कि कबीर साहब ने प्राचीन आर्य्य-धर्म्म का अवलंबन करके ही अवतारवाद और मूर्त्ति-पूजा का विरोध किया है; किंतु यह काम स्वामी दयानंद सरस्वती का था, कबीर साहब का नहीं। अपठित होने के कारण उनको वेदों और उपनिषदों की शिक्षाओं का ज्ञान न था; इसलिये इतनी दूर पहुँचना उनका काम न था। उनके काल में पौराणिक शिक्षा का ही अखंड राज्य था, जो अवतारवाद और मूर्त्तिपूजा की जड़ है। इसलिये यह अवश्य स्वीकार करना पड़ता है कि ये दोनों बातें उनके हृदय में मुसल्मान धर्म्म के प्रभाव से उदित हुईं।

कबीर साहब जन्मकाल से ही मुसल्मान के घर में पले थे, अपक्व वय तक उनके हृदय में अनेक मुसल्मानी संस्कार परोक्ष एवं प्रत्यक्ष भाव से अंकित होते रहे। वय प्राप्त होने पर वे धर्म्मजिज्ञासु बनकर देश देश फिरे; बलख तक गए। उन्होंने अनेक मुसल्मान धर्माचार्य्यों के उपदेश सुने। ऊँजी के पीर और शेख तकी में उनकी श्रद्धा होने का भी पता चलता है। इसलिये स्वामी रामानंद का सत्संग लाभ करने पर भी उनके कुछ पूर्व संस्कारों का न बदलना आश्चर्य्यजनक नहीं। जो संस्कार हृदय में बद्धमूल हो जाते हैं, वे जीवन पर्यंत साथ नहीं छोड़ते। अवतारवाद और मूर्त्तिपूजा का विरोध आदि कबीर साहब के कुछ ऐसे ही संस्कार हैं। स्वामी रामानंद की यह

महत्ता अल्प नहीं है कि उन्होंने कबीर साहब के अधिकांश विचारों पर वैष्णव धर्म्म का रंग चढ़ा दिया।

स्वतंत्र पथ

श्रीमान् वेस्कट कहते हैं—"साधारणतः यह बात मान ली गई है कि समस्त बड़े बड़े हिंदू संस्कारकों में कबीर और तुलसीदास का प्रभाव उत्तरी और मध्य हिंदुस्तान की अशिक्षित जातियों में स्थायी रूप से अधिक है। सर विलियम हंटर ने बहुत उचित रीति से कबीरदास को पंद्रहवीं शताब्दी का भारतीय लूथर कहा है।"

कबीर ऐंड दी कबीरपंथ, पृष्ठ १

यह बात सत्य है। वैष्णवधर्म ही संस्कारमूलक है; अतएव उस धर्म्म में दीक्षित होकर कबीर साहब में संस्कार-प्रवृत्ति का उदय होना आश्चर्यकर नहीं; किंतु उनकी यह प्रवृत्ति और बातों की अपेक्षा हिंदुओं और मुसल्मानों को एक कर देने की ओर विशेष थी; क्योंकि उस समय की हिंदुओं और मुसल्मानों की वर्द्धमान अशांति उन्हें प्रिय नहीं हुई। श्रीमान् वेस्कट लिखते हैं—

"कबीर की शिक्षा में हमको हिंदुओं और मुसल्मानों के बीच की सीमा तोड़ने का यत्न दृष्टिगत होता है।"

कबीर ऐंड दी कबीरपंथ, प्रीफेस, पंक्ति १६ और १९

"कबीर ने शेख से प्रार्थना की कि वे उनको यह वर दें कि वे हिंदुओं और मुसल्मानों के बीच के उन धार्मिक विरोधों को दूर कर सकें, जो उनको परस्पर अलग करते हैं।"

कबीर ऐंड दी कबीरपंथ, पृष्ठ ४२

निदान इस प्रवृत्ति के उदित होने पर कबीर साहब ने एक ऐसे धर्म्म की नींव डालनी चाही, जिसे दोनों धर्म्मों के लोग असंकुचित भाव से स्वीकार कर सकें। ऐसा करने के लिये उनको दो बातों की आवश्यकता दिखलाई पड़ी। एक तो इस बात की कि सब लोग उनको एक बहुत बड़ा अवतार या पैगंबर समझें, जिससे उनकी बातों का उन पर प्रभाव पड़े। दूसरे इस बात की कि वे उन धर्मपुस्तकों, धर्म्मनेताओं और धर्म्म-याजकों की ओर से उन लोगों के हृदय में अश्रद्धा, अविश्वास और घृणा उत्पन्न करें, जिनके शासन में उस काल में वे लोग थे; क्योंकि बिना ऐसा हुए उनके उद्देश्य के सफल होने की संभावना नहीं थी।

निदान प्रथम बात पर दृष्टि रखकर अवतारवाद के विरोधी होने पर भी कबीर साहब ने अपने को अवतार और सत्यलोक-निवासी प्रभु का दूत बतलाया; और कहा कि जिस पद पर मैं पहुँचा, आज तक कोई वहाँ नहीं पहुँचा। उन्होंने यह दावा भी किया कि केवल हमारी बात मानने से मनुष्य छूट सकता और मुक्ति पा सकता है, अन्यथा नहीं। निम्नलिखित पद्य इसके प्रमाण हैं—

काशी में हम प्रकट भए हैं रामानंद चेताए।
समरथ का परवाना लाए हंस उबारन आए॥

कबीरशब्दावली, प्रथम भाग, पृ० ७१

सारह संख्य के आगे समरथ जिन जग मोहिं पठाय।

कबीरबीजक, पृ० २०

तेहि पीछे हम आइया सत्य शब्द के हेत।

कबीरबीजक, पृ० ७

कहते मोहिं भयल जुग चारी। समझत नाहिं मोहिं सुत नारी॥

कबीरबीजक, पृ० १२५

कह कबीर हम जुग जुग कही। जब ही चेतो तब ही सही॥

कबीरबीजक, पृ० ५९२

जो कोइ होइ सत्य का किनका सो हमको पतिआई।
और न मिलै कोटि करि थाकै बहुरि काल घर जाई॥

कबीरबीजक, पृ० २०

घर घर हम सब सों कही शब्द न सुनै हमार।
ते भवसागर डूबहीं लख चौरासी धार॥

कबीरबीजक, पृ० १९

कहत कबीर पुकार कै सब का उहै हवाल।
कहा हमर मानै नहीं किमि छूटै भ्रमजाल॥

कबीरबीजक, पृ० १३०

जंबूद्वीप के तुम सब हंसा गहिलो शब्द हमार।
दास कबीरा अबकी दीहल निरगुन कै टकसार॥

कबीरशब्दावली, द्वितीय भाग, पृ० ८०

जहिया किरतिम ना हता धरती हता न नीर।
उतपति परलय ना हती तब की कही कबीर॥

कबीरबीजक, पृ० ५९८

ई जग तो जहँड़े गया भया जोग ना भोग।
तिल तिल झारि कबीर लिय तिलठी झारै लोग॥

कबीरबीजक, पृ० ६३२

सुर नर मुनिजन औलिया यह सब उरली तीर।
अलह राम की गम नहीं तहँ घर किया कबीर॥

साखीसंग्रह, पृ० १२५

दूसरी बात पर दृष्टि रखकर उन्होंने हिंदू और मुसल्मान धर्म्म के ग्रंथों की निंदा की, उन्हें धोखा देनेवाला बतलाया और कहा कि माया अथवा निरंजन ने उसकी रचना केवल संसार के लोगों को भ्रम में डालने के लिये कराई। इन बातों के प्रमाण नीचे के वाक्य हैं। इनमें आप उनके धर्म्मनेताओं की भी निंदा देखेंगे।

जोग जज्ञ जप संयमा तीरथ व्रत दाना।
नवधा वेद किताब है झूठे का बाना॥

कबीरबीजक, पृ० ४११

हिंदू मुसल्मान दो दीन सरहद बने वेद कत्तेब परपंच साजी ।

ज्ञानगुदड़ी, पृ० १६

बेद किताब दोय फंद सँवारा । ते फंदे पर आप विचारा ।

कबीरबीजक, पृ० २६९

चार बेद षट शास्त्रऊ औ दस अष्ट पुरान ।
आशा दै जग बाँधिया तीनों लोक भुलान ॥

कबीरबीजक, पृ० १४

औ भूले षट् दरशन भाई । पाखँड भेख रहा लपटाई ।
ताकर हाल होय अधकूचा । छ दरशन में जैन बिगूचा ॥

कबीरबीजक, पृ० ९७

ब्रह्मा विष्णु महेसर कहिए इन सिर लागी काई ।
इनहिं भरोसे मत होइ रहियो इनहूँ मुक्ति न पाई ॥

कबीर शब्दावली, द्वितीय भाग, पृ० १९

सुर नर मुनी निरंजन देवा सब मिलि कीन्हा एक बँधाना ।
आप बँधे औरन को बाँधे भवसागर को कीन्ह पयाना ॥

कबीरशब्दावली, तृतीय भाग, पृ० ३८

माया ते मन ऊपजै मन ते दस अवतार ।
ब्रह्मा विष्णु धोखे गए भरम परा संसार ॥

कबीरबीजक, पृ० ६५०

चार बेद ब्रह्मा निज ठाना । मुक्ति का मर्म्म उनहुँ नहिं जाना ।
हबीबी और नबी कै कामा । जितने अमल सो सबै हरामा ॥

कबीरबीजक, पृ० १०४, १२४

पर धर्म्म और उसके पवित्र ग्रंथों का खंडन करके निज-धर्म्म-स्थापन और सर्व साधारण में अपने को अवतार या पैगंबर प्रकट करने की प्रथा प्राचीन है; कबीर साहब का यह नया आविष्कार नहीं है। किंतु देखा जाता है कि इस विषय में उन्होंने स्वतंत्र पथ अवश्य ग्रहण किया। उनकी इस स्वतंत्रता से मुग्ध होकर 'रहनुमायाने हिंद' के रचयिता कहते हैं—

"उनको खुदा का फरजंद कहना बजा है। वह एक कौम या मजहब न रखते थे। उनका घर दुनिया, उनके भाई-बंद बनीनवा इंसान, और उनका बाप खालिके अर्ज वो समाँ था।"

पृष्ठ २२९

परंतु हम देखते हैं कि वे ही 'रहनुमायाने हिंद' के विद्वान् रचयिता हिंदू मजहब के विषय में यह कथन करते हैं—

"अगर कोई शख्स हिंदू मजहब को जानना, पढ़ना या हासिल करना चाहे, तो वह बड़े बड़े रहनुमा, रिशी और संतों की तलकीन गौर से पढ़े। यह बुजुर्ग लोग खुदा के अवतार थे, उनके अकवाल वेद मुकद्दस हैं, जो आसमानी वही और रब्बानी इलहाम हैं, जो खुदा ताला ने अपनी इनायत से इंसान को इनायत फरमाए हैं।" पृष्ठ २८

"यह एक जात या फिरके का मजहब नहीं है, जैसा कि अवामुन्नास का अकीदा है, बल्कि कुल बनीनवा इंसान के लिये वजा किया गया है। जिस वक्त दुखानी जहाज, रेल, तार,

तिजारत और फतूहात से कुल दुनिया मिल जुलकर एक हो जायगी, एक और रहमुना पैदा होकर जाहिर करेगा कि हिंदू मजहब तमाम दुनिया के इंसानों के लिये है।'' पृष्ठ २८

अब आप देखिए, वे जैसे कबीर साहब को किसी कौम या मजहब का नहीं कहते, उसी प्रकार हिंदू धर्म्म को किसी जाति या फिरके का नहीं बतलाते। जैसे वे बनीनवा इंसान को कबीर साहब का भाई बंद बतलाते हैं, वैसे ही हिंदू मजहब को बनीनवा इंसान का कहते हैं। जैसे वे कबीर साहब का घर दुनिया सिद्ध करते हैं, वैसे ही हिंदू मजहब को दुनिया के लिये निश्चित करते हैं। हिंदू धर्म्म और कबीर साहब दोनों का जनक वे ईश्वर को मानते हैं। फिर कबीर साहब हिंदू मजहब के ही तो सिद्ध हुए; अर्थात् कबीर साहब का वही सिद्धांत पाया गया, जो हिंदू धर्म्म का है। वैदिक धर्म्म को ही वे हिंदू मजहब कहते हैं। परंतु कबीर साहब के जो विचार वेदों के विषय में हैं, उनको मैं ऊपर प्रकट कर आया। मैं यह मानूँगा कि कबीर साहब जब चिंताशीलता से काम लेते हैं और ऊँचे उठते हैं, तब सत्य बात कह जाते हैं। एक स्थान पर उन्होंने स्पष्ट कहा है—'बेद कतेब कहो मति झूठे झूठा जो न बिचारै'।* किंतु उनका यह एकदेशो विचार है; व्यापक विचार उनका वेद और कुरान की प्रतिकूलता-मूलक है। यद्यपि उन्होंने एक महान् उद्देश्य की सिद्धि के

---

* देखो आदि ग्रंथ, पृष्ठ ७२७।

लिये यह स्वतंत्र पथ (अर्थात् ऐसा पथ जो हिंदू मुसल्मानों से अलग अलग है) ग्रहण किया, किंतु मेरा विचार है कि वह उनके महान् उद्देश के अनुकूल न था, जिसका प्रत्यक्ष प्रमाण यह है कि हिंदू मुसल्मानों की विभेद सीमा आज भी वैसी ही अचल अटल है। हिंदू मुसल्मानों के लिये मगहर में अलग अलग बनी हुई उनकी दो समाधियाँ भी इस बात का उदाहरण हैं।

विचार-मर्यादा-पूर्ण, सहानुभूति-मूलक और परिमित होने से ही समादृत होता है। वह विचार कभी कार्यकारी और सुफल-प्रसू नहीं होता, जिसमें यथोचित शालीनता नहीं होती। मनुष्य और कटूक्तियों को किसी प्रकार सहन कर लेता है, परंतु जब उसके पवित्र ग्रंथों और धर्म्मनेताओं पर आक्रमण होता है, तब उसकी सहनशीलता की प्रायः समाप्ति हो जाती है। उस समय वह बहुत सी सुसंगत और उचित बातों को भी स्वीकार नहीं करता। मिठाई से औषधि की कटुता ही नहीं दब जाती, कितनी अप्रिय बातें भी स्वीकृत हो जाती हैं। ऐसे अवसरों पर प्रायः लोग यह कह उठते हैं कि लोहे का मोरचा उँगलियों से मलकर नहीं दूर किया जा सकता; उसके लिये लोहे की रगड़ ही उपयोगिनी होती है। इसी प्रकार समाज की अनेक बुराइयाँ और धर्म्म के नाम पर किए गए कदाचार केवल प्यारी प्यारी बातों और मधुर उपदेशों से ही दूर नहीं होते। उनके लिये कटूक्तियों की कषा ही उप-

कारिणी होती है। यदि यह बात स्वीकार भी कर ली जाय, तो इसका यह अर्थ कदापि नहीं हो सकता कि बुराइयों और कदाचार के साथ भलाइयों और सदाचार की पीठ भी कषा-प्रहार से क्षत-विक्षत कर दी जाय। संस्कार का अर्थ संहार नहीं है। जो क्षेत्र संस्कारक खेत की घासों के साथ अन्न के पौधों को भी उखाड़ देना चाहेगा, वह संस्कारक नाम का अधिकारी नहीं। वेद-शास्त्र या कुरान में कुछ ऐसी बातें हो सकती हैं, जो किसी समय के अनुकूल न हों; हिंदू धर्म्म के नेताओं या मुसल्मान धर्म्म के प्रचारकों के कई विचार ऐसे हो सकते हैं, जो सब काल में गृहीत न हो सकें; किंतु इससे यह नहीं कहा जा सकता कि वेद-शास्त्र या कुरान में सत्य और उपकारक बातें नहीं; और हिंदू एवं मुसल्मान धर्म्म के नेताओं ने जो कुछ कहा, वह सब झूठ और अनर्गल कहा; लोगों को धोखे में डाला और उन्हें उन्मार्गगामी बनाया। वेद-शास्त्र या कुरान को धर्म्म पुस्तक न समझा जाय, हिंदू मुसल्मान धर्म्माचार्य्यों को अपना पथप्रदर्शक न बनाया जाय, इसमें कोई आपत्ति नहीं; किंतु उनके विषय में ऐसी बातें कहना, जो अधिकांश में असंगत हों, कदापि उचित नहीं।

धर्म्मालोचनाएँ धर्म्मसंगत ही होनी चाहिएँ, उनमें हृदयगत विकारों का विकास न होना चाहिए। वेदशास्त्र के शासन में आज भी बीस करोड़ मनुष्य हैं; कुरान संसार के एक पंचमांश मानव की धर्म्म-पुस्तक है। बिना उनमें कुछ

सद्‌गुण या विशेषत्व हुए उनका इतने हृदयों पर अधिकार होना असंभव था। कबीर साहब ने बड़े गर्व और आवेश से स्थान स्थान पर यह कहा है कि हमारे वचन से ही मानव का उद्धार हो सकता है, हमारे शब्द ही लोगों को मुक्त करेंगे। किंतु जो कुछ वेदशास्त्र या कुरान में है, उससे उन्होंने अधिक क्या कहा? कौन सी नई बात बतलाई? वे केवल आध्यात्मिक शिक्षक हैं; किंतु क्या इस पथ में भी वे उतने ही ऊँचे उठे हैं, जितने कि उपनिषद् और दर्शनकार उठ सके? जिस काल संसार में केवल अज्ञान अंधकार था, ज्ञानरवि की एक किरण भी नहीं फूटी थी, उस काल कहाँ से यह मेघ-गंभीर ध्वनि हुई—

सत्यं वद, धर्म्मं चर, स्वाध्यायान् मा प्रमदितव्यम्, मातृदेवो भव, पितृदेवो भव, आचार्य्यदेवो भव, मा हिंस्यात् सर्वभूतानि, ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः,

पुरुष एवेदं सर्वं यद्भूतं यच्च भव्यम्
उतामृतत्वस्येशानो यदन्नेनातिरोहति
सर्वाशा मम मित्रम् भवंतु।

यदि हमारा हृदय कलुषित नहीं है, यदि हममें सत्यप्रियता है, यदि हम न्याय और विवेक को पददलित नहीं करना चाहते, तो हम मुक्तकंठ से कहेंगे—पवित्र वेदों से। आज इसी ध्वनि की प्रतिध्वनि संसार में हो रही है, आज इसी ध्वनि का मधुर स्वर सांसारिक समस्त धर्म्म-ग्रंथों में गूँज रहा है। स्वयं कबीर साहब के वचनों और शब्दों में उसी

की लहर पर लहर आ रही है। किंतु वे ऐसा नहीं समझते, वरन् रमैनी में कहते हैं कि माया द्वारा त्रिदेव और वेदादि की उत्पत्ति केवल संसार को भ्रांत बनाने के लिये हुई है, सत्य शब्द के लिये हमीं आए हैं (देखो कबीर बीजक पृ० १३ और १७ के दोहे १५ और २०) किंतु यह उस मनुष्य के, जिसके हृदय में, मस्तिष्क में, धमनियों में, रक्त की बूँदों में, चैतन्य की कलाएँ प्रतिपल दृष्टिगत हो रही हैं, इस कथन के समान है कि चैतन्य से हमारा कोई संपर्क नहीं, क्योंकि हम स्वयं सत्य हैं। कुरान के विषय में भी उनकी उत्तम धारणा नहीं; और यही कारण है कि जो जी में आया, उन्होंने इन ग्रंथों के विषय में लिखा। किंतु शास्त्र कहता है—

धर्म्मं यो बाधते धर्म्मः न सु धर्म्मः कुधर्म्म तत्।
धर्म्माविरोधी यो धर्म्मः स धर्म्मः सत्यविक्रमः॥

जो धर्म्म किसी धर्म्म को बाधा पहुँचाता है, वह धर्म्म नहीं है, कुधर्म्म है। जो धर्म्म अपर धर्म्म का अविरोधी है, सत्य पराक्रमशील धर्म्म वही है। आज दिन संसार में शांति फैलाने के कामुक इसी पथ के पथी हैं, थियोसोफिकल सोसाइटी का यही महामंत्र है, अतएव अनेक अंशों में उसको सफलता भी हो रही है। हिंदू धर्म्म स्वयं, इस महामंत्र का ऋषि, और चिरकाल से उसका उपासक है। यही कारण है कि इसके विभिन्न विचारों के नाना संप्रदाय हिंदुत्व के एक सूत्र में आज भी बँधे हैं।

किसी किसी का विचार है कि कबीर साहब अपठित थे, उन्होंने वेद-शास्त्र उपनिषदों को पढ़ा नहीं, कुरान के विषय में भी वे ऐसे ही अनभिज्ञ रहे; इसलिये उन्होंने इन ग्रंथों के माननेवालों के आचार व्यवहार को जैसा देखा, वैसे ही उनके विषय में अनुमति प्रकट की। किंतु मैं इस विचार से सहमत नहीं। कबीर साहब चिंताशील पुरुष थे। वे यह भी समझ सकते थे कि सब मतों के सर्व साधारण और महान् एवं मान्य पुरुषों के आचार-व्यवहार में अंतर हुआ करता है। उनके नेत्र के सामने ही उसी समय में हिंदुओं में स्वामी रामानंद और मुसलमानों में शेख तकी जैसे महापुरुष मौजूद थे। फिर यह कैसे स्वीकार किया जा सकता है कि उन्होंने उक्त धर्म्मग्रंथों के माननेवालों के आधार पर ही उन ग्रंथों के प्रतिकूल लिखा। मेरा विचार यह है कि उन्होंने एक नवीन धर्म्मस्थापन की लालसा से ही ऐसा किया।

स्वाधीन चिंता

यह भी कहा जा सकता है कि कबीर साहब स्वाधीन चिंता के पुरुष थे। उन्होंने समय का प्रवाह देखकर धर्म्म और देश के उपकार के लिये जो बातें उचित और उपयोगिनी समझीं, उनको अपने विचारों पर आरूढ़ होकर निर्भीक चित्त से कहा। उन्होंने अपने विचारों के लिये कोई आधार नहीं ढूँढ़ा, किसी ग्रंथ का प्रमाण नहीं चाहा। उन्होंने सोचा कि

जो बात सत्य है, वास्तविक है, उसकी सत्यता और वास्तविकता ही उसका प्रधान आधार है। उसके लिये किसी ग्रंथ-विशेष का सहारा क्या? उनके जी में यह बात भी आई कि जिन वेदशास्त्रों और कुरान का आश्रय लेकर हिंदू मुसल्मान धर्म्मयाजक नाना कदाचार कर रहे हैं, उन्हीं को उन कदाचारों का विरोध करने के लिये अवलंब बनाना कदापि युक्तिसंगत नहीं; वरन् उनके विरुद्ध आंदोलन मचाना ही उपकारक होगा। निदान उन्होंने ऐसा ही किया। झूठे संस्कारों के वश लोग नाना क्रियाकांड में फँसे हुए थे, आडंबर-मूलक नाना आचार-व्यवहार को धर्म्म समझ रहे थे, उनके द्वारा वे साँसत तो भोगते ही थे, वंचित भी हो रहे थे। उनसे यह बात नहीं देखी गई। उन्होंने उनके विरुद्ध अपना प्रबल स्वर ऊँचा किया; बड़े साहस के साथ केवल अपने आत्मबल के सहारे उनका सामना किया। उनका सत्य व्यवहार, उनका दृढ़ विचार ही इस मार्ग में उनका सच्चा सहायक था। उनको किसी प्राचीन धर्म्म-ग्रंथ की सहायता अभिप्रेत थी ही नहीं। फिर वे क्यों किसी धर्म्म-ग्रंथ का मुख देखते? मीठी बातें तो वह करता है जिसका कुछ स्वार्थ होता है, जो डरता है, जो प्रशंसा अथवा मान का भूखा रहता है। जो इन बातों से कुछ संबंध नहीं रखता, वह ठीक बातें कहेगा, वे चाहे किसी को भली लगें या बुरी, उसको इसकी चिंता ही क्या? धर्म्म-ध्वजियों को जो कुछ कहा जाय, सब ठीक है। वे इस योग्य

नहीं कि उनसे शिष्टता के साथ बर्ताव किया जाय। अनेक धार्मिक और सामाजिक कुसंस्कार सीधी सादी और प्यार की बातों से दूर नहीं होते। उनके लिये जिह्वा को तलवार बनाना पड़ता है; क्योंकि बिना ऐसा किए कुसंस्कारों का संहार नहीं होता। ये ऐसी प्रत्यक्ष बातें हैं, जो सर्वसम्मत हैं। इसके लिये किसी धर्मग्रंथ का आश्रय अपेक्षित नहीं।

ये बड़ी ही प्यारी और अतिमनोहर बातें हैं। प्राय: धर्म्म-संस्कारकों के कार्य्यों का अनुमोदन करने के लिये ऐसी ही बातें कही जाती हैं। मैं भी इनको उचित सीमा तक मानता हूँ, परंतु सर्वांश में नहीं। जो आत्म-निर्भर-शील संस्कारक या महात्मा हैं, उनका पद बहुत ऊँचा है। परंतु उनको यह पद उत्पन्न होते ही नहीं प्राप्त हो जाता। माता, पिता, महात्मा जनों और विद्वानों के संसर्ग, नाना शास्त्रों के अवलोकन और सांसारिक घटनाओं के घात प्रतिघात के निरीक्षण से शनैः शनैः प्राप्त होता है। धर्म्म की लहरें संसार में व्याप्त हैं; परंतु वे किसी आधार से हृदय में प्रवेश करती हैं। प्रकृति अपरिमित ज्ञान का भांडार है, पत्ते पत्ते में शिक्षापूर्ण पाठ है, परंतु उनसे लाभ उठाने के लिये अनुभव आवश्यक है। अग्नि में दाहिका शक्ति है, पत्थर में हम उसे अविकसित अवस्था में पाते हैं। वह विकसित होती है, किंतु किसी आधार से। धर्म्म की लहरें संसार में व्याप्त हैं; परंतु उनके अंशों के उद्भावन-कर्त्ता भी हैं। पृथ्वी आज भी घूमती है, पहले भी घूमती

थी, आगे भी घूमती रहेगी। उसमें आकर्षिणी शक्ति पहले भी थी, अब भी है, आगे भी रहेगी। परंतु इन बातों का आविष्कार करके संसार को लाभ पहुँचानेवाले भास्कराचार्य्य इत्यादि आर्य्य विद्वान् अथवा गेलीलियो और न्यूटन हैं। क्या इन अविष्कारकों का संसार को कृतज्ञ न होना चाहिए? जिन आधारों से अग्नि का विकास होता है, क्या वे उसके उपकारक अथवा उपयोगी नहीं? इसी प्रकार वह विचारपरंपरा कि जिससे किसी आत्मनिर्भरशील महात्मा की आत्मा विकसित होती है, क्या अनादरणीय और असमाननीय है? क्या वे ग्रंथ, जिन्होंने संसार को सबसे प्रथम उस विचारपरंपरा से अभिज्ञ किया, इस कारण निंदा के योग्य हैं कि उनके नाम से कई स्वार्थी आत्माएँ सदाचार और मिथ्याचार में प्रवृत्त रहें? यदि वे निंदा के योग्य हैं, तो सत्य का अपलाप हुआ या नहीं? वास्तविकता उपेक्षित हुई या नहीं? और क्या ऐसा करना किसी महान् आत्मा का कर्त्तव्य है? कोई आत्म-निर्भर-शील महात्मा यदि अपने सिद्धांतों के प्रचार के लिये ऐसे ग्रंथों की सहायता ग्रहण करे, तो उसका कार्य्यपथ और विस्तृत होगा, उसको सुकरता छोड़ दुरूहता का सामना करना पड़ेगा। परंतु यदि उसकी अप्रवृत्ति हो, तो वह ऐसा नहीं भी कर सकता है। परंतु उसका यह कर्त्तव्य कदापि न होगा कि एक असंगत बात के आधार पर या योंही वह उनकी निंदा करने लगे, और उन्हें कुत्सित ठहरावे। आडंबरों के बहाने

धर्म्म-त्याग नहीं, आडंबर में पड़े धर्म्म का उद्धार ही सदाशयता है। यदि कोई शस्त्र के सहारे आत्मघात कर ले, तो क्या उससे शस्त्र की उपयोगिता अगृहीत हो जानी चाहिए? यदि नहीं, तो वेद-शास्त्र की निंदा का क्या अर्थ? स्वाधीन चिंता का तो यह दुरुपयोग मात्र है।

झूठे संस्कारों, आडंबर-मूलक आचार-व्यवहारों और प्रवंचना के तो शास्त्र स्वयं विरोधी हैं, किंतु वे समझते हैं कि घाव के लिये मरहम की भी आवश्यकता है। अतएव वे संयत हैं। वे जानते हैं कि वही कठोरता प्रभाव रखती है, जो सहानुभूतिमूलक हो। जहाँ हृदय का ईर्ष्या द्वेष ही कार्य्य करता है, वहाँ अमृत भी विष बन जाता है। अतएव वे गंभीर हैं। कदाचार और अपकर्म्म एक साधारण मनुष्य को भी निंदित बना देते हैं। फिर धर्म्मयाजकों और धर्म्मनेताओं को वे निंदनीय क्यों न बनावेंगे? उनके लिये कदाचारी और कुकर्म्मी होना और भी लज्जा की बात है; क्योंकि जो प्रकाश फैलानेवाला है, यदि वही अँधेरे में ठोकरें खा खाकर गिरे, तो वह दूसरों के लिये उजाला क्या करेगा? शास्त्र भी इसको समझते हैं, इसलिये मुक्तकंठ से कहते हैं—

कर्म्मेंद्रियाणि संयम्य यः शुचिः मनसा स्मरन्।
इंद्रियार्थान् विमूढात्मा मिथ्याचारः स उच्यते॥
न शरीरमलत्यागान्नरो भवति निर्म्मलः।
मानसे तु मले त्यक्ते भवत्यंतरसुनिर्मलः॥

सर्वेषामेव शौचानामान्तः शौचं परं स्मृतम् ।
योऽन्तःशुचिर्हि स शुचिः न मृद्वारिशुचिः शुचिः ॥
नक्तं दिनं निमज्याप्सु कैवर्त्तः किमु पावनः ।
शतशोति तथा स्नातः न शुद्धः भावदूषितः ॥
पठकाः पाठकाश्चैव ये चान्ये शास्त्रचिंतकाः ।
सर्वे व्यसनिनो मूर्खा यः क्रियावान् स पंडितः ॥
वेदास्त्यागश्च यज्ञाश्च नियमाश्च तपांसि च ।
न विप्रभावदुष्टस्य सिद्धिं गच्छति कर्हिचित् ॥
न गच्छति विना पानं व्याधिरौषधशब्दतः ।
विना परोक्षानुभवं ब्रह्मशब्दैर्न मुच्यते ॥

मनुष्य का जीवन-समय थोड़ा है, संसार के रहस्य नितांत गूढ़ हैं, ज्ञातव्य बातों की सीमा नहीं, मनुष्य केवल अपने अनुभव पर निर्भर रहकर अनेक भूलें कर सकता है; अतएव उसको अपने पूर्वज महानुभावों के अनुभवों से काम लेना पड़ता है, उनके सद्विचारों से लाभ उठाने की आवश्यकता होती है। वेद-शास्त्र इत्यादि ऐसे ही अनुभवों और सद्विचारों के संग्रह तो हैं। यदि उनसे कोई लाभ उठाना चाहे तो लाभ उठा सकता है, न उठावे उसकी इच्छा, इसकी कोई शिकायत नहीं। परंतु उसको यह कहने का अधिकार नहीं कि ये समस्त शास्त्र ही मिथ्याचारों के आधार हैं।

मिष्टभाषण, शिष्टता, मितभाषिता, गंभीरता, शालीनता, ये सद्गुण हैं; इनकी आवश्यकता जितनी अपने लिये है, उतनी

औरों के लिये नहीं। मैं यह मानने के लिये प्रस्तुत नहीं कि धर्म्म-प्रचारक का धर्म्मप्रचार में कोई स्वार्थ नहीं होता। यह दूसरी बात है कि वह धर्म्मप्रचार और लोकोपकार ही को अपना स्वार्थ मानता है; पर आत्मसंबंधी न होने के कारण उसका यह भाव परमार्थ अवश्य कहलाता है। परंतु स्मरण रहे कि स्वार्थ के लिये मिष्टभाषिता इत्यादि की जितनी आवश्यकता है, उससे कहीं अधिक इनकी आवश्यकता परमार्थ के लिये है। जहाँ चक्रवर्ती नृपाल की शस्त्रधारा कुंठित हो जाती है, वहाँ महापुरुष का एक मधुर वचन ही काम कर जाता है। मैं चिरसंचित कुसंस्कार दूर करने के लिये ओजस्वी और तीव्र भाषण की आवश्यकता समझता हूँ, परंतु दुर्वचन और असंयत-भाषिता की नहीं; क्योंकि ये आदर्श पुरुष के अस्त्र नहीं। बिना क्रोध हुए दुर्वचन मुख से निकलते नहीं, असंयत भाषण होता नहीं; किंतु क्रोध करना महापुरुषों का धर्म्म नहीं। इसके अतिरिक्त मिथ्याचारी एवं कदाचारी का कलुषित-आत्मा होना सिद्ध है, कलुषित आत्मा दया का पात्र है, क्रोध का पात्र नहीं है।

महात्मा सुकरात एक दिन अपनी शिष्य-मंडली के साथ राजमार्ग से होकर कहां जा रहे थे कि उनके सामने से एक मदांध धनिक-पुत्र निकला, और अकड़ता हुआ बिना कुछ शिष्टाचार प्रदर्शन किए चला गया। यह बात उनकी शिष्य-मंडली को बुरी लगी और उन्हें क्रोध आया। इस पर सुकरात ने कहा—इसमें क्रोध करने की क्या बात है? यह बतलाओ,

यदि सड़क पर तुमको कोई लँगड़ा मिलता और पाँव सीधे न रखता, तो क्या तुम लोग उस पर क्रोध करते ? लोगों ने कहा—नहीं, वह तो लँगड़ा होता। रोग से उसका पाँव ठीक नहीं, फिर वह पाँव सीधे कैसे रखता, वह तो दया का पात्र है। सुकरात ने कहा इसी प्रकार धनिक पुत्र भी दया का पात्र है, क्योंकि उसकी आत्मा मलिन है, और उसे मद जैसे कुरोग ने घेर रखा है।

उपदेश के समय चैतन्यदेव को दो मुसल्मानों ने एक घड़े के टुकड़े से मारा। उनका सिर फट गया और रुधिर-धारा से शरीर का समस्त वस्त्र भीग गया। परंतु उन्हें क्रोध नहीं आया। वे प्यार के साथ आगे बढ़े, और उन दोनों को गले से लगाकर बोले—"तुम लोग तो सबसे अधिक दया और उपदेश के अधिकारी हो; क्योंकि औरों से तुम लोगों को इनकी अधिक आवश्यकता है।" वे दोनों उनका यह भाव देखकर इतने मुग्ध और लज्जित हुए कि तत्काल शिष्य हो गए और काल पाकर उनके प्रधान शिष्यों में गिने गए।

धर्म्मग्रंथों को बुरा कहना, आडंबरों की ओट में धर्म्म-साधन की सुंदर पद्धतियों की भी निंदा करना स्वाधीन चिंता नहीं है। मानवों की मंगल-कामना से, उपकार की इच्छा से, उनमें परस्पर सहानुभूति और ऐक्य-संपादन एवं भ्रातृभाव-उत्पादन के लिये, उन्हें सत्पथ पर आरूढ़ और सद्भावों अथच सद्विचारों से अभिज्ञ करने के अर्थ धर्म्म

अथवा मजहबों की सृष्टि है। 'तुम लोग परस्पर सहानुभूति और ऐक्य रखो, एक दूसरे को भाई समझो, सत्पथ पर चलो, सद्विचारों से काम लो' केवल इतना कहने से ही काम नहीं चलता। इन उद्देश्यों की पूर्त्ति के लिये कुछ पद्धतियाँ, नियम और पर्व-त्योहार भी, देशकाल और पात्र का विचार करके बनाने पड़ते हैं; क्योंकि ये ही सहानुभूति और ऐक्य इत्यादि के साधन होते हैं। ये मनुष्य-बुद्धि से ही प्रसूत हैं, अतएव इनमें न्यूनता और अपूर्णता हो सकती है; परंतु इन साधारण दोषों के कारण ये सर्वथा त्याज्य नहीं कहे जा सकते। यदि धर्म्म की आवश्यकता है, तो इनकी भी आवश्यकता है। स्वाधीन चिंता का यह काम है कि आवश्यकतानुसार वह उनको काटती छाँटती रहे, ठीक करती रहे; संकीर्ण स्थानों को विस्तृत बनाती रहे। उसका यह काम नहीं है कि उनको मटियामेट कर दे और उनके स्थान पर कोई उससे निम्न कोटि की पद्धति इत्यादि की स्थापना न करके समाज को उच्छृंखल कर दे। कोई कहते हैं कि किसी धर्म्म या मजहब की आवश्यकता ही क्या? किंतु इस बात के कहने के समय पूरी चिंताशीलता का परिचय नहीं दिया जाता। सदाचार, ईश्वर-विश्वास और शील की आवश्यकता मनुष्य मात्र को है। जो ईश्वर-विश्वासी नहीं हैं, उदार और सत्शील का समादर वे भी करते हैं, वरन् दृढ़ता से करते हैं। मजहब इन्हीं बातों की शिक्षा तो देते हैं! फिर मजहब की आवश्यकता

क्यों नहीं ? धर्म्म के सार्वभौम सिद्धांत सब मजहबों में पाए जाते हैं; क्योंकि उन सबका उद्गम स्थान एक है। तारतम्य होना स्वाभाविक है; परंतु सब मजहबों में वे इतनी मात्रा में मौजूद हैं कि मनुष्य उनके द्वारा सदाचार इत्यादि सीख सके। देशाचार, कुलाचार, अनेक सामाजिक रीति-रस्म, सदाचार इत्यादि बाहरी आवरण मात्र हैं। उनकी आवश्यकता एकदेशीय है। अनेक दशाओं में वे उपेक्षित हो जाते हैं; किंतु धर्म्म के सार्वभौम सिद्धांत मनुष्य मात्र के लिये आवश्यक हैं, और ऐसी अवस्था में कोई विद्वान् या महात्मा यह नहीं कह सकता कि मेरा कोई धर्म्म नहीं। वास्तविक बात तो यह है कि संसार की कोई वस्तु बिना धर्म्म के नहीं है। हम लोग वैदिक मार्ग को इसी लिये धर्म्म के नाम से अभिहित करते हैं। मजहब और रिलिजन संज्ञाएँ इतनी व्यापक नहीं हैं। वैदिक धर्म्म में अधिकारी-भेद है, इसलिये यह पात्र के अनुसार धर्म्म की व्यवस्था करता है। साथ ही यह भी कहता है—

सक्ताः कर्मण्यऽविद्वांसो यथा कुर्वन्ति भारत ।
कुर्य्याद्विद्वांस्तथाऽसक्तश्चिकीर्षुर्लोकसंग्रहम् ॥
केवलं शास्त्रमाश्रित्य न कर्त्तव्यो विनिर्णयः ।
युक्तिहीनविचारेण धर्म्महानिः प्रजायते ॥
युक्ति-युक्तमुपादेयं वचनं बालकादपि ।
अन्यं तृणमिव त्याज्यमप्युक्तं पद्मजन्मना ॥

अनन्तशास्त्रं बहुवेदितव्यं स्वल्पश्च कालो बहवश्च विघ्नाः ।
यत् सारभूतं तदुपासितव्यं हंसः यथा क्षीरमिवाम्बुमिश्रम् ॥

स्वाधीन चिंता यही तो है ! एक धर्म्म होने के कारण ही वेद-शास्त्र के सिद्धांत अधिक उदार हैं । इसी से वह कहता है कि प्राणी मात्र मोक्ष का अधिकारी है । किसी समाज, देश या मजहब का मनुष्य क्यों न हो, जिसमें सदाचार है, धर्म्म-परायणता है, ईश्वर-विश्वास है, वह अवश्य मुक्त होगा । वह समझता है कि परमात्मा घट घट में व्याप्त है, अंतर्यामी है; यदि उसे कोई राम, हरि, इत्यादि शब्दों में उद्बोधन न करके गॉड या अल्लाह इत्यादि शब्दों से उद्बोधन करता है, तो क्या परमात्मा उसकी भक्ति को अगृहीत करेगा ? उसको चाहे जिस नाम से पुकारें, यदि सच्चे प्रेम से भक्ति-गद् गद् चित्त से पुकारेंगे, तो वह अवश्य अपनावेगा । यदि कोई सत्य बोलता है, परोपकार करता है, सदाचारी है, परदुःखकातर है, लोक-सेवा-परायण है, धर्मात्मा है, तो परमात्मा उसे अवश्य अंक में ग्रहण करेगा । उससे यह न पूछेगा कि तू हिंदू है या मुसल्मान या क्रिश्चियन या बौद्ध या अन्य । यदि वह ऐसा करे, तो वह जगत्पिता नहीं, जगन्नियंता नहीं, विश्वात्मा नहीं, सर्वव्यापक नहीं, न्यायी नहीं । जिसका सिद्धांत इसके प्रतिकूल है, उसका वह सिद्धांत किसी मुख्य उद्देश्य का साधक हो सकता है; परंतु वह उदार नहीं है, व्यापक नहीं है, अनुदार, अपूर्ण और अव्यापक है । हिंदू धर्म्म उस पर आक्रमण नहीं करता । वह

जानता है कि भगवान् भुवनभास्कर के अभाव में दीपक भी आदरणीय है। संसार को मुग्ध करता हुआ वह जगत्पिता की ओर प्रवृत्त होकर उच्च कंठ से यही कहता है—

"रुचीनां वैचित्र्यात् कुटिलऋजुनानापथयुषाम्,
नृणामेको गम्यस्त्वमसि पयसामर्णव इव ॥"

साथ ही एक पवित्र ग्रंथ से यह ध्वनि होती है—

ये यथा मां प्रपद्यंते तांस्तथैव भजाम्यहम्।
मम वर्त्मानुवर्त्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः॥

स्वाधीन चिंते, तेरा मुख उज्वल हो, तुझसे ही प्रसूत तो ये सद्विचार हैं। इससे उच्च स्वाधीन चिंता क्या है, मैं यह नहीं जानता।

संत मत

संत मत क्या है? तत्त्वज्ञता। गोस्वामी तुलसीदासजी कहते हैं—'मधुकर सरिस संत गुनग्राही,' 'संत हंस गुन गहहिं पय, परिहरि बारि बिकार'। इसी की प्रतिध्वनि हम मौलाना रूम के इस शेर में सुनते हैं—"मन ज कुरआँ मग्ज रा बरदाश्तम्। उस्तखाँ पेशे सगाँ अंदाख्तम्—मैंने कुरान से मगज ले लिया और हड्डी कुत्तों के सामने डाल दी। आँखवाले के लिये पेड़ का एक पत्ता भेदों से भरा है। जिसमें विवेक-बुद्धि नहीं, उसके लिये संसार के समस्त धर्म्मग्रंथों में भी कुछ सार नहीं। धर्म्म के साधनों को आडंबर कहकर हम उनसे

घृणा कर सकते हैं; परन्तु तत्त्वज्ञ की दृष्टि उसके तत्त्व को नहीं त्याग करती। विवेकशील कीचड़ में पड़े रत्न को भी ग्रहण करते हैं; कीचड़ में लिप्त होने के कारण उसे अग्राह्य नहीं करते।

कबीर साहब ने एक शब्द में (देखो शब्द १९४) कहा है, कि जिनके जी में नाम नहीं बसा है उनके पुस्तक पढ़ने, सुमिरनी लेने, माला पहनने, संख बजाने, काशी में बसने, गंगाजल पीने, व्रत रखने, तिलक देने से क्या होगा? ऐसे शब्दों को पढ़कर लोग यह समझते हैं कि इनमें पुस्तक पढ़ने इत्यादि का खंडन है; किंतु वास्तव में ये शब्द खंडनात्मक नहीं हैं। इसी शब्द को देखिए; इसमें कहा है कि जिनके जी में नाम नहीं बसा है, अर्थात् परमात्मा की भक्ति करना या धर्म्म करना जिनका उद्देश्य नहीं है, उनके पुस्तक इत्यादि पढ़ने से क्या होगा? सिद्धांत यह कि पुस्तक पढ़ना, माला पहनना, सुमिरनी लेना इत्यादि धर्म्म के साधन हैं। धर्म्म के उद्देश्य से यदि ये सब क्रियाएँ की जायँ, तब तो ठीक है, उचित है; किंतु यदि इनको धर्म्म-साधन के स्थान पर अधर्म्म का साधन बना दिया जाय, इनके द्वारा लोगों को ठगा जाय, छल-प्रपंच किया जाय, पेट पाला जाय, तो इन कर्मों के करने से क्या होगा? समस्त हिंदू शास्त्रों का यही सिद्धांत है, कबीर साहब भी ऐसे शब्दों में यही कहते हैं। शब्द १८८ तथा १९६ ध्यानपूर्वक पढ़िए। किंतु वे कभी कभी ऐसा भी कह जाते हैं कि 'जोग जज्ञ जप संयमा तीरथ व्रत दाना' झूठे का

बाना है; परन्तु यह उनका गौण विचार है। यदि योग का खंडन उनको अभीष्ट होता, तो व्यापक भाव से इसे परमात्मा की प्राप्ति का साधन वे न बतलाते (देखो शब्द २८—३२)। इसी प्रकार शील, क्षमा, उदारता, संतोष, धैर्य्य इत्यादि शीर्षक दोहावली में आप संयम और दान आदि का गुणगान देखेंगे। इन सब विषयों में कबीर साहब की विचारपरंपरा सर्वांश में हिंदू-भावापन्न है। किंतु चौरासी अंग की साखी में उन्होंने "तीरथ व्रत का अंग" और "मूरत पूजा का अंग" शीर्षक देकर इन सिद्धांतों का खंडन किया है। उनको स्फुट रीति से हिंदू मुसल्मानों के कतिपय छोटे मोटे धर्म्मसाधनों पर भी आक्रमण करते देखा जाता है। मैं इनमें से कतिपय विषयों को लेकर देखना चाहता हूँ कि वास्तव में इनमें कुछ तत्त्व है या नहीं। यह कहा जा सकता है कि कबीर साहब ने हिंदू मुसल्मानों के अनेक सिद्धांतों में से जिनमें अधिक तत्त्व देखा, उनको ग्रहण कर लिया, शेष को छोड़ दिया। इस विषय में उन्होंने तत्त्वज्ञता ही का परिचय तो दिया है। किंतु निवेदन यह है कि उन्होंने उनको छोड़ा ही नहीं, उनका खंडन भी किया है, उनको निस्सार बतलाया है; अतएव मैं यही देखना चाहता हूँ कि वास्तव में उनमें कुछ सार या तत्त्व है या नहीं। तीर्थ के विषय में वे कहते हैं—

तीरथ गए ते बहि मुए जूड़े पानी न्हाय।
कह कबीर संतो सुनो राक्षस है पछिताय॥

तीरथ भइ बिख बेलरी रही जुगन जुग छाय ॥
कबिरन मूल निकंदिया कौन हलाहल खाय ॥

कबीरबीजक, पृ० ६०१, ६०२

क्या वास्तव में तीर्थ जाने से राक्षस होना पड़ता है ? क्या वास्तव में वह विष की बेलि है ? क्या उनका सेवन हलाहल खाना है ? क्या कबीरपंथियों की भाँति उसकी जड़ ही काट देनी चाहिए ? किंतु हम देखते हैं कि 'कबिरन' ने भी उसकी जड़ नहीं काटी। काशी का कबीरचौरा और मगहर कभी तीर्थस्थान नहीं थे, किंतु कबीर-पंथियों ने ही आज इन्हें तीर्थस्थान बना दिया। क्यों ? इसलिये कि एक में उनके गुरु का जन्मस्थान है; और दूसरे में उनके तमोमय हृदय को ज्योतिर्मय बनानेवाले किसी महापुरुष का स्मृति-चिह्न है। वहाँ आज भी उनके संप्रदाय के विज्ञानी और विचारवान् पुरुष समय समय पर पधारते रहते हैं, जिनसे उनके पंथ का जीवन है। वहाँ पहुँचने पर प्रायः उनके सत्संग का सौभाग्य प्राप्त होता है, जिससे हृदय का कितना तम विदूरित होता है। और पहुँचनेवालों को वे अवसर प्राप्त होते हैं, जो उन्हें घर बैठे किसी प्रकार न प्राप्त होते। वे वर्ष में एक बार उस पंथ के महात्माओं के मिलन के केंद्र हैं, जो एकत्र होकर न केवल विचार परिवर्तन करते हैं, वरन् अपने पंथ को निर्दोष बनाने के विषय में परामर्श करते हैं; और यह सोचते हैं कि किस प्रकार उसको समुन्नत और सुशृंखल बनाया जाय। ऐसे अव-

सर पर जन-साधारण को और उनके पंथ के लोगों को उनके द्वारा जो लाभ पहुँचता है, वर्ष में फिर कभी वैसा अवसर हाथ नहीं आता। इनमें कौन सी बात बुरी है कि जिसके लिये इन स्थानों के उत्पन्न करने की आवश्यकता समझो जाय, या इनको विष हलाहल कहा जाय? संपूर्ण तीर्थों का उद्देश्य यही तो है? किसी महान् उद्योग या धर्म-संघट्ट का कार्य उस समय तक कदापि उत्तमता से नहीं हो सकता, जब तक कि उसके लिये कुछ स्थान प्रधान केंद्र की भाँति न नियत किए जायँ। तीर्थ ऐसे ही स्थान तो हैं! संसार में कौन जीवित जाति और सप्राण धर्म्म है, जो अपने उन्नायकों और पथ-प्रदर्शकों की जन्मभूमि अथवा लीलाक्षेत्र या तपस्थान को आदर-सम्मान की दृष्टि से नहीं देखता? उनकी सजीवता और सप्राणता की जड़ उसी वसुंधरा की रज तो है। फिर उनमें उनकी प्रतिष्ठाबुद्धि क्यों न होगी? जिस दिन यह प्रतिष्ठाबुद्धि उनके हृदय से लुप्त होगी, उसी दिन उनकी सजीवता और सप्राणता लोकांतरित होगी; क्योंकि उनमें परस्पर ऐसा ही घना संबंध है। यदि इसमें देशाटन की उपकारिता मिला दी जाय, तो उसका महत्त्व और भी अधिक हो जाता है। फिर तीर्थों के रसातल पहुँचने का क्या अर्थ? तीर्थ के उद्देश्यों के समझने में जन-समुदाय का भ्रांत हो जाना संभव है; तीर्थों का कतिपय अविवेकियों के अकांडतांडव से कलुषित और कलंकित हो जाना भी असंभव नहीं; परंतु इन कारणों से तीर्थों

को ही नष्ट कर देना समुचित नहीं; अन्यथा संस्कारों की समाज को आवश्यकता ही क्या? शास्त्र यह समझते हैं कि—

तपस्तीर्थं क्षमातीर्थं तीर्थमिन्द्रियनिग्रहः ।
सर्वभूतदयातीर्थं ध्यानतीर्थमनुत्तमम् ॥
एतानि पंचतीर्थानि सत्यं षष्ठं प्रकीर्तितम् ।
देहे तिष्ठन्ति सर्वस्य तेषु स्नानं समाचरेत् ॥
दानं तीर्थं दमस्तीर्थं संतोषस्तीर्थमुच्यते ।
ब्रह्मचर्य्यं परं तीर्थं तीर्थं च प्रियवादिता ॥
ज्ञानं तीर्थं धृतिस्तीर्थं तपस्तीर्थमुदाहृतम् ।
तीर्थानामपि तत्तीर्थं विशुद्धिर्मनसः परा ॥—महाभारत ।
स स्नातः सर्वतीर्थेषु स सर्वमलवर्जितः ।
तेन क्रतुशतैरिष्टं चेतो यस्य हि निर्मलम् ॥—काशीखंड ।

वे यह भी जानते हैं—

भ्रमन् सर्वेषु तीर्थेषु स्नात्वा स्नात्वा पुनः पुनः ।
निर्मलो न मनो यावत् तावत् सर्वं निरर्थकम् ॥
यथेन्द्रवारुणं पक्वं मिष्टं नैवोपजायते ।
भावदुष्टस्तथा तीर्थे कोटिस्नातो न शुद्ध्यति ॥—देवी भागवत ।

तथापि व्यासस्मृति का यह वचन है—

नृणां पापकृतां तीर्थे पापस्य शमनं भवेत् ।
यथोक्तफलदं तीर्थं भवेच्छुद्धात्मना नृणाम् ॥

यह है भी यथार्थ बात। जो विशुद्धात्मा हैं, तीर्थ का यथोक्त फल उन्हीं को मिलता है। परन्तु पापी जन का पाप

भी तीर्थ में शमन होता है। पापियों को वहाँ सत्संग का, ज्ञानार्जन का, विचार-परिवर्तन का अवसर मिलता है; इसलिये उनके पाप की निवृत्ति क्यों न होगी? किंतु भाव दुष्ट न होना चाहिए। तीर्थ में तीर्थ करने के उद्देश्य से जाना चाहिए; फिर फल की प्राप्ति क्यों न होगी? हाँ जिसकी चित्तवृत्ति ही पाप की ओर हो, उसको लाभ कैसे होगा? ऐसे पुरुष के लिये कोई भी सद्वस्तु उपकारक नहीं हो सकती। जल संसार का जीवन है। उसे यदि कोई अनुचित रीति से पीकर अथवा व्यवहार करके प्राण दे दे, तो इसमें जल का क्या दोष? उसके ऐसा करने से जल निन्दनीय नहीं ठहराया जा सकता। प्रत्येक पदार्थ का उचित व्यवहार ही श्रेयस्कर होता है। तीर्थ के विषय में भी यही बात कही जा सकती है और यही तत्त्वज्ञता है।

अब मूर्तिपूजा को लीजिए। कबीर साहब कहते हैं—

पाहन पूजे हरि मिलैं तो मैं पुजूँ पहार।
ताते यह चाकी भली पीस खाय संसार॥
पाहन केरी पूतरी करि पूजा करतार।
वाहि भरोसे मत रहो बूड़ो कालीधार॥

साखीसंग्रह, पृष्ठ १८३

अब मैं यह देखूँगा कि क्या वास्तव में मूर्तिपूजा में कुछ तत्त्व नहीं है? मुसलमान धर्म्म का अनुसरण ही कबीर साहब ने इस विषय में किया है। इसलिये पहले मैं इस विषय में कुछ

प्रतिष्ठित और मान्य मुसलमानों की सम्मति यहाँ लिखूँगा। हजरत मिर्जा मजहर जानेजानाँ दिल्लीनिवासी कथन करते हैं—

"दरहक़ीकत बुतपरस्ती ईहा मुनास्बते व अक़ीदा कुफ्फार अजब नदारद कि ईहा बुताँरा त्तसर्रिफ ओ मुअस्सिर बिलजात मीगुफ़्तन्द न अल्लाह तसर्रुफ इलाही। ईहा रा खुदाए जमीन मीदानन्द ओखुदाय ताला रा खुदाय आस्मान ओई शिर्क अस्त।"

अलबशीर, जिल्द ६, नंबर ३९, सफहा ७, मतबूअ २७ सितम्बर सन् १९०४ ई०।

"वास्तव में इनकी मूर्तिपूजा अरब के क़ाफिरों के विश्वास से कोई संबंध नहीं रखती। वे मूर्त्तियों को स्वयं व्यापक और शक्तिमान कहते हैं, न कि ईश्वरोपासन का साधन (जैसा कि हिंदुओं का विचार है)। वे इनको पृथ्वी का ईश्वर मानते हैं, और परमेश्वर को आकाश का। और यह सिर्फ द्वैत है।"

मसनवी गुलशनेजार में महमूद शबिस्तार ने कहा है—
"अगर मुसलमान दरअस्ल बुत की माहियत समझ सकता, तो उसके लिये इस बात का जानना मुशकिल नहीं था कि बुतपरस्ती भी सच्चा मजहब है।"

आर्य्यगजट जिल्द १०, नं० १९, सफहा ६, मतबूअ १० मई सन् १९०६।

एक पत्थर चूमने को शेख जी काबा गए।
जौक हर बुत काबिले बोसा है इस बुतखाने में॥—जौक।

न देखा दैर में तो क्या हरम में देखेगा ।
वह तेरे पेश नजर याँ नहीं तो वाँ भी नहीं ॥
दुई का पर्दा उठा दिल से और आँख से देख ।
खुदा के नूर को हुस्ने बुताँ के परदे में ॥—जफर ।

अब कुछ अन्य अनुमतियों को भी देखिए। श्रीमान् ग्रियर्सन साहब अपने उक्त धर्म्मेतिहास में लिखते हैं—

“हिंदुओं में बहुदेववाद और मूर्तिपूजा है; किंतु वह उनके गंभीरतर धर्म्म मत का आवरण मात्र है ।”

प्रवासी, दशम भाग, पृष्ठ ५३८

बाबू मन्मथनाथ दत्त एम.ए., एम.आर.ए.एस. लिखते हैं—

“दरख्त को उसके फलों से पहचानते हैं । हमने जब उन आदमियों में, जिन्हें बुतपरस्त कहा जाता है, वह शराफत, वह खुलूस-इरादत और रूहानी इश्क देखा, जो और कहीं नहीं पाया जाता, तो खुद अपने दिल में सवाल किया—‘क्या गुनाह से नेकी पैदा हो सकती है ?”

“हिंदुओं के मजहब का अस्ल उसूल हकशिनासी है । खुदाशिनासी से इंसान खुदा हो जाता है । लिहाजा बुत, सममखाना, कलीसा, किताबें इन्सान की मुईं और उसके रूहानी लड़कपन की मददगार हैं । इन्हीं के जरिए से वह आगे तरक्की करता जावेगा” ।

रहनुमायाने हिंद, पृष्ठ १८, १९

हमको यहाँ मूर्तिपूजा का प्रतिपादन नहीं करना है। हमने इन वाक्यों को यहाँ इसलिये उठाया है कि देखें, हिंदुओं की मूर्तिपूजा में औरों को कुछ तत्त्व दृष्टिगत होता है या नहीं। मूर्तिपूजा हिंदुओं का प्रधान धर्म नहीं है। शास्त्र कहता है—

उत्तमं ब्रह्मसद्भावो मध्यमं ध्यानधारणा।
स्तुतिप्रार्थनाधमा ज्ञेया बाह्यपूजाधमाधमा॥

ब्रह्म सद्भाव उत्तम, ध्यानधारणा मध्यम, स्तुति प्रार्थना अधम, और बाह्य पूजा अर्थात् किसी मूर्ति इत्यादि को सामने रखकर उपासना करना अधमाधम है। भागवत ऐसा परम वैष्णव ग्रंथ कहता है—"प्रतिमा अल्पबुद्धीनाम्" "सर्वत्रविजितात्मनाम्"। प्रतिमा अल्पबुद्धियों के लिये है; क्योंकि विजितात्माओं के लिये परमात्मा सर्वत्र है। प्रतीक उपासना का आभास वैदिक और दार्शनिक काल में मिलता है; किंतु प्रतिमा पूजा बौद्ध काल और उसके परवर्त्ती काल से हिंदुओं में केवल समाज की मंगल-कामना से गृहीत हुई है। जो और साधनाओं द्वारा परमात्मा की उपासना नहीं कर सकता, उसके लिये ही प्रतिमा-पूजा की व्यवस्था है। यदि विद्वानों और ज्ञानियों को प्रतिमापूजन करते देखा जाता है, तो उसका उद्देश्य लोक-संरक्षण मात्र है; क्योंकि बुद्धि-भेद, सर्वसाधारण को भ्रांत कर सकता है। भारतवर्ष के धर्म्मनेताओं ने हिंदू धर्म्म के प्रधान और व्यापक सिद्धांतों पर आरूढ़ होकर सदा इस बात की चेष्टा की है कि धर्मांधता से किसी तत्त्व का

तिरस्कार न हो। यदि कोई कार्य सद्बुद्धि और सदुद्देश्य से किया जाता है, तो उस पर उन्होंने बलात् दोषारोपण करना उचित नहीं समझा। वे समझते थे कि संसार में समस्त मानव ही समान विचार के नहीं हैं। वे देखते ही थे कि बुद्धि का तारतम्य स्वाभाविक है; इसी लिये उन्होंने अधिकारीभेद स्वीकार किया। उन्होंने उन सोपानों को नहीं तोड़ा जो ऊँचे चढ़ने के साधन हैं; किंतु यह अवश्य देखा कि किस सोपान पर चढ़ने का अधिकारी कौन है। उन्होंने विभिन्न विचारों, नाना आचार व्यवहारों और अनेक उपासना-पद्धतियों का सामंजस्य स्थापित किया; अनेक में एक को देखा; विरोध में अविरोध की महिमा दिखलाई; और दूसरों की अभावमयी वृत्ति को भावमयी बना दिया। उनको अनेक कंटकाकीर्ण पथों में चलना पड़ा, उनके सामने अनेक भयंकर प्रवाह आए, उन्होंने सामयिक परिवर्तनों की रोमांचकारी मूर्तियाँ देखीं, उन्होंने अनार्यों की अभद्र कल्पनाएँ अवलोकन कीं, किंतु सबको सहानुभूति के साथ आलिंगन किया और सब में उसी सर्वव्यापक की सत्ता स्थापित की। असाधारण प्रतिभावान् विद्वान श्रीयुत बाबू रवींद्रनाथ ठाकुर ब्रह्मसमाजी हैं, प्रतिमापूजक नहीं; किंतु वे क्या कहते हैं, सुनिए—

"विदेशी लोग जिसे मूर्ति-पूजा या बुतपरस्ती कहते हैं, उसे देखकर भारतवर्ष डरा नहीं। उसने उसे देखकर नाक भौं नहीं सिकोड़ी। भारतवर्ष ने पुलिंदशबर व्याध आदि से भी बीभत्स

सामग्री ग्रहण करके उसे शिव (कल्याण) बना लिया है—उसमें अपना भाव स्थापित कर दिया है—उसके अंदर भी अपनी आध्यात्मिकता को अभिव्यक्त कर दिखाया है। भारत ने कुछ भी नहीं छोड़ा, सबको ग्रहण करके अपना बना लिया।''

सरस्वती भाग १५, खंड १, सं० ६, पृ० ३०९

यही तो तत्त्वज्ञता है, यही तो धार्मिकता है। कबीर साहब किसी मुल्ला को मसजिद में बाँग देते देखते हैं, तो कहते हैं—

काँकर पाथर जोरि के मसजिद लई चुनाय।
ता चढ़ि मुल्ला बाँग दे क्या बहिरा हुआ खोदाय॥

परन्तु क्या मुल्ला के बाँग देने का यही अभिप्राय है कि वह समझता है कि खुदा बिना गला फाड़कर चिल्लाए उसकी प्रार्थनाओं को न सुनेगा? यह तो उसका अभिप्राय नहीं है। उसकी बाँग का तो केवल इतना ही अर्थ है कि वह बाँग द्वारा अपने सहधर्मियों को ईश्वरोपासना का समय हो जाने की सूचना देता है, और उनको ईश्वर की आराधना के लिये सावधान करता है। फिर उस पर यह व्यंग्य करना कि क्या खुदा बहरा है जो वह यों चिल्लाता है, कितना असंगत है!

परमहंस रामकृष्ण का पवित्र नाम भारत में प्रसिद्ध है। आप उन्नीसवीं शताब्दी के भारत-भूमि के आदर्श महात्मा हैं। सुविख्यात विद्वान् और दार्शनिक श्रीयुत मैक्समूलर ने एक स्थान पर कहा है—''यदि कहीं एकाधार में ज्ञान और भक्ति का समान रूप से विकास दृष्टिगत हुआ, तो परमहंस रामकृष्ण

में।" ऐसे महापुरुष पर बाँग का अद्भुत प्रभाव होता था। जब कभी इस महात्मा के कानों में, पवित्र गिरजाघरों के उपासना-कालिक घंटों की लहर, या पुनीत मंदिरों में ध्वनित शंखों का निनाद, या पाक मसजिद से उठी मुल्ला की बाँग पड़ती, तो इस प्रबलता से उनके हृदय में भक्ति का उद्रेक होता कि राह चलते समाधि लग जाती। क्यों ऐसा होता? इसलिये कि उनको उस ध्वनि, निनाद और बाँग में ईश्वर-प्रेम की एक अपूर्व धारा मिलती।

कबीर साहब कहते हैं—

हिंदु एकादसि चौबिस रोजा मुसलिम तीस बनाए।
ग्यारह मास कहो किन टारौ ये केहि माँहि समाए॥
पूरब दिशि में हरि को बासा पश्चिम अलह मुकामा।
दिल में खोज दिलै में देखो यहै करीमा रामा॥
जो खोदाय मसजिद में बसत है और मुलुक केहि केरा।

क० बी० पृ० ३८८

हिंदुओं की चौबीस एकादशी और मुसल्मानों के तीस रोजा का यह अर्थ नहीं है कि ऐसा करके वे शेष ग्यारह महीनों को व्यर्थ सिद्ध करते हैं। यदि कोई बराबर तीन सौ साठ दिन अपना धर्म कृत्य नहीं कर सकता, या यदि कुछ ऐसे धर्म्म कृत्य हैं जो लगातार तीन सौ साठ दिन नहीं हो सकते, तो उनके लिये यदि कुछ विशेष दिन नियत किए जायँ, तो क्या यह युक्तिसंगत नहीं? यदि हिंदू पूर्व मुख

और मुसलमान पश्चिम मुख बैठकर उपासना करता है, तो इसका यह अभिप्राय नहीं है कि वह परमात्मा का ध्यान हृदय में नहीं करना चाहता। वह पूर्व या पश्चिम मुख बैठ कर यही तो करता है! उपासना-काल में उसे किसी मुख बैठना ही पड़ेगा। फिर यदि उसने कोई मुख्य दिशा उपासना को सुलभ करने के लिये नियत कर ली, तो इसमें क्षति क्या? मसजिद, मंदिर या गिरिजा बनाने का यह अर्थ नहीं है कि ऐसा करके सर्व-स्थल-निवासी परमात्मा की व्यापकता अस्वीकार की जाती है, उपासना की सुकरता ही उनके निर्माण का हेतु है। जो सर्वव्यापक भाव से उपासना नहीं कर सकता, उसके लिये स्थान विशेष नियत कर देना क्या अल्पज्ञता है? धर्मकृत्यों के पुनीत दिनों को छोड़ दीजिए, उपासना के लिये कोई समय और पद्धति न नियत कीजिए, मसजिद, मंदिर, गिरजाघरों को तुड़वा डालिए, देखिए देश और समाज का कितना उपकार होता है? वास्तव में इन बातों में कुछ तत्त्व है, तभी यह प्रणाली सर्वसम्मत है। व्यासदेव कहते हैं—

रूपं रूपविवर्जितस्य भवतो ध्यानेन यद् कल्पितम्।
स्तुत्यानिर्वचनीयताखिलगुरो दूरीकृता यन्मया॥
व्यापित्वञ्च निराकृतं भगवतो यत्तार्थयात्रादिना।
क्षंतव्यं जगदीश तद्विकलतादोषत्रयं मत्कृतम्॥

हे परमात्मन्! तुम अरूप हो, परंतु ध्यान द्वारा मैंने तुम्हारे रूप की कल्पना की, स्तुति द्वारा तुम्हारी अनिर्वच-

नीयता दूर की, तीर्थयात्रा करके तुम्हारी व्यापकता निराकृत की, अतएव तुम इन तीनों विकलता (अस्वाभाविकता या असंपूर्णता) दोषों को क्षमा करो। किंतु इतना ज्ञान होने पर भी उन्होंने ध्यान किया, स्तुति और तीर्थयात्रा की, तब तो क्षमा माँगने की आवश्यकता हुई। क्यों ? इसलिये कि उपासना का मार्ग यही तो है। ध्यानधारणा भी सदोष, स्तुति-प्रार्थना भी सदोष, मूर्तिपूजा भी सदोष; फिर परमात्मा की उपासना कैसे हो ? आप कहेंगे कि उपासना की आवश्यकता ही क्या ? ब्रह्म सद्भाव ही ठीक है, जो कि उत्तम और निर्दोष है। परंतु ब्रह्म सद्भाव इस पाँच करोड़ मनुष्यों में भी किसी एक को होता है; फिर शेष लोग क्या करें ? वही ध्यान-धारणा, स्तुतिप्रार्थना आदि उनको करनी ही पड़ेगी, चाहे वह सदोष हो; परंतु इसी क्रिया द्वारा उनको परमपुरुष की प्राप्ति होगी। अध्यापक रेखागणित की शिक्षा के लिये खड़ा होकर एक रेखा खींचता है, और एक बिंदु बनाता है, और कहता है—देखो यह एक बड़ी रेखा है, और यह एक बिंदु है। परंतु वास्तव में रेखा और बिंदु की परिभाषा के अनुसार न तो वह रेखा है और न वह बिंदु। किंतु उसी कल्पित रेखा और बिंदु के आधार से शिष्य अंत में रेखागणित शास्त्र में पारंगत होता है। इसी प्रकार कल्पित धर्म्म-साधनों से परमात्मा की प्राप्ति होती है। जैसे उस सदोष रेखा और बिंदु का त्याग करने से कोई रेखागणित नहीं

सीख सकता, उसी प्रकार धर्म्म के कल्पित साधनों का त्याग करने से, चाहे वह किसी अंश में सदोष ही क्यों न हो, कोई परमात्मा को प्राप्त नहीं कर सकता; और यही तत्त्वज्ञता है।

धर्म्मग्रंथों और धर्म्म-साधनों के बंधन से स्वतंत्रता-प्रदान-मूलक विचार प्यारा लगता है, क्योंकि मनुष्य स्वभाव से स्वतंत्रताप्रिय है। यह बंधन को अच्छी आँख से नहीं देखता। जहाँ तक उसको बंधन छिन्न करने का अवसर हाथ आवे, उतना ही वह आनंदित होता है। किंतु बंधन ही समाज और स्वयं उसकी आत्मा और शरीर के लिये हितकर है। वह आहार-विहार में ही उच्छृंखलता ग्रहण करके देखे, क्या परिणाम होता है। जैसे राजनियमों का बंधन छिन्न होने पर देश में विप्लव हो जाता है, उसी प्रकार धर्म्मनियमों का बंधन टूटने पर आध्यात्मिक जगत् में विप्लव उपस्थित होता है। अतएव धर्मग्रंथों और धर्म्मसाधनों को बंधन कहकर उनसे सर्व-साधारण को मुक्त करने की उत्कंठा से उसके तत्त्वों की ओर उनका दृष्टि-आकर्षण विशेष उपकारी है।

मेरा विचार है कि कबीर साहब अंत में वेदांत धर्म्मावलंबी हो गए थे। इस ग्रंथ के वेदांतवाद शीर्षक शब्दों को पढ़िए, देखिए उनमें विचार की कितनी प्रौढ़ता है। बिना पूर्णतया इस सिद्धांत पर आरूढ़ हुए विचार में इतनी प्रौढ़ता आ नहीं सकती। प्रोफेसर बी० बी० राय लिखते हैं—

"कबीरपंथियों की मुख्तलिफ किताबों से और आदि ग्रंथ में जो कबीर की बातें इक्तिबास हैं, उनसे साफ जाहिर होता है कि कबीरपंथी तालीम वेदांती तालीम की एक दूसरी सूरत है। इस अम्र में सूफियों से भी उनको बड़ी मदद मिली, क्योंकि दोनों तालीम करीब करीब एक साँ हैं।"

"आदि ग्रंथ में जो कबीर की बातें पाई जाती हैं, उनसे जाहिर होता है कि आवागौन, ब्रह्म, माया, मुक्ति और ब्रह्म में लीन हो जाने की निस्बत कबीर की तालीम वही है, जो वेदांती लोग देते हैं।"

संप्रदाय, पृष्ठ ६-६

वैष्णव और वेदांत धर्म्म दोनों प्रकांड वैदिक धर्म्म अर्थात् हिंदू धर्म्म की विशाल शाखाएँ हैं। यह वही उदार और महान् धर्म्म है कि जिससे वसुंधरा के समग्र पुनीत ग्रंथों ने कतिपय व्यापक सार्वभौम सिद्धांतों का संग्रह करके अपने अपने कलेवर को समुज्वल किया है। कबीर साहब चाहे वैष्णव हों या वेदांती, चाहे संत मत के हों, चाहे अपने को और कुछ बतलावें, किंतु वे भी उसी धर्म्म के ऋणी हैं; और उसी के आलोक से उन्होंने अपना प्रदीप प्रज्वलित किया।

शेष वक्तव्य

श्रीयुत मैक्समूलर जैसे असाधारण विदेशी विद्वान् और श्रीमती एनी बेसंट जैसी परम विदुषी विजातीय महिला ने भी

इस बात को स्वीकार किया है कि हिंदू धर्म्म के सिद्धांत बहुत ही उदार, व्यापक और सर्व-देशदर्शी हैं। वास्तव में जैसे ही हिंदू धर्म के सिद्धांत महान् और गंभीर हैं, वैसे ही पूर्ण, सार्वभौम और सार्वजनिक भी हैं। वैशेषिक दर्शन के निम्नलिखित सूत्र जैसी व्यापक और उदात्त परिभाषा धर्म्म की कहाँ मिलेगी ?

यतोऽभ्युदयनिःश्रेयःससिद्धिः स धर्म्मः

जिससे अभ्युदय और कल्याण अथवा परमार्थ की सिद्धि हो, वही धर्म्म है।

हिंदू धर्म्म को छोड़कर कौन कह सकता है—

अयं निजः परो वेति गणना लघुचेतसाम्।
उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्॥

यह अपना और यह पराया है, यह लघुचेतसों का विचार है; जो उदार-चरित हैं, वसुधा ही उनका कुटुंब है। क्या इससे भी बढ़कर भ्रातृभाव की कोई शिक्षा हो सकती है ? हिंदू धर्म्म इससे भी ऊँचा उठा, उसने भ्रातृभाव में कुछ विभेद देखा; अतएव मुक्तकंठ से कहा—"आत्मवत् सर्वभूतेषु यः पश्यति स पंडितः" मनुष्य मात्र ही की नहीं, सर्वभूत की आत्मा को जो अपनी आत्मा समान देखता है, वही विज्ञ है। एक धर्म्मवाला दूसरे धर्म्म को बाधा पहुँचाकर ही आत्मप्रसाद लाभ करता है, परंतु हिंदू धर्म्म इसको युक्तिसंगत नहीं समझता, वह गंभीर भाव से कहता है—

धर्म्मः यो बाधते धर्म्मं न स धर्म्मः कुधर्म्म तत् ।
धर्म्माविरोधी यो धर्म्मः स धर्म्मः सत्यविक्रम ॥

जो धर्म्म दूसरे धर्म्म को बाधा पहुँचाता है, वह धर्म्म नहीं कुधर्म्म है। जो धर्म्म दूसरे धर्म्म का अविरोधी है, सत्य-पराक्रमशील धर्म्म वही है। इतना ही नहीं, वह अपना हृदय उदार एवं उन्नत बनाकर कहता है—

रुचीनां वैचित्र्यात् कुटिलऋजुनानापथजुषां ।
नृणामेको गम्यस्त्वमसि पयसामर्णवमिव ॥

नाना प्रकार की रुचि होने के कारण ऋजु और कुटिल नाना पथ भी हैं; किंतु हे परमात्मा सबका गम्य तू ही है, जैसे सर्व स्थानों से जल समुद्र में ही पहुँचता है। उसी के शास्त्रसमूह का, विश्वप्रेम का आधार स्वरूप यह वाक्य है—

सर्वे भवंतु सुखिनः सर्वे संतु निरामयाः ।
सर्वे भद्राणि पश्यंतु मा कश्चिद्दुःखभाग् भवेत् ॥

सब सुखी हों, सब सकुशल रहें, सबका कल्याण हो, कोई दुःखभागी न हो। वही संसार के सम्मुख खड़े होकर तार स्वर से कहता है—

यद्यदात्मनि चेच्छेत तत्परस्यापि चिंतयेत् ।
आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत् ॥

जो जो अपनी आत्मा के लिये चाहते हो, वही दूसरों के लिये भी चाहो, जिसको अपनी आत्मा के प्रतिकूल समझते हो, उसको दूसरों के लिये मत करो। इतना लिखकर मैं

आप लोगों का ध्यान कबीर साहब की शिक्षाओं की ओर आकर्षित करता हूँ। हिंदू धर्म्म के उक्त विचारों की सार्थकता तभी है, जब हम लोग भी वास्तव में उनके अनुकूल चलने की चेष्टा करें। यदि हम उन विचारों को सामने रखकर केवल गर्व करते हैं, और उनके अनुकूल आचरण करना नहीं चाहते, तो न केवल हम लोग अपनी आत्मा को कलुषित करते हैं, वरन् लोगों की दृष्टि में अपने शास्त्रों की भी मर्य्यादा घटाते हैं। कबीर साहब की शिक्षाओं को आप पढ़िए, मनन कीजिए, उनके मिथ्याचार-खंडन के अदम्य और निर्भीक भाव को देखिए, उनकी सत्यप्रियता अवलोकन कीजिए, उनमें आपको अधिकांश हिंदू भावों की ही प्रभा मिलेगी। यदि आपकी रुचि और विचार के प्रतिकूल कुछ बातें उसमें मिलें, तो भी उसे आप देखिए, और उसमें से तत्त्व ग्रहण कीजिए; क्योंकि विवेकशील सज्जनों का मार्ग यही है। नाना विचार देखने से ही मनुष्य को अनुभव होता है। कबीर साहब भी मनुष्य थे, उनके पास भी हृदय था, कुछ संस्कार उनका भी था; अतएव समय-प्रवाह में पड़कर, हृदय पर आघात होने पर संस्कार के प्रबल पड़ जाने पर उनके स्वर का विकृत हो जाना असंभव नहीं। उनका कटु बातें कहना चकितकर नहीं। किंतु यदि आप उन्हें नहीं पढ़ेंगे, तो अपने विचारों को मर्य्यादा-पूर्ण करना कैसे सीखेंगे। वे प्रतिमा पूजन के कट्टर विरोधी हैं, अवतारवाद को नहीं मानते; परंतु इससे क्या? परमात्मा

की भक्ति करना तो बतलाते हैं; आपको ईश्वर-विमुख तो नहीं करते। हिंदू धर्म्म का चरम लक्ष्य यही तो है! आपके कुल साधनों को वे काम में लाना नहीं चाहते, न लावें; परंतु जिन साधनों को वे काम में लाते हैं, वे भी तो आप ही के हैं। वह रुचिवैचित्र्य है। रुचिवैचित्र्य स्वाभाविक है। हिंदू धर्म्म उसको ग्रहण करता है, उससे घबराता नहीं। वे वेद शास्त्र की निंदा करते हैं, हिंदू महापुरुषों को उन्मार्गगामी बतलाते हैं, हिंदू धर्म्मनेताओं की धूल उड़ाते हैं, यह सत्य है। परंतु उनके पंथवालों के साथ आप ऐक्य कैसे स्थापन करेंगे, जब तक इन विचारों को न जानेंगे। इसके अतिरिक्त जब वे वेद शास्त्रों के सिद्धांतों का ही प्रतिपादन करते हैं, हिंदू महापुरुषों के प्रदर्शित पथ पर ही चलते हैं, हिंदू धर्म्मनेताओं की प्रणाली का ही अनुसरण करते हैं, तब उनका उक्त विचार स्वयं एकदेशी हो जाता है और रूपांतर से आपकी ही इष्टप्राप्ति होती है। विवेकी पुरुष काम चाहता है, नाम नहीं। परमार्थ के लिये वह अपमान की परवाह नहीं करता। वे मिथ्याचारों का प्रतिवाद तीव्र और असंयत भाषा में करते हैं; परंतु उसे हमें सह्य करना चाहिए, दो विचारों से। एक तो यह कि यदि हमने वास्तव में धर्म्म के साधनों को आडंबर बना लिया है, तो किसी न किसी के मुख से हमको ऐसी बातें सुननी ही पड़ेंगी, दूसरे यह कि यदि ये अधिकांश अमूलक हैं, तो भी कोई क्षति नहीं; क्योंकि देखिए, भगवान् मनु क्या कहते हैं—

सम्मानाद् ब्राह्मणो नित्यमुद्विजेतविषादिव ।
अमृतस्येव चाकाङ्क्षेदवमानस्य सर्वदा ॥

ब्राह्मण को चाहिए कि सम्मान से विष के समान बचे, और अपमान की अमृत के तुल्य इच्छा करे।

इससे अधिक मुझे कुछ और नहीं कहना है। आशा है, आप लोग 'कबीर वचनावली' का उचित समादर करेंगे। और प्रसिद्ध मासिक पत्रिका सरस्वती भाग १५ खंड १ संख्या ६ पृष्ठ ३०७ में प्रकाशित विद्वद्वर श्रीयुत रवींद्रनाथ ठाकुर के निम्नलिखित वाक्य को सदा स्मरण रखेंगे।

"भारत की चिरकाल से यही चेष्टा देखी जाती है कि वह अनेकता में एकता स्थापित करना चाहता है; वह अनेक मार्गों को एक लक्ष्य की तरफ (अभिमुख) करना चाहता है; वह बहुत के बीच किसी एक को निःसंशय रूप से, अंतरतर रूप से, उपलब्ध करना चाहता है। उसका सिद्धांत या उद्देश्य यह है कि बाहर जो विभिन्नता देख पड़ती है, उसे नष्ट करके उसके अंदर जो निगूढ़ संयोग देख पड़ता है, वह उसे प्राप्त करे।"

हरिऔध

कबीर वचनावली की आधार-भूत पुस्तकों का विवरण

सं०	नाम पुस्तक	विवरण
१	आदि ग्रंथ	उपनाम ग्रंथसाहब, गुरुमुखी पुस्तक, गुरु अर्जुनदेव संगृहीत, सन् १९०३ में नवलकिशोर प्रेस में नागरी अक्षरों में मुद्रित।
२	कबीर बीजक	हिंदी पुस्तक—महाराज विश्वनाथसिंह कृत टीका सहित, सन् १९०७ में नवलकिशोर प्रेस लखनऊ में मुद्रित।
३	कबीर शब्दावली (प्रथम भाग)	हिंदी पुस्तक-स्वामी बेलवेडियर प्रेस इलाहाबाद संगृहीत—सन् १९१३में उक्त प्रेस में मुद्रित।
४	कबीर शब्दावली (द्वितीय भाग)	,, सन् १९०८ में मुद्रित।
५	कबीर शब्दावली (तृतीय भाग)	,, सन् १९१२ में मुद्रित।
६	कबीर शब्दावली (चतुर्थ भाग)	,, सन् १९१४ में मुद्रित।
७	कबीर कसौटी	हिंदी पुस्तक—बाबू लहनासिंह कबीरपंथी डिप्टी कंसरवेटर जंगलात कृत, सन् १९०६ में श्रीवेंकटेश्वर प्रेस बंबई में मुद्रित।

सं०	नाम पुस्तक	विवरण
८	कबीर ऐंड दी कबीर पंथ	अँगरेजी पुस्तक-रेवरेंड जी० एच० वेस्कट एम० ए० विरचित, सन् १९०७ में क्राइस्ट चर्च मिशन प्रेस कानपुर में मुद्रित।
९	चौरासी अंग की साखी	प्राचीन हस्तलिखित हिंदी पुस्तक-कबीरपंथी साधु बिहारीदास आजमगढ़ निवासी से प्राप्त।
१०	भारत वर्षीय उपासक संप्रदाय	बँगला पुस्तक—श्रीयुत् अक्षयकुमार दत्त प्रणीत, सन् १८८८ में नूतन यंत्रालय कलकत्ता में मुद्रित।
११	भक्ति सुधाबिंदु स्वाद	हिंदी पुस्तक—महात्मा सीतारामशरण भगवानप्रसाद विरचित—संवत् १९६५-६६ में हितचिंतक प्रेस बनारस में मुद्रित।
१२	मिश्रबंधु विनोद (प्रथम खंड)	हिंदी पुस्तक—मिश्रबंधु विरचित, इंडियन प्रेस इलाहाबाद में संवत् १९७० में मुद्रित।
१३	रहनुमायानहिंद	उर्दू पुस्तक—श्रीयुत मन्मथनाथ दत्त एम० ए० की अँगरेजी पुस्तक प्राफेट्स आफ इंडिया का अनुवाद, बाबू नारायणप्रसाद वर्म्मा अनुवादित, अहमदी प्रेस अलीगढ़ में सन् १९०४ में मुद्रित।
१४	सटीक कबीर बीजक	हिंदी पुस्तक—कबीरपंथी साधु पूरनदास विरचित, संवत् १९६७ में श्रीवेंकटेश्वर प्रेस बंबई, में मुद्रित।

सं०	नाम पुस्तक	विवरण
१५	संप्रदाय	उर्दू पुस्तक–क्रिश्चियन विद्वान् प्रोफेसर वी० बी० राय रचित, मिशन प्रेस लुधियाना में सन् १९०६ में मुद्रित।
१६	साखी संग्रह	हिंदी पुस्तक—स्वामी बेलवेडियर प्रेस इलाहाबाद संगृहीत–उक्त प्रेस में सन् १९१२ में मुद्रित।
१७	ज्ञानगुदड़ी वो रेखते	बेलवेडियर प्रेस इलाहाबाद, में सन् १९१० में मुद्रित।

आरिफों में काव्य-दोष नहीं देखे
चाहि

कबीर वचनावली

प्रथम खंड.

२२.१.[illegible]

कर्त्ता-निर्णय

दोहा

अक्षय
अछै पुरुष इक पेड़ है निरँजन वाकी डार।
तिरदेवा साखा भए पात भया संसार॥ १॥
साहेब मेरा एक है दूजा कहा न जाय।
दूजा साहेब जो कहूँ साहेब खरा रिसाय॥ २॥
जाके मुँह माथा नहीं नाहीं रूप कुरूप।
पुहुप बास तें पातरा ऐसा तत्त्व अनूप॥ ३॥
देहीं माहिं विदेह है साहेब सुरति सरूप।
अनँत लोक में रमि रहा जाके रंग न रूप॥ ४॥
चार भुजा के भजन में भूलि परे सब संत।
कबिरा सुमिरै तासु को जाके भुजा अनंत॥ ५॥
जनम मरन से रहित है मेरा साहेब सोय।
बलिहारी वहि पीव की जिन सिरजा सब कोय॥ ६॥
एक कहौं तो है नहीं दोय कहौं तो गारि।
है जैसा तैसा रहै कहै कबीर बिचारि॥ ७॥

रेख रूप जेहि है नहीं अधर धरो नहिं देह ।
गगन मँडल के मध्य में रहता पुरुष विदेह ॥ ८ ॥
सोई मेरा एक तू और न दूजा कोय ।
जो साहब दूजा कहै दूजा कुल को होय ॥ ९ ॥
सर्गुण की सेवा करौ निर्गुण का करु ज्ञान ।
निर्गुण सर्गुण के परे तहैं हमारा ध्यान ॥ १० ॥

शक्तिमत्ता

साहेब सों सब होत हैं बंदे तें कछु नाहिं ।
राई ते पर्वत करे पर्वत राई माहिं ॥ ११ ॥
बहन बहंता थल करै थल कर बहन बहोय ।
साहेब हाथ बड़ाइया जस भावै तस होय ॥ १२ ॥
साहेब सा समरथ नहीं गरुआ गहिर गँभीर ।
औगुन छोड़ै गुन गहे छिनक उतारै तीर ॥ १३ ॥
जो कुछ किया सो तुम किया मैं कछु कीया नाहिं ।
कहो कही जो मैं किया तुम ही थे मुझ माहिं ॥ १४ ॥
जाको राखै साँइयाँ मारि न सकै कोय ।
बाल न बाँका करि सकै जो जग बैरी होय ॥ १५ ॥
साँईं मेरा बानिया सहज करै व्योपार ।
बिन डाँड़ी बिन पालरे तौले सब संसार ॥ १६ ॥
साँईं तुझसे बाहिरा कौड़ी नाहिं बिकाय ।
जाके सिर पर तू धनी लाखों मोल कराय ॥ १७ ॥

सर्वघट-व्यापकता

तेरा साँई तुज्झ में ज्यों पुहुपन में बास ।
कस्तूरी का मिरग ज्यों फिर फिर ढूढ़ै घास ॥ १८ ॥
जा कारन जग ढूँढ़िया सो तो घट ही माहिं ।
परदा दीया भरम का ता तें सूझै नाहिं ॥ १९ ॥
समझै तो घर में रहे परदा पलक लगाय ।
तेरा साहेब तुज्झ में अनत कहूँ मत जाय ॥ २० ॥
जेता घट तेता मता बहु बानी बहु भेख ।
सब घट व्यापक ह्वै रहा सोई आप अलेख ॥ २१ ॥
भूला भूला क्या फिरै सिर पर बँधि गई बेल ।
तेरा साँईं तुज्झ में ज्यों तिल माहीं तेल ॥ २२ ॥
ज्यों तिल माहीं तेल है ज्यों चकमक में आगि ।
तेरा साँईं तुज्झ में जागि सकै तो जागि ॥ २३ ॥
ज्यों नैनन में पूतरी यों खालिक घट माहिं ।
मूरख लोग न जानहीं बाहर ढूँढ़न जाहिं ॥ २४ ॥
पावक रूपी साँइयाँ सब घट रहा समाय ।
चित चमकत लागै नहीं तातें बुझि बुझि जाय ॥ २५ ॥

शब्द

कबिरा शब्द शरीर में बिन गुन बाजै ताँत ।
बाहर भीतर रमि रहा ता तें छूटी भ्रांत ॥ २६ ॥

सब्द सब्द बहु अंतरा सार सब्द चित देय ।
जा सब्दै साहेब मिलै सोइ सब्द गहि लेय ॥ २७ ॥
एक सब्द सुखरास है एक सब्द दुखरास ।
एक सब्द बंधन कटै एक सब्द गलफाँस ॥ २८ ॥
सब्द सब्द सब कोइ कहै सब्द के हाथ न पाँव ।
एक सब्द औषधि करै एक सब्द कर घाव ॥ २९ ॥
सब्द बराबर धन नहीं जो कोइ जानै बोल ।
हीरा तो दामों मिलै सब्दहि मोल न तोल ॥ ३० ॥
मता हमारा मंत्र है हम सा होय सो लेय ।
सब्द हमारा कल्प-तरु जो चाहै सो देय ॥ ३१ ॥
सीतल सब्द उचारिए अहम् आनिए नाहिं ।
तेरा प्रीतम तुज्झ में सत्रू भी तुझ माहिं ॥ ३२ ॥
वह मोती मत जानियो पुहै पोत के साथ ।
यह तो मोती सब्द का बेधि रहा सब गात ॥ ३३ ॥
जंत्र मंत्र सब झूठ है मत भरमो जग कोय ।
सार सब्द जाने बिना कागा हंस न होय ॥ ३४ ॥

नाम

आदि नाम पारस अहै मन है मैला लोह ।
परसत ही कंचन भया छूटा बंधन मोह ॥ ३५ ॥
आदि नाम निज सार है बूझि लेहु सो हंस ।
जिन जान्यो निज नाम को अमर भयो सो बंस ॥ ३६ ॥

आदि नाम निज मूल है और मंत्र सब डार ।
कह कबीर निज नाम बिनु बूड़ि मुआ संसार ।। ३७ ।।
नाम रतन धन पाइकै गाँठी बाँध न खोल ।
नाहीं पन नहिं पारखू नहिं गाँहक नहिं मोल ।। ३८ ।।
सभी रसायन हम करी नहीं नाम सम कोय ।
रंचक घट में संचरै सब तन कंचन होय ।। ३९ ।।
जबहिं नाम हिरदे धरा भया पाप का नास ।
मानो चिनगी आग की परी पुरानी घास ।। ४० ।।
ज्ञान-दीप परकास करि भीतर भवन जराय ।
तहाँ सुमिर सतनाम को सहज समाधि लगाय ।। ४१ ।।
सुपनहुँ में बर्राइ के धोखेहुँ निकरै नाम ।
वाके पग की पैंतरी मेरे तन को चाम ।। ४२ ।।
जैसो माया मन रम्यो तैसो नाम रमाय ।
तारा मंडल बेधि कै तब अमरापुर जाय ।। ४३ ।।
पावक रूपी नाम है सब घट रहा समाय ।
चित चकमक लागै नहीं धूआँ ह्वै ह्वै जाय ।। ४४ ।।
नाम बिना बेकाम है छप्पन कोटि बिलास ।
का इन्द्रासन बैठिबो का बैकुंठ निवास ।। ४५ ।।
लूटि सकै तो लूटि ले सत्त नाम की लूटि ।
पाछे फिर पछिताहुगे प्रान जाहिं जब छूटि ।। ४६ ।।
शून्य मरे अजपा मरे अनहदहू मरि जाय ।
राम सनेही ना मरै कह कबीर समुझाय ।। ४७ ।।

परिचय

लाली मेरे लाल की जित देखों तित लाल ।
लाली देखन मैं गई मैं भी हो गइ लाल ।। ४८ ।।
जिन पावन भुइँ बहु फिरे घूमे देस बिदेस ।
पिया मिलन जब होइया आँगन भया बिदेस ।। ४९ ।।
उलटि समाना आप में प्रगटी जोति अनंत ।
साहेब सेवक एक सँग खेलैं सदा बसंत ।। ५० ।।
जोगी हुआ झलक लगी मिटि गया ऐंचातान ।
उलटि समाना आप में हूआ ब्रह्म समान ।। ५१ ।।
नोन गला पानी मिला बहुरि न भरिहै गौन ।
सुरत सब्द मेला भया काल रहा गहि मौन ।। ५२ ।।
कहना था सो कह दिया अब कछु कहा न जाय ।
एक रहा दूजा गया दरिया लहर समाय ।। ५३ ।।
उन मुनि सों मन लागिया गगनहिं पहुँचा जाय ।
चाँद बिहूना चाँदना अलख निरंजन राय ।। ५४ ।।
मेरी मिटी मुक्ता भया पाया अगम निवास ।
अब मेरे दूजा नहीं एक तुम्हारी आस ।। ५५ ।।
सुरति समानी निरति में अजपा माहीं जाप ।
लेख समाना अलख में आपा माहीं आप ।। ५६ ।।
पारब्रह्म के तेज का कैसा है उनमान ।
कहिबे की शोभा नहीं देखे ही परमान ।। ५७ ।।

पिंजर प्रेम प्रकासिया अंतर भया उजास ।
सुख करि सूती महल में बानी फूटी बास ॥ ५८ ॥
आया था संसार में देखन को बहु रूप ।
कहै कबीरा संत हो परि गया नजर अनूप ॥ ५९ ॥
पाया था सो गहि रहा रसना लागी स्वाद ।
रतन निराला पाइया जगत टटोला बाद ॥ ६० ॥
कबिरा देखा एक अँग महिमा कही न जाय ।
तेजपुंज परसा धनी नैनों रहा समाय ॥ ६१ ॥
गगन गरजि बरसै अमी बादल गहिर गँभीर ।
चहुँ दिसि दमकै दामिनी भींजै दास कबीर ॥ ६२ ॥
दीपक जोया ज्ञान का देखा अपरं देव ।
चार वेद की गम नहीं जहाँ कबीरा सेव ॥ ६३ ॥
अब गुरु दिल में देखिया गावन को कछु नाहिं ।
कबिरा जब हम गावते तब जाना गुरु नाहिं ॥ ६४ ॥
मान सरोवर सुगम जब हंसी केलि कराय ।
मुकताहल मोती चुगै अब उड़ि अंत न जाय ॥ ६५ ॥
सुन्न मँडल में घर किया बाजै शब्द रसाल ।
रोम रोम दीपक भया प्रगटे दीनदयाल ॥ ६६ ॥
सुरत उड़ानी गगन को चरन बिलंबो जाय ।
सुख पाया साहेब मिला आनँद उर न समाय ॥ ६७ ॥
पानी ही ते हिम भया हिम ही गया बिलाय ।
कबिरा जो था सोइ भया अब कछु कहा न जाय ॥ ६८ ॥

सुन्न सरोवर मीन मन नीर तीर सब देव ।
सुधा सिंधु सुख बिलस ही बिरला जाने भेव ॥ ६९ ॥
मैं लागा उस एक से एक भया सब माहिं ।
सब मेरा मैं सबन का तहाँ दूसरा नाहिं ॥ ७० ॥
गुन इन्द्री सहजै गए सतगुरु करी सहाय ।
घट में नाम प्रगट भया बकि बकि मरै बलाय ॥ ७१ ॥
कबिरा भरम न भाजिया बहु बिधि धरिया भेष ।
साँई के परिचय बिना अंतर रहियो रेख ॥ ७२ ॥

अनुभव

आतम अनुभव ज्ञान की जो कोइ पूछै बात ।
सों गूँगा गुड़ खाइ कै कहै कौन मुख स्वाद ॥ ७३ ॥
ज्यों गूँगे के सैन को गूँगा ही पहिचान ।
त्यों ज्ञानी के सुक्ख को ज्ञानी होय सो जान ॥ ७४ ॥
कागद लिखै सो कागदी की ब्योहारी जीव ।
आतम दृष्टि कहाँ लिखै जित देखै तित पीव ॥ ७५ ॥
लिखा-लिखी की है नहीं देखा-देखी बात ।
दुलहा दुलहिन मिल गए फीकी पड़ी बरात ॥ ७६ ॥
भरो होय सो रीतई रीतो होय भराय ।
रीतो भरो न पाइए अनुभव सोइ कहाय ॥ ७७ ॥

सारग्राहिता

साधू ऐसा चाहिए जैसा सूप सुभाय ।
सार सार को गहि रहै थोथा देइ उड़ाय ॥ ७८ ॥
औगुन को तो ना गहै गुनही को लै बीन ।
घट घट मँहकै मधुप ज्यों परमातम लै चीन ॥ ७९ ॥
हंसा पय को काढ़ि ले छीर नीर निरवार ।
ऐसे गहै जो सार को सो जन उतरै पार ॥ ८० ॥
छीर रूप सतनाम है नीर रूप व्यवहार ।
हंस रूप कोइ साध है तत का छाननहार ॥ ८१ ॥

समदर्शिता

समदृष्टी सतगुरु किया दीया अविचल ज्ञान ।
जहँ देखौं तहँ एक ही दूजा नाहीं आन ॥ ८२ ॥
समदृष्टो सतगुरु किया मेटा जरत बिकार ।
जहँ देखौं तहँ एक ही साहेब का दीदार ॥ ८३ ॥
समदृष्टो तब जानिए सीतल समता होय ।
सब जीवन की आतमा लखै एक सी सोय ॥ ८४ ॥

भक्ति

जब लग नाता जगत का तब लग भक्ति न होय ।
नाता तोड़ै हरि भजै भक्त कहावै सोय ॥ ८५ ॥

भक्ति भेष बहु अंतरा जैसे धरनि अकास ।
भक्त लीन गुरु चरन में भेष जगत् की आस ॥ ८६ ॥
देखा देखी भक्ति का कबहुँ न चढ़सी रंग ।
बिपति पड़े यों छाँड़सी ज्यों कैंचुली भुजंग ॥ ८७ ॥
ज्ञान सँपूरन ना भिदा हिरदा नाहिं जुड़ाय ।
देखा देखी भक्ति का रंग नहीं ठहराय ॥ ८८ ॥
खेत बिगारयो खरतुआ सभा बिगारी कूर ।
भक्ति बिगारी लालची ज्यों केसर में धूर ॥ ८९ ॥
कामी क्रोधी लालची इन तें भक्ति न होय ।
भक्ति करै कोइ सूरमा जाति बरन कुल खोय ॥ ९० ॥
जल ज्यों प्यारा माछरी लोभी प्यारा दाम ।
माता प्यारा बालका भक्त पियारा नाम ॥ ९१ ॥
जब लगि भक्ति सकाम है तब लग निस्फल सेव ।
कह कबीर वह क्यों मिलै निःकामी निज देव ॥ ९२ ॥
भक्ति गेंद चौगान की भावै कोइ लै जाय ।
कह कबीर कछु भेद नहिं कहा रंक कह राय ॥ ९३ ॥
लव लागी तब जानिए छूटि कभूँ नहिं जाय ।
जीवत लव लागी रहै मूए तँहि समाय ॥ ९४ ॥
लगी लगन छूटै नहीं जीभ चोंच जरि जाय ।
मीठा कहा अँगार में जाहि चकोर चबाय ॥ ९५ ॥
सोओं तो सुपने मिलै जागौं तो मन माहिं ।
लोयन राता सुधि हरी बिछुरत कबहूँ नाहिं ॥ ९६ ॥

तूँ तूँ करता तूँ भया तुझ में रहा समाय।
तुझ माहीं मन सिलि रहा अब कहुँ अनत न जाय ॥ ९७ ॥
अर्ब खर्ब लों दर्ब है उदय अस्त लौं राज।
भक्ति महातम ना तुलै ये सब कौने काज ॥ ९८ ॥
अंध भया सब डोलई यह नहिं करै विचार।
हरि-भक्ती जाने बिना बूड़ि मुआ संसार ॥ ९९ ॥
और कर्म सब कर्म है भक्ति कर्म निष्कर्म।
कहै कबीर पुकारि कै भक्ति करो तजि धर्म ॥ १०० ॥

प्रेम

यह तो घर है प्रेम का खाला का घर नाहिं।
सीस उतारै भुइँ धरै तब पैठे घर माहिं ॥ १०१ ॥
सीस उतारै भुइँ धरै ता पर राखै पाँव।
दास कबीरा यों कहै ऐसा होय तो आव ॥ १०२ ॥
प्रेम न बाड़ी ऊपजै प्रेम न हाट बिकाय।
राजा परजा जेहिं रुचै सीस देइ लै जाय ॥ १०३ ॥
प्रेम पियाला जो पियै सीस दच्छिना देय।
लोभी सीस न दे सकै नाम प्रेम का लेय ॥ १०४ ॥
छिनहिं चढ़ै छिन ऊतरै सो तो प्रेम न होय।
अघट प्रेम पिंजर बसै प्रेम कहावै सोय ॥ १०५ ॥
जब मैं था तब गुरु नहीं अब गुरु हैं हम नाहिं।
प्रेम गली अति साँकरी ता में दो न समाहिं ॥ १०६ ॥

जा घट प्रेम न संचरै सो घट जान मसान ।
जैसे खाल लोहार की साँस लेत बिनु प्रान ॥ १०७ ॥
उठा बगूला प्रेम का तिनका उड़ा अकास ।
तिनका तिनका से मिला तिन का तिन के पास ॥ १०८ ॥
सौ जोजन साजन बसै मानो हृदय मँझार ।
कपट सनेही आँगने जानु समुंदर पार ॥ १०९ ॥
यह तत वह तत एक है एक प्रान दुइ गात ।
अपने जिय से जानिए मेरे जिय की बात ॥ ११० ॥
हम तुम्हरो सुमिरन करैं तुम मोहिं चितवौ नाहिं ।
सुमिरन मन की प्रीति है सो मन तुमहीं माहिं ॥ १११ ॥
प्रीति जो लागी घुल गई पैठि गई मन माहिं ।
रोम रोम पिउ पिउ करै मुख की सरधा नाहिं ॥ ११२ ॥
जो जागत सो स्वप्न में ज्यों घट भीतर स्वाँस ।
जो जन जाको भावता सो जन ताके पास ॥ ११३ ॥
पीया चाहै प्रेम रस राखा चाहै मान ।
एक म्यान में दो खड़ग देखा सुना न कान ॥ ११४ ॥
कबिरा प्याला प्रेम का अंतर लिया लगाय ।
रोम रोम में रमि रहा और अमल क्या खाय ॥ ११५ ॥
कबिरा हम गुरु रस पिया बाकी रही न छाक ।
पाका कलस कुम्हार का बहुरि न चढ़सी चाक ॥ ११६ ॥
सबै रसायन मैं किया प्रेम समान न कोय ।
रति एक तन में संचरै सब तन कंचन होय ॥ ११७ ॥

राता माता नाम का पीया प्रेम अघाय ।
मतवाला दीदार का माँगै मुक्ति बलाय ॥ ११८ ॥
मिलना जग में कठिन है मिलि बिछुड़ो जनि कोय ।
बिछुड़ा सज्जन तेहि मिलै जिन माथे मनि होय ॥ ११९ ॥
जोई मिलै सो प्रीति में और मिलै सब कोय ।
मन सो मनसा ना मिले देह मिले का होय ॥ १२० ॥
नैनों की करि कोठरी पुतली पलँग बिछाय ।
पलकों की चिक डारि के पिय को लिया रिझाय ॥ १२१ ॥
जब लगि मरने से डरै तब लगि प्रेमी नाहिं ।
बड़ी दूर है प्रेम घर समझ लेहु मन माहिं ॥ १२२ ॥
हरि से तू जनि हेत कर कर हरिजन से हेत ।
माल मुलुक हरि देत हैं हरिजन हरिहीं देत ॥ १२३ ॥
कहा भयो तन बीछुरे दूरि बसे जे बास ।
नैनाही अंतर परा प्राण तुम्हारे पास ॥ १२४ ॥
जल में बसै कमोदिनी चंदा बसै अकास ।
जो है जाको भावता सो ताही के पास ॥ १२५ ॥
प्रीतम को पतियाँ लिखूँ जो कहुँ होय विदेस ।
तन में मन में नैन में ताको कहा सँदेस ॥ १२६ ॥
अगिनि आँच सहना सुगम सुगम खड़ग की धार ।
नेह निभावन एक रस महा कठिन ब्योहार ॥ १२७ ॥
नेह निभाए ही बनै सोचे बनै न आन ।
तन दे मन दे सीस दे नेह न दीजै जान ॥ १२८ ॥

काँच कथीर अधीर नर ताहि न उपजै प्रेम ।
कह कबीर कसनी सहै कै हीरा कै हेम ॥ १२९ ॥
कसत कसौटी जो टिकै ताको सब्द सुनाय ।
सोई हमरा बंस है कह कबीर समुझाय ॥ १३० ॥

स्मरण

दुख में सुमिरन सब करै सुख में करै न कोय ।
जो सुख में सुमिरन करै तो दुख काहे होय ॥ १३१ ॥
सुख में सुमिरन ना किया दुख में कीया याद ।
कह कबीर ता दास की कौन सुनै फिरियाद ॥ १३२ ॥
सुमिरन की सुधि यों करो जैसे कामी काम ।
एक पलक बिसरै नहीं निस दिन आठो जाम ॥ १३३ ॥
सुमिरन सों मन लाइए जैसे नाद कुरंग ।
कह कबीर बिसरै नहीं प्रान तजै तेहि संग ॥ १३४ ॥
सुमिरन सुरत लगाइ कै मुख तें कछू न बोल ।
बाहर के पट देइ के अंतर के पट खोल ॥ १३५ ॥
माला फेरत जुग भया फिरा न मन का फेर ।
कर का मन का डारि दे मन का मनका फेर ॥ १३६ ॥
कबिरा माला मनहिं की और सँसारी भेख ।
माला फेरे हरि मिलैं गले रहँट के देख ॥ १३७ ॥
कबिरा माला काठ की बहुत जतन का फेर ।
माला स्वाँस उसास की जामें गाँठ न मेर ॥ १३८ ॥

सहजे ही धुन होत है हर दम घट के माहिं।
सुरत सब्द मेला भया मुख की हाजत नाहिं ॥ १३९ ॥
माला तो कर में फिरै जीभ फिरै मुख माहिं।
मनुवाँ तो दहुँ दिसि फिरै यह तो सुमिरन नाहिं ॥ १४० ॥
तन थिर मन थिर वचन थिर सुरत निरत थिर होय।
कह कबीर इस पलक को कलप न पावै कोय ॥ १४१ ॥
जाप मरै अजपा मरै अनहद भी मर जाय।
सुरत समानी सब्द में ताहि काल नहिं खाय ॥ १४२ ॥
कबिर छुधा है कूकरी करत भजन में भंग।
याको टुकड़ा डारि कै सुमिरन करो निसंक ॥ १४३ ॥
तूँ तूँ करता तूँ भया मुझ में रही न हूँ।
वारी तेरे नाम पर जित देखूँ तित तूँ ॥ १४४ ॥

विश्वास

कबिरा क्या मैं चिंतहूँ मम चिंते क्या होय।
मेरी चिंता हरि करैं चिंता मोहिं न कोय ॥ १४५ ॥
साधू गाँठि न बाँधई उदर समाता लेय।
आगे पाछे हरि खड़े जब माँगे तब देय ॥ १४६ ॥
पौ फाटी पगरा भया जागे जीवा जून।
सब काहू को देत है चोंच समाता चून ॥ १४७ ॥
कर्म करीमा लिखि रहा अब कुछ लिखा न होय।
मासा घटै न तिल बढ़ै जो सिर फोड़ै कोय ॥ १४८ ॥

साँईं इतना दीजिए जामें कुटुँब समाय।
मैं भी भूखा ना रहूँ साधु न भूखा जाय॥ १४९॥
पाँडर पिंजर मन भँवर अरथ अनूपम बास।
एक नाम सींचा अमी फल लागा बिस्वास॥ १५०॥
गाया जिन पाया नहीं अनगाए तें दूरि।
जिन गाया बिस्वास गहि ताके सदा हजूरि॥ १५१॥

बिरहिन

बिरहिन देय सँदेसरा सुनो हमारे पीव।
जल बिन मच्छी क्यों जिए पानी में का जीव॥ १५२॥
अँखियाँ तो झाँईं परी पंथ निहार निहार।
जीहड़िया छाला परा नाम पुकार पुकार॥ १५३॥
नैनन तो झरि लाइया रहट बहै निसु बास।
पपिहा ज्यों पिउ पिउ रटै पिया मिलन की आस॥ १५४॥
बहुत दिनन की जोवती रटत तुम्हारो नाम।
जिव तरसै तुव मिलन को मन नाहीं बिश्राम॥ १५५॥
बिरह भुवंगम तन डसा मंत्र न लागै कोय।
नाम वियोगी ना जिए जिए तो बाउर होय॥ १५६॥
बिरह भुवंगम पैठि कै किया कलेजे घाव।
बिरही अंग न मोड़िहैं ज्यों भावै त्यों खाव॥ १५७॥
कै बिरहिन को मीच दे कै आपा दिखलाय।
आठ पहर का दाझना मो पै सहा न जाय॥ १५८॥

बिरह कमंडल कर लिए बैरागी दो नैन ।
माँगैं दरस मधूकरी छके रहैं दिन रैन ॥ १५९ ॥
येहि तन का दिवला करों बाती मेलों जीव ।
लोहू संचों तेल ज्यों कब मुख देखों पीव ॥ १६० ॥
बिरहा आया दरस को कड़ुवा लागा काम ।
काया लागी काल होय मीठा लागा नाम ॥ १६१ ॥
हँस हँस कंत न पाइया जिन पाया तिन रोय ।
हाँसी खेले पिय मिलै कौन दुहागिन होय ॥ १६२ ॥
माँस गया पिंजर रहा ताकन लागे काग ।
साहेब अजहुँ न आइया मंद हमारे भाग ॥ १६३ ॥
अँखियाँ प्रेम बसाइया जनि जाने दुखदाय ।
नाम सनेही कारने रो रो रात बिताय ॥ १६४ ॥
हवस करै पिय मिलन की औ सुख चाहै अंग ।
पीर सहै बिनु पदमिनी पूत न लेत उछंग ॥ १६५ ॥
बिरहिन ओदी लाकड़ी सपचे औ धुँधुआय ।
छूट पड़ों या विरह से जो सिगरो जरि जाय ॥ १६६ ॥
परबत परबत मैं फिरी नैन गँवायो रोय ।
सो बूटी पायो नहीं जाते जीवन होय ॥ १६७ ॥
हिरदे भीतर दब बलै धुआँ न परगट होय ।
जाके लागी सो लखै की जिन लाई सोय ॥ १६८ ॥
सबही तरु तर जाइ के सब फल लीन्हों चीख ।
फिरि फिरि माँगत कबिर है दरसन ही की भीख ॥ १६९ ॥

पिय बिन जिय तरसत रहै पल पल बिरह सताय ।
रैन दिवस मोहिं कल नहीं सिसक सिसक जिय जाय ॥१७०॥
साँईं सेवत जल गई मास न रहिया देह ।
साँई जब लगि सेइहों यह तन होय न खेह ॥ १७१ ॥
बिरहा बिरहा मत कहो बिरहा है सुल्तान ।
जा घट बिरह न संचरै सो घट जान मसान ॥ १७२ ॥
देखत देखत दिन गया निस भी देखत जाय ।
बिरहिन पिय पावै नहीं केवल जिय घबराय ॥ १७३ ॥
सो दिन कैसा होयगा गुरू गहेंगे बाँहि ।
अपना कर बैठावहीं चरनकँवल की छाँहि ॥ १७४ ॥
जो जन बिरही नाम के सदा मगन मन माँहि ।
ज्यों दरपन की सुंदरी किनहूँ पकड़ी नाहिं ॥ १७५ ॥
चकई बिछुरी रैन की आय मिली परभात ।
सतगुरु से जो बीछुरे मिले दिवस नहिं रात ॥ १७६ ॥
बिरहिन उठि उठि भुइँ परै दरसन कारन राम ।
मूए पाछे देहुगे सो दरसन केहि काम ॥ १७७ ॥
मूए पीछे मत मिलौ कहै कबीरा राम ।
लोहा माटी मिलि गया तब पारस केहि काम ॥ १७८ ॥
सब रग ताँत रबाब तन बिरह बजावै नित्त ।
और न कोई सुनि सकै कै साँईं कै चित्त ॥ १७९ ॥
तूँ मति जानै बीसरूँ प्रीति घटै मम चित्त ।
मरूँ तो तुम सुमिरत मरूँ जिऊँ तो सुमिरूँ नित्त ॥ १८० ॥

बिरह अगिन तन मन जला लागि रहा तत जीव ।
कै वा जाने बिरहिनी कै जिन भेंटा पीव ॥ १८१ ॥
बिरह कुल्हारी तन बहै घाव न बाँधै रोह ।
मरने का संसय नहीं छूटि गया भ्रम मोह ॥ १८२ ॥
कबिरा बैद बुलाइया पकरि के देखो बाँहि ।
बैद न बेदन जानई करक करेजे माहिं ॥ १८३ ॥
बिरह बान जेहि लागिया औषध लगत न ताहि ।
सुसुकि सुसुकि मरि मरि जियै उठै कराहि कराहि ॥ १८४ ॥

विनय

सुरति करौ मेरे साइयाँ हम हैं भवजल माहिं ।
आपे ही बहि जायँगे जो नहिं पकरौ बाँहिं ॥ १८५ ॥
क्या मुख लै बिनती करौं लाज अवत है मोहिं ।
तुम देखत औगुन करौं कैसे भावों तोहिं ॥ १८६ ॥
मैं अपराधी जनम का नख सिख भरा बिकार ।
तुम दाता दुखभंजना मेरी करो सम्हार ॥ १८७ ॥
अवगुन मेरे बाप जी बकस गरीब-निवाज ।
जो मैं पूत कपूत हौं तऊ पिता को लाज ॥ १८८ ॥
औगुन किए तो बहु किए करत न मानी हार ।
भावैं बंदा बकसिए भावैं गरदन मार ॥ १८९ ॥
साहेब तुम जनि बीसरो लाख लोग लगि जाहिं ।
हमसे तुमरे बहुत हैं तुम सम हमरे नाहिं ॥ १९० ॥

अंतरजामी एक तुम आतम के आधार ।
जो तुम छोड़ौ हाथ तो कौन उतारै पार ।। १९१ ।।
मेरा मन जो तोहिं सों तेरा मन कहिं और ।
कह कबीर कैसे निभै एक चित्त दुइ ठौर ।। १९२ ।।
मन परतीत न प्रेम रस ना कछु तन में ढंग ।
ना जानौ उस पीव से क्योंकर रहसी रंग ।। १९३ ।।
मेरा मुझमें कुछ नहीं जो कुछ है सो तोर ।
तेरा तुझको सौंपते क्या लागत है मोर ।। १९४ ।।
तुम तो समरथ साँइयाँ दृढ़ करि पकरो बाँहिं ।
धुरही लै पहुँचाइयो जनि छाँड़ो मग माहिं ।। १९५ ।।

सूक्ष्म मार्ग

उत तें कोइ न बाहुरा जासे बूझूँ धाय ।
इत तें सबही जात हैं भार लदाय लदाय ।। १९६ ।।
यार बुलावै भाव सों मो पै गया न जाय ।
धन मैली पिउ ऊजला लागि न सकौं पाय ।। १९७ ।।
नाँव न जानै गाँव का बिन जाने कित जाँव ।
चलता चलता जुग भया पाव कोस पर गाँव ।। १९८ ।।
चलन चलन सब कोइ कहै मोहि अँदेसा और ।
साहेब सों परिचय नहीं पहुँचैंगे केहि ठौर ।। १९९ ।।
जहाँ न चींटी चढ़ि सकै राई ना ठहराय ।
मनुवाँ तहँ लै राखिया तहईं पहुँचे जाय ।। २०० ।।

बाट बिचारो क्या करै पथी न चलै सुधार।
राह आपनी छाँड़िकै चलै उजार उजार ॥ २०१ ॥
मरिए तो मरि जाइए छूटि परै जंजार।
ऐसा मरना को मरै दिन में सौ सौ बार ॥ २०२ ॥

परीक्षक (पारखी)

हीरा तहाँ न खोलिए जहँ खोटी है हाट।
कस करि बाँधो गाठरी उठकर चालो बाट ॥ २०३ ॥
हीरा पाया परखि के घन में दीया आन।
चोट सही फूटा नहीं तब पाई पहिचान ॥ २०४ ॥
जो हंसा मोती चुगै काँकर क्यों पतियाय।
काँकर माथा ना नवै मोती मिलै तो खाय ॥ २०५ ॥
हंसा बगुला एक सा मानसरोवर माहिं।
बगा ढँढोरे माछरी हंसा मोती खाहिं ॥ २०६ ॥
चंदन गया बिदेसड़े सब कोइ कहै पलास।
ज्यों ज्यों चूल्हे झोंकिया त्यों त्यों अधकी बास ॥ २०७ ॥
एक अचंभो देखिया हीरा हाट बिकाय।
परखनहारा बाहिरी कौड़ो बदले जाय ॥ २०८ ॥
दाम रतन धन पाइकै गाँठि बाँधि ना खोल।
नाहिं पटन नहिं पारखो नहिं गाहक नहिं मोल ॥ २०९ ॥
पारस रूपी जीव है लोह रूप संसार।
पारस ते पारस भया परख भया टकसार ॥ २१० ॥

अमृत केरी पूरिया बहु बिधि लीन्हे छोरि।
आप सरीखा जो मिले ताहि पिआऊँ घोरि ।। २११ ।।
काजर ही की कोठरी काजर ही का कोट।
तौ भी कारी ना भई रही जो ओटहिं ओट ।। २१२ ।।
ज्ञान रतन की कोठरी चुप करि दीन्हों ताल।
पारखि आगे खोलिए कुंजी बचन रसाल ।। २१३ ।।
नग पखान जग सकल है लखि आवै सब कोइ।
नग ते उत्तम पारखी जग में बिरला कोइ ।। २१४ ।।
बलिहारी तिहि पुरुष की पर चित परखनहार।
साँईं दीन्हें खाँड़ को खारी बूझ गँवार ।। २१५ ।।
हीरा वही सराहिए सहै घनन की चोट।
कपट कुरंगी मानवा परखत निकसा खोट ।। २१६ ।।
हरि हीरा जन जौहरी सबन पसारी हाट।
जब आवै जन जौहरी तब हीरौ की साँट ।। २१७ ।।
हीरा परा बजार में रहा छार लपटाय।
बहुतक मूरख चलि गए पारखि लिया उठाय ।। २१८ ।।
कलि खोटा जग आँधरा शब्द न मानै कोइ।
जाहि कहौं हित आपना सो उठि बैरी होइ ।। २१९ ।।

जिज्ञासु

ऐसा कोऊ ना मिला हमको दे उपदेस।
भवसागर में डूबता कर गहि काढ़ै केस ।। २२० ।।

ऐसा कोई ना मिला जासे रहिए लाग ।
सब जग जलता देखिया अपनी अपनी आग ॥ २२१ ॥
जैसा ढूँढ़त मैं फिरौं तैसा मिला न कोय ।
ततवेता तिरगुन रहित निरगुन से रत होय ॥ २२२ ॥
सर्पहि दूध पिलाइए सोई बिष है जाय ।
ऐसा कोई ना मिला आपे ही बिष खाय ॥ २२३ ॥
जिन ढूँढ़ा तिन पाइयाँ गहरे पानी पैठि ।
मैं बपुरा बूड़न डरा रहा किनारे बैठि ॥ २२४ ॥
हेरत हेरत हेरिया रहा कबीर हिराय ।
बुंद समानी समुँद में सो कित हेरी जाय ॥ २२५ ॥
एक समाना सकल में सकल समाना ताहि ।
कबिर समाना बूझ में तहाँ दूसरा नाहिं ॥ २२६ ॥

दुबिधा

हिरदे माहीं आरसी मुख देखा नहिं जाय ।
मुख तौ तबहीं देखई दुबिधा देइ बहाय ॥ २२७ ॥
पढ़ा गुना सीखा सभी मिटा न संसय सूल ।
कह कबीर कासों कहूँ यह सब दुख का मूल ॥ २२८ ॥
चींटी चावल लै चली बिच में मिलि गइ दार ।
कह कबीर दोउ ना मिलै एक ले दूजी डार ॥ २२९ ॥
सत्त नाम कडुवा लगै मीठा लागै दाम ।
दुबिधा में दोऊ गए माया मिली न राम ॥ २३० ॥

कथनी और करनी

कथनी मीठी खाँड़ सी करनी विष की लोय ।
कथनी तजि करनी करै विष से अमृत होय ।। २३१ ।।
कथनी बदनी छाँड़ि के करनी सो चित लाय ।
नरहिं नीर प्याए बिना कबहूँ प्यास न जाय ।। २३२ ।।
करनी बिन कथनी कथै अज्ञानी दिन रात ।
कूकर ज्यों भूँकत फिरै सुनी सुनाई बात ।। २३३ ।।
लाया साखि बनाय कर इत उत अच्छर काट ।
कह कबीर कब लग जिए जूठी पत्तल चाट ।। २३४ ।।
पानी मिलै न आपको औरन बकसत छीर ।
आपन मन निसचल नहीं और बँधावत धीर ।। २३५ ।।
कथनी थोथी जगत में करनी उत्तम सार ।
कह कबीर करनी सबल उतरै भौ-जल पार ।। २३६ ।।
पद जोरै साखी कहै साधन परि गई रौस ।
काढ़ा जल पीवै नहीं काढ़ि पियन की हौस ।। २३७ ।।
साखी कहैं गहै नहीं चाल चली नहिं जाय ।
सलिल मोह नदिया बहै पाँव नहीं ठहराय ।। २३८ ।।
मारग चलते जो गिरै ताको नाहीं दोस ।
कह कबीर बैठा रहै ता सिर करड़े कोस ।। २३९ ।।
कहता तो बहुता मिला गहता मिला न कोइ ।
सो कहता बहि जान दे जो नहिं गहता होइ ।। २४० ।।

एक एक निरवारिया जो निरवारी जाय।
दुइ दुइ मुख का बोलना घने तमाचा खाय॥ २४१॥
मुख की मीठी जो कहैं हृदया है मति आन।
कह कबीर तेहि लोग सों रामौ बड़े सयान॥ २४२॥
जसि कथनी तस करनियौ जस चुंबक तस नाम।
कह कबीर चुंबक बिना क्यों छूटै संग्राम॥ २४३॥
श्रोता तो घरही नहीं बक्ता बदै सो बाद।
श्रोता बक्ता एक घर तब कथनी को स्वाद॥ २४४॥

सहज भाव

सहज सहज सब कोउ कहै सहज न चीन्है कोय।
जा सहजे साहेब मिलै सहज कहावै सोय॥ २४५॥
सहजै सहजै सब गया सुत बित काम निकाम।
एकमेक ह्वै मिलि रहा दास कबीरा नाम॥ २४६॥
जो कछु आवै सहज में सोई मीठा जान।
कडुवा लागै नीम सा जामें ऐंचातान॥ २४७॥
सहज मिलै सो दूधसम माँगा मिलै सो पानि।
कह कबीर वह रक्त सम जामें ऐंचातानि॥ २४८॥

मौन भाव

भारी कहूँ तो बहु डरूँ हलका कहूँ तो झीठ।
मैं क्या जानूँ पीव को नैना कछू न दीठ॥ २४९॥

दीठा है तो कस कहूँ कहूँ तो को पतियाय।
साँई जस तैसा रहो हरखि हरखि गुन गाय ॥ २५० ॥
ऐसो अद्भुत मत कथो कथो तो धरो छिपाय।
बेद कुराना ना लिखी कहूँ तो को पतियाय ॥ २५१ ॥
जो देखे सो कहै नहिं कहै सो देखै नाहिं।
सुनै सो समझावै नहीं रसना दृग श्रुति काहि ॥ २५२ ॥
बाद बिबादे विष घना बोले बहुत उपाध।
मौन गहे सब की सहै सुमिरै नाम अगाध ॥ २५३ ॥

जीवन्मृत (मरजीवा)

मैं मरजीव समुँद का डुबकी मारी एक।
मूठी लाया ज्ञान की जामें बस्तु अनेक ॥ २५४ ॥
डुबकी मारी समुँद में निकसा जाय अकास।
गगन मँडल में घर किया हीरा पाया दास ॥ २५५
हरि हीरा क्यों पाइहै जिन जीवे की आस।
गुरु दरिया सो काढ़सी कोइ मरजिवादास ॥ २५६ ॥
खरी कसौटी नाम की खोटा टिकै न कोय।
नाम कसौटी सो टिकै जीवत मिरतक होय ॥ २५७ ॥
मरते मरते जग मुआ औरस मुआ न कोय।
दास कबीरा यों मुआ बहुरि न मरना होय ॥ २५८ ॥
जा मरने से जग डरै मेरे मन आनंद।
कब मरिहौं कब पाइहौं पूरन परमानंद ॥ २५९ ॥

घर जारे घर ऊबरै घर राखे घर जाय ।
एक अचंभा देखिया मुआ काल को खाय ॥ २६० ॥
रोड़ा भया तो क्या भया पंथी को दुख देय ।
साधू ऐसा चाहिए ज्यों पैंड़े की खेह ॥ २६१ ॥
खेह भई तो क्या भया उड़ि उाड़ लागै अंग ।
साधू ऐसा चाहिए जैसे नीर निपंग ॥ २६२ ॥
नीर भया तो क्या भया ताता सीरा जोय ।
साधू ऐसा चाहिए जो हरि जैसा होय ॥ २६३ ॥
हरी भया तो क्या भया करता हरता होय ।
साधू ऐसा चाहिए हरिभज निरमल होय ॥ २६४ ॥
निरमल भया तो क्या भया निरमल माँगै ठौर ।
मल निरमल से रहित हैं ते साधू कोइ और ॥ २६५ ॥
ढारस लखु मरजीव को धँसि कै पैठि पताल ।
जीव अटक मानै नहीं गहि ले निकर्यो लाल ॥ २६६ ॥

मध्य पथ

पाया कहैं ते बावरे खोया कहैं ते कूर ।
पाया खोया कछु नहीं ज्यों का त्यों भरपूर ॥ २६७ ॥
भजूँ तो को है भजन को तजूँ तो का है आन ।
भजन तजन के मध्य में सो कबीर मन मान ॥ २६८ ॥
अति का भला न बोलना अति की भली न चूप ।
अति का भला न बरसना अति की भली न धूप ॥ २६९ ॥

शूर धर्म्म

गगन दमामा बाजिया पड़त निसाने घाव।
खेत पुकारै शूरमा अब लड़ने का दाँव।। २७० ।।
सूरा सोइ सराहिए लड़े धनी के हेत।
पुरजा पुरजा होइ रहै तऊ न छाँड़ै खेत।। २७१ ।।
सूरा सोइ सराहिए अंग न पहिरै लोह।
जूझै सब बँद खोलि कै छाँड़े तन का मोह।। २७२ ।।
खेत न छाँड़ै सूरमा जूझै दो दल माहिं।
आसा जीवन मरन की मन में आनै नाहिं।। २७३ ।।
अब तो जूझै ही बनै मुड़ चाले घर दूर।
सिर साहेब को सौंपते सोच न कीजै सूर।। २७४ ।।
सिर राखे सिर जात है सिर काटे सिर सोय।
जैसे बाती दीप की कटि उँजियारा होय।। २७५ ।।
जो हारों तो सेव गुरु जो जीतों तो दाँव।
सत्तनाम से खेलता जो सिर जाव तो जाव।। २७६ ।।
खोजी को डर बहुत है पल पल पड़ै बिजोग।
प्रन राखत जो तन गिरै सो तन साहेब जोग।। २७७ ।।
तीर तुपक से जो लड़ै सो तो सूर न होय।
माया तजि भक्ती करै सूर कहावै सोय।। २७८ ।।

पातिव्रता

पतिबरता मैली भली काली कुचित कुरूप ।
पतिबरता के रूप पर वारों कोटि सरूप ॥ २७९ ॥
पतिबरता पति को भजै और न आन सुहाय ।
सिंह बचा जो लंघना तौ भी घास न खाय ॥ २८० ॥
नैनों अंतर आव तू नैन झांपि तोहि लेवँ ।
ना मैं देखों और को ना तोहिं देखन देवँ ॥ २८१ ॥
कबिरा सीप समुद्र की रटै पियास पियास ।
और बूँद को ना गहै स्वाति बूँद की आस ॥ २८२ ॥
पपिहा का पन देखकर धीरज रहै न रंच ।
मरते दम जल में पड़ा तऊ न बोरी चंच ॥ २८३ ॥
सुंदर तो साँईं भजै तजै आन की आस ।
ताहि न कबहूँ परिहरै पलक न छाँड़ै पास ॥ २८४ ॥
चढ़ी अखाड़े सुंदरी माँड़ा पिउ सों खेल ।
दीपक जोया ज्ञान का काम जरै ज्यों तेल ॥ २८५ ॥
सूरा के तो सिर नहीं दाता के धन नाहिं ।
पतिबरता के तन नहीं सुरति बसै पिउ माहिं ॥ २८६ ॥
पतिबरता मैली भली गले काँच की पोत ।
सब सखियन में यों दिपै ज्यों रविससि की जोत ॥ २८७ ॥
पतिबरता पति को भजै पति पर धर बिस्वास ।
आन दिसा चितवै नहीं सदा पीव की आस ॥ २८८ ॥

नाम न रटा तो क्या हुआ जो अंतर है हेत ।
पतिबरता पति को भजै मुख से नाम न लेत ॥ २८९ ॥
जो यह एक न जानिया बहु जाने का होय ।
एकै तें सब होत हैं सब तें एक न होय ॥ २९० ॥
सत आए उस एक में डार पात फल फूल ।
अब कहु पाछे क्या रहा गहि पकड़ा जब मूल ॥ २९१ ॥
प्रीति बढ़ी है तुज्झ से बहु गुनियाला कंत ।
जो हँस बोलों और से नील रँगाओं दंत ॥ २९२ ॥
कबिरा रेख सिंदूर अरु काजर दिया न जाय ।
नैनन प्रीतम रमि रहा दूजा कहाँ समाय ॥ २९३ ॥
आठ पहर चौंसठ घड़ी मेरे और न कोय ।
नैना माहीं तू बसै नींद को ठौर न होय ॥ २९४ ॥
अब तो ऐसी ह्वै परी मन अति निर्मल कीन्ह ।
मरने का भय छाँड़ि के हाथ सिंधोरा लीन्ह ॥ २९५ ॥
सती बिचारी सत किया काँटों सेज बिछाय ।
लै सूती पिय आपना चहुँ दिस अगिन लगाय ॥ २९६ ॥
सती न पीसै पीसना जो पीसै सो राँड़ ।
साधू भीख न माँगई जो माँगै सो भाँड़ ॥ २९७ ॥
सेज बिछावै सुंदरी अंतर परदा होय ।
तन सौंपे मन दे नहीं सदा दुहागिन सोय ॥ २९८ ॥

सत्गुरु

सतगुरु सम को है सगा साधू सम को दात ।
हरि समान को हितू है हरिजन सम को जात ॥ २९९ ॥
गुरु गोबिंद दोऊ खड़े काके लागौं पाँय ।
बलिहारी गुरु आपने गोबिंद दियो बताय ॥ ३०० ॥
बलिहारी गुरु आपने घड़ि घड़ि सौ सौ बार ।
मानुष से देवता किया करत न लागी बार ॥ ३०१ ॥
सब धरती कागद करूँ लेखनि सब बनराय ।
सात समुँद की मसि करूँ गुरु गुन लिखा न जाय ॥ ३०२ ॥
तन मन ताको दीजिए जाके विषया नाहिं ।
आपा सबहीं डारि कै राखै साहेब माहिं ॥ ३०३ ॥
तन मन दिया तो क्या हुआ निज मन दिया न जाय ।
कह कबीर ता दास सों कैसे मन पतियाय ॥ ३०४ ॥
गुरु सिकलीगर कीजिए मनहिं मस्कला देय ।
मन की मैल छुड़ाइकै चित दरपन करि लेय ॥ ३०५ ॥
गुरु धोबी सिष कापड़ा साबुन सिरजनहार ।
सुरति सिला पर धोइए निकसै जोति अपार ॥ ३०६ ॥
गुरु कुम्हार सिष कुंभ है गढ़ गढ़ काढ़ै खोट ।
अन्तर हाथ सहार दै बाहर बाहै चोट ॥ ३०७ ॥
कबिरा ते नर अंध हैं गुरु को कहते और ।
हरि रूठै गुरु ठौर हैं गुरु रूठे नहिं ठौर ॥ ३०८ ॥

गुरु हैं बड़े गोविंद तें मन में देखु बिचार।
हरि सुमिरै सो बार है गुरु सुमिरे सो पार ॥ ३०९ ॥
गुरु पारस गुरु परस है चंदन बास सुवास।
सतगुरु पारस जीव को दीन्हा मुक्ति निवास ॥ ३१० ॥
पंडित पढ़ि गुन पचि मुए गुरु बिन मिलै न ज्ञान।
ज्ञान बिना नहिं मुक्ति है सत्त सब्द परमान ॥ ३११ ॥
तीन लोक नौ खंड में गुरु ते बड़ा न कोइ।
करता करै न करि सकै गुरू करै सो होइ ॥ ३१२ ॥
कबिरा हरि के रूठते गुरु के सरने जाय।
कह कबीर गुरु रूठते हरि नहिं होत सहाय ॥ ३१३ ॥
वस्तु कहीं ढूँढ़ै कहीं केहि विधि आवै हाथ।
कह कबीर तब पाइए भेदी लीजे साथ ॥ ३१४ ॥
यह तन विष की बेलरी गुरु अमृत की खान।
सीस दिए जो गुरु मिलें तौ भी सस्ता जान ॥ ३१५ ॥
कोटिन चंदा ऊगवें सूरज कोटि हजार।
सत गुरु मिलिया बाहरे दीसत घोर अँधार ॥ ३१६ ॥
सतगुरु पारस के सिला देखो सोच बिचार।
आइ पड़ोसिन लै चली दीयो दिया सँवार ॥ ३१७ ॥
चौंसठ दीवा जोय के चौदह चंदा माहिं।
तेहि घर किसका चाँदना जेहि घर सतगुरु नाहिं ॥ ३१८ ॥
ताकी पूरी क्यों परै गुरु न लखाई बाट।
ताको बेड़ा बूड़िहै फिर फिर अवघट घाट ॥ ३१९ ॥

असद्गुरु

गुरू मिला ना सिष मिला लालच खेला दाँव।
दोऊ बूड़े धार में चढ़ि पाथर की नाव ॥ ३२० ॥
जानंता बूझा नहीं बूझि किया नहिं गौन।
अंधे को अंधा मिला राह बतावै कौन ॥ ३२१ ॥
बंधे को बंधा मिलै छूटै कौन उपाय।
कर सेवा निरबंध की पल में लेत छुड़ाय ॥ ३२२ ॥
बात बनाई जग ठगा मन परमोधा नाहिं।
कह कबीर मन लै गया लख चौरासी माहिं ॥ ३२३ ॥
नीर पियावत का फिरै घर घर सायर बारि।
तृषावंत जो होइगा पीवैगा झख मारि ॥ ३२४ ॥
सिष साखा बहुते किए सतगुरु किया न मित्त।
चाले थे सतलोक को बीचहिं अटका चित्त ॥ ३२५ ॥

संतजन

साध बड़े परमारथी घन ज्यों बरसैं आय।
तपन बुझावैं और की अपनो पारस लाय ॥ ३२६ ॥
सिंहों के लेहँड़े नहीं हंसों की नहिं पाँत।
लालों की नहिं बोरियाँ साध न चलैं जमात ॥ ३२७ ॥
सब बन तौ चंदन नहीं सूरा का दल नाहिं।
सब समुद्र मोती नहीं यों साधू जग माहिं ॥ ३२८ ॥

साध कहावन कठिन है लंबा पेड़ खजूर ।
चढ़ै तो चाखै प्रेमरस गिरै तो चकनाचूर ॥ ३२९ ॥
गाँठी दाम न बाँधई नहिं नारी सों नेह ।
कह कबीर ता साध की हम चरनन की खेह ॥ ३३० ॥
बृच्छ कबहुँ नहिं फल भखैं नदी न संचै नीर ।
परमारथ के कारने साधुन धरा सरीर ॥ ३३१ ॥
साधु साधु सबही बड़े अपनी अपनी ठौर ।
शब्द विवेकी पारखी ते माथे के मौर ॥ ३३२ ॥
साधु साधु सब एक हैं ज्यों पोस्ते का खेत ।
कोइ विवेकी लाल है नहीं सेत का सेत ॥ ३३३ ॥
निराकार की आरसी साधौ ही की देह ।
लखा जो चाहै अलख को इनहीं में लखि लेह ॥ ३३४ ॥
कोई आवै भाव ले कोई आव अभाव ।
साध दोऊ को पोषते गिनैं न भाव अभाव ॥ ३३५ ॥
नहिं शीतल है चंद्रमा हिम नहिं शीतल होय ।
कबिरा शीतल संतजन नाम सनेही सोय ॥ ३३६ ॥
जाति न पूछो साध की पूछि लीजिए ज्ञान ।
मोल करो तरवार का पड़ा रहन दो म्यान ॥ ३३७ ॥
संत न छोड़े संतई कोटिक मिलैं असंत ।
मलया भुवँगहि बेधिया सीतलता न तजंत ॥ ३३८ ॥
साधू ऐसा चाहिए दुखै दुखावै नाहिं ।
पान फूल छोड़े नहीं बसै बगीचा माहिं ॥ ३३९ ॥

साध सिद्ध बड़ अंतरा जैसे आम बबूल।
वाकी डारी अमी फल याकी डारी सूल ॥ ३४० ॥
हरि दरिया सूभर भरा साधो का घट सीप।
तामें मोती नीपजै चढ़ै देसावर दीप ॥ ३४१ ॥
साधू भूखा भाव का धन का भूखा नाहिं।
धन का भूखा जो फिरै सो तो साधू नाहिं ॥ ३४२ ॥
साधु समुंदर जानिए माहीं रतन भराय।
मंदभाग मूठो भरै कर कंकर चढ़ि जाय ॥ ३४३ ॥
चंदन की कुटकी भली नहिं बबूल लखराँव।
साधन की झुपड़ो भली ना साकट को गाँव ॥ ३४४ ॥
हरि सेती हरिजन बड़े समझि देखु मन माहिं।
कह कबीर जग हरिविखे सो हरि हरिजन माहिं ॥ ३४५ ॥
जो चाहै आकार तू साधू परतछ देव। प्रत्यक्ष
निराकार निज रूप है प्रेम प्रीति से सेव ॥ ३४६ ॥
पच्छापच्छ कारणे सब जग रहा भुलान।
निरपच्छै है हरि भजैं तेई संत सुजान ॥ ३४७ ॥
समुझि बूझि जड़ है रहे बल तजि निर्बल होय।
कह कबीर ता संत को पला न पकरै कोय ॥ ३४८ ॥
हद चलै सो मानवा बेहद चलै सो साध।
हद बेहद दोनों तजै ताको मता अगाध ॥ ३४९ ॥
सोना सज्जन साधु जन टूटि जुरै सौ बार।
दुर्ज्जन कुम्भ कुम्हार के एकै धका दरार ॥ ३५० ॥

जीवन्मुक्तै ह्वै रहै तजै खलक की आस।
आगे पीछे हरि फिरैं क्यों दुख पावै दास॥ ३५१॥

असज्जन

संगति भई तो क्या भया हिरदा भया कठोर।
नौ नेजा पानी चढ़े तऊ न भीजै कोर॥ ३५२॥
हरिया जानै रूखड़ा जो पानी का नेह।
सूखा काठ न जानही केतहु बूड़ा मेह॥ ३५३॥
कबिरा मूढ़क प्रानियाँ नख सिख पाखर आहि।
बाहनहारा क्या करै बान न लागै ताहि॥ ३५४॥
पसुवा सों पाला परयो रहु रहु हिया न खीज।
ऊसर बीज न ऊगसी घालै दूना बीज॥ ३५५॥
कबिरा चंदन के निकट नीम भी चंदन होय।
बूड़े बाँस बड़ाइया यों जनि बूड़ो कोय॥ ३५६॥
चाल बकुल की चलत हैं बहुरि कहावैं हंस।
ते मुक्ता कैसे चुगैं परैं काल के फंस॥ ३५७॥
साधू भया तो क्या हुआ माला पहिरी चार।
बाहर भेस बनाइया भीतर भरी भँगार॥ ३५८॥
माला तिलक लगाइ के भक्ति न आई हाथ।
दाढ़ी मूँछ मुड़ाइ के चले दुनी के साथ॥ ३५९॥
दाढ़ी मूँछ मुड़ाइ के हूआ घोटम घोट।
मन को क्यों नहिं मूड़िए जा में भरिया खोट॥ ३६०॥

मूँड़ मुड़ाए हरि मिलैं सब कोइ लेहि मुँड़ाय।
बार बार के मूँड़ने भेड़ न वैकुँठ जाय॥ ३६१ ॥
केसन कहा बिगारिया जो मूँड़ौ सौ बार।
मन को क्यों नहिं मूँड़िए जामें विषै बिकार॥ ३६२ ॥
बाँबो कूटें बावरे साँप न मारा जाय।
मूरख बाँबो ना डसै सर्प सबन को खाय॥ ३६३ ॥
जो बिभूति साधुन तजी तेहि बिभूति लपटाय।
जो नर बवन करि डारिया स्वान स्वाद करि खाय॥ ३६४ ॥
हम जाना तुम मगन हो रहे प्रेम रस पागि।
रँचक पवन के लागते उठे नाग से जागि॥ ३६५ ॥
सज्जन तो दुर्जन भया सुनि काहू को बोल।
काँसा ताँबा ह्वै रहा नहिं हिरण्य का मोल॥ ३६६ ॥
लोहे केरी नावरी पाहन गरुआ भार।
सिर में विष की मोटरी उतरन चाहे पार॥ ३६७ ॥
सकलौ दुरमति दूरि करु अच्छा जनम बनाउ।
काग गवन बुधि छोड़ि दे हंस गवनि चलि आउ॥ ३६८ ॥
चंदन सर्प लपेटिया चंदन काह कराय।
रोम रोम विस भीनिया अमृत कहाँ समाय॥ ३६९ ॥
मलयागिरि के बास में बेधा ढाक पलास।
बेना कबहुँ न वेधिया जुग जुग रहिया पास॥ ३७० ॥
जहर जिमीं दै रोपिया अमि सोंचै सौ बार।
कबिरा खलकै ना तजै जामें जौन विचार॥ ३७१ ॥

गुरू बिचारा क्या करै शिष्यहि में है चूक।
शब्द-बाण बेधे नहीं बाँस बजावै फूँक॥ ३७२॥

सत्संग

कबिरा संगत साध की हरै और की व्याधि।
संगत बुरी असाध की आठो पहर उपाधि॥ ३७३॥
कबिरा संगत साधु की जौ की भूसी खाय।
खीर खाँड़ भोजन मिलै साकट संग न जाय॥ ३७४॥
कबिरा संगत साधु की ज्यों गंधी का बास।
जो कछु गंधी दे नहीं तौ भी बास सुबास॥ ३७५॥
मथुरा भावैं द्वारिका भावैं जा जगनाथ।
साध सँगति हरि भजन बिनु कछू न आवै हाथ॥ ३७६॥
ते दिन गए अकारथी संगति भई न संत।
प्रेम बिना पशु जीवना भक्ति बिना भगवंत॥ ३७७॥
कबिरा मन पंछी भया भावै तहवाँ जाय।
जो जैसी संगति करै सो तैसा फल खाय॥ ३७८॥
कबिरा खाँईं कोट की पानी पिवै न कोय।
जाय मिलै जब गंग से सब गंगोदक होय॥ ३७९॥

कुसंग

जानि बूझि साँची तजै करै झूठि सो नेह।
ताकी संगति हे प्रभू सपनेहूँ मति देह॥ ३८०॥

तोहीं पीर जो प्रेम की पाका सेती खेल ।
काँची सरसों पेरि कै खली भया ना तेल ।। ३८१ ।।
दाग जो लागा नील का सौ मन साबुन धोय ।
कोटि जतन परबोधिए कागा हंस न होय ।। ३८२ ।।
मारी मरे कुसंग की केरा के ढिग बेर ।
वह हालै वह अँग चिरै बिधि ने संग निबेर ।। ३८३ ।।
केरा तबहि न चेतिया जब ढिग लागी बेर ।
अब के चेते क्या भया काँटन लीन्हें घेरि ।। ३८४ ।।

सेवक और दास

द्वार धनी के पड़ि रहै धका धनी का खाय ।
कबहुँक धनी निवाजई जो दर छाँड़ि न जाय ।। ३८५ ।।
दासातन हिरदे नहीं नाम धरावै दास ।
पानी के पीए बिना कैसे मिटै पियास ।। ३८६ ।।
भुक्ति मुक्ति माँगौं नहीं भक्ति दान दै मोहिं ।
और कोई याचौं नहीं निस दिन याचौं तोहिं ।। ३८७ ।।
काजर केरी कोठरी ऐसा यह संसार ।
बलिहारी वा दास की पैठि के निकसन-हार ।। ३८८ ।।
अनराते सुख सोवना राते नींद न आय ।
ज्यों जल छूटे माछरी तलफत रैन बिहाय ।। ३८९ ।।
जा घट में साँई बसै सो क्यों छाना होय ।
जतन जतन करि दाबिए तौ उँजियाला सोय ।। ३९० ।।

सब घट मेरा साँइयाँ सूनी सेज न कोय।
बलिहारी वा दास की जा घट परगट होय॥ ३९१॥

भेष

तत्त्व तिलक माथे दिया सुरति सरवनी कान।
करनी कंठी कंठ में परसा पद निर्वान॥ ३९२॥
मन माला तन मेखला भय की करै भभूत।
अलख मिला सब देखता सो जोगी अवधूत॥ ३९३॥
तन को जोगी सब करै मन को बिरला कोय।
सहजै सब बिधि पाइए जो मन जोगी होय॥ ३९४॥
हम तो जोगी मनहिं के तन के हैं ते और।
मन का जोग लगावते दसा भई कछु और॥ ३९५॥

चेतावनी

कबिरा गर्व न कीजिए काल गहे कर केस।
ना जानैं कित मारिहै क्या घर क्या परदेस॥ ३९६॥
झूँठे सुख को सुख कहैं मानत हैं मन मोद।
जगत चबेना काल का कुछ मुख में कुछ गोद॥ ३९७॥
कुसल कुसल ही पूछते जग में रहा न कोय।
जरा मुई ना भय मुआ कुसल कहाँ से होय॥ ३९८॥
पानी केरा बुद्बुदा अस मानुष की जात।
देखत ही छिप जायगा ज्यों तारा परभात॥ ३९९॥

रात गँवाई सोय कर दिवस गँवाया खाय ।
हीरा जनम अमोल था कौड़ी बदले जाय ॥ ४०० ॥
आछे दिन पाछे गए गुरु से किया न हेत ।
अब पछतावा क्या करै चिड़ियाँ चुग गईं खेत ॥ ४०१ ॥
काल्ह करै सो आज कर आज करै सो अब्ब ।
पल में परलै होयगी बहुरि करैगा कब्ब ॥ ४०२ ॥
पाव पलक की सुध नहीं करै काल्ह का साज ।
काल अचानक मारसी ज्यों तीतर को बाज ॥ ४०३ ॥
कबिरा नौबत आपनी दिन दस लेहु बजाय ।
यह पुर पट्टन यह गली बहुरि न देखो आय ॥ ४०४ ॥
पाँचो नौबत बाजती होत छतीसो राग ।
सो मंदिर खाली पड़ा बैठन लागे काग ॥ ४०५ ॥
ऊजड़ खेड़े ठीकरी गढ़ि गढ़ि गए कुम्हार ।
रावन सरिखा चल गया लंका का सरदार ॥ ४०६ ॥
कबिरा गर्व न कीजिए अस जोबन की आस ।
टेसू फूला दिवस दस खंखर भया पलास ॥ ४०७ ॥
कबिरा गर्व न कीजिए ऊँचा देख अवास ।
काल्ह परों भुइँ लेटना ऊपर जमसी घास ॥ ४०८ ॥
ऐसा यह संसार है जैसा सेमर फूल ।
दिन दस के व्योहार में झूठे रंग न भूल ॥ ४०९ ॥
माटी कहै कुम्हार को तूँ क्या रूँदै मोहिं ।
इक दिन ऐसा होयगा मैं रूँदूँगी तोहिं ॥ ४१० ॥

कबिरा यह तन जात है सकै तो ठौर लगाव।
कै सेवा कर साध की कै गुरु के गुन गाव॥ ४११॥
मोर तोर की जेवरी बटि बाँधा संसार।
दास कबीरा क्यों बँधे जाके नाम अधार॥ ४१२॥
दुर्लभ मानुष जनम है देह न बारंबार।
तरवर ज्यों पत्ता झड़ै बहुरि न लागै डार॥ ४१३॥
आए हैं सो जायँगे राजा रंक फकीर।
एक सिंघासन चढ़ि चले इक बँधि जात जँजीर॥ ४१४॥
जो जानहु जिव आपना करहु जीव को सार।
जियरा ऐसा पाहुना मिलै न दूजी बार॥ ४१५॥
कबिरा यह तन जात है सकै तो राख बहोर।
खाली हाथों वे गए जिनके लाख करोर॥ ४१६॥
आस पास जोधा खड़े सबी बजावैं गाल।
माँझ महल से ले चला ऐसा काल कराल॥ ४१७॥
तन सराय मन पाहरू मनसा उतरी आय।
कोउ काहू का है नहीं देखा ठोंक बजाय॥ ४१८॥
मैं मैं बड़ी बलाय है सको तो निकसो भाग।
कह कबीर कब लग रहै रुई लपेटी आग॥ ४१९॥
बासर सुख ना रैन सुख ना सुख सपने माहिं।
जो नर बिछुड़े नाम से तिनको धूप न छाहिं॥ ४२०॥
अपने पहरे जागिए ना पड़ि रहिए सोय।
ना जानौं छिन एक में किसका पहरा होय॥ ४२१॥

दीन गँवायो सँग दुनी दुनी न चाली साथ ।
पाँव कुल्हाड़ी मारिया मूरख अपने हाथ ॥ ४२२ ॥
मैं भँवरा तोहिं बरजिया बन बन बास न लेय ।
अटकैगा कहुँ बेल से तड़पि तड़पि जिय देय ॥ ४२३ ॥
बाड़ी के बिच भँवर था कलियाँ लेता बास ।
सो तो भँवरा उड़ि गया तजि बाड़ी की आस ॥ ४२४ ॥
भय बिनु भाव न ऊपजै भय बिनु होय न प्रीति ।
जब हिरदे से भय गया मिटी सकल रस रीति ॥ ४२५ ॥
भय से भक्ति करै सबै भय से पूजा होय ।
भय पारस है जीव को निर्भय होय न कोय ॥ ४२६ ॥
ऐसी गत संसार की ज्यों गाड़र की ठाट ।
एक पड़ा जेहि गाड़ में सबै जायँ तेहि बाट ॥ ४२७ ॥
इक दिन ऐसा होयगा कोउ काहू का नाहिं ।
घर की नारी को कहै तन की नारी जाहिं ॥ ४२८ ॥
भँवर बिलंबे बाग में बहु फूलन की आस ।
जीव बिलंबे विषय में अंतहु चले निरास ॥ ४२९ ॥
चलती चक्की देखि के दिया कबीरा रोय ।
दुइ पट भीतर आइ के साबित गया न कोय ॥ ४३० ॥
सेमर सुवना सेइया दुइ ढेंढी की आस ।
ढेंढी फूटि चटाक दे सुवना चला निरास ॥ ४३१ ॥
धरती करते एक पग समुँदर करते फाल ।
हाथन परबत तौलते तिनहूँ खाया काल ॥ ४३२ ॥

आज काल्ह दिन एक में इस्थिर नाहिं सरीर।
कह कबीर कस राखिहौ काँचे बासन नीर॥ ४३३॥
माली आवत देखि कै कलियाँ करैं पुकार।
फूली फूली चुनि लिए काल्हि हमारी बार॥ ४३४॥
काँचो काया मन अथिर थिर थिर काज करंत।
ज्यों ज्यों नर निधड़क फिरत त्यों त्यों काल हसंत॥ ४३५॥
हम जानैं थे खायँगे बहुत जमीं बहु माल।
ज्यों का त्यों ही रह गया पकरि लै गया काल॥ ४३६॥
दव की दाही लाकड़ी ठाढ़ी करै पुकार।
अब जो जाउँ लोहार घर डाहै दूजी बार॥ ४३७॥
जरनेहारा भी मुआ मुआ जरावन-हार।
हैं है करते भी मुए कासों करौं पुकार॥ ४३८॥
भाई बीर बटाउआ भरि भरि नैनन रोय।
जाका था सो ले लिया दीन्हा था दिन दोय॥ ४३९॥
तेरा संगी कोइ नहीं सबै स्वारथी लोय।
मन परती तिन ऊपजै जिव बिस्वास न होय॥ ४४०॥
कबिरा रसरी पाँव में कह सोवै सुख चैन।
स्वाँस नगाड़ा कूँच का बाजत है दिन रैन॥ ४४१॥
पात भरंता यों कहै सुनु तरवर बनराय।
अब के बिछुरे ना मिलैं दूर परैंगे जाय॥ ४४२॥
कबिरा जंत्र न बाजइ टूटि गया सब तार।
जंत्र बिचारा क्या करै चला बजावन-हार॥ ४४३॥

साथी हमरे चलि गए हम भी चालनहार ।
कागद में बाकी रही तातें लागी बार ॥ ४४४ ॥
दस द्वारे का पींजरा तामें पंछी पौन ।
रहिबे को आचरज है जाय तो अचरज कौन ॥ ४४५ ॥
सुर नर मुनि औ देवता सात द्वीप नव खंड ।
कह कबीर सब भोगिया देह धरे का दंड ॥ ४४६ ॥

उपदेश

जो तोको काँटा बुवै ताहि बोव तू फूल ।
तोहिं फूल को फूल है वाको है तिरसूल ॥ ४४७ ॥
दुर्बल को न सताइए जाकी मोटी हाय ।
बिना जीव की स्वाँस से लोह भसम ह्वै जाय ॥ ४४८ ॥
कबिरा आप ठगाइए और न ठगिए कोय ।
आप ठगा सुख होत है और ठगे दुख होय ॥ ४४९ ॥
या दुनिया में आइके छाँड़ि देइ तू ऐंठ ।
लेना होइ सो लेइ ले उठी जात है पैंठ ॥ ४५० ॥
ऐसी बानी बोलिए मन का आपा खोय ।
औरन को सीतल करै आपहुँ सीतल होय ॥ ४५१ ॥
जग में बैरी कोइ नहीं जो मन सीतल होय ।
या आपा को डारि दे दया करै सब कोय ॥ ४५२ ॥
हस्ती चढ़िए ज्ञान की सहज दुलीचा डारि ।
स्वान रूप संसार है भूसन दे झख मारि ॥ ४५३ ॥

बाजन देहू जंतरी कलि कुकही मत छेड़ ।
तुझे पराई क्या पड़ी अपनी आप निबेड़ ।। ४५४ ।।
आवत गारी एक है उलटत होय अनेक ।
कह कबीर नहिं उलटिए वही एक की एक ।। ४५५ ।।
गारी ही सों ऊपजै कलह कष्ट औ मीच ।
हारि चलै सो साधु है लागि मरै सो नीच ।। ४५६ ।।
जैसा अनजल खाइए तैसा ही मन होय ।
जैसा पानी पीजिए तैसी बानी सोय ।। ४५७ ।।
माँगन मरन समान है मति कोइ माँगो भीख ।
माँगन ते मरना भला यह सतगुरु की सीख ।। ४५८ ।।
उदर समाता अन्न लै तनहि समाता चीर ।
अधिकहि संग्रह ना करै ताका नाम फकीर ।। ४५९ ।।
कहते को कहि जान दे गुरु की सीख तु लेइ ।
साकट जन औ स्वान को फिर जवाब मत देइ ।। ४६० ।।
जो कोइ समझै सैन में तासों कहिए बैन ।
सैन बैन समझै नहीं तासों कछू कहै न ।। ४६१ ।।
बहते को मत बहन दे कर गहि एंचहु ठौर ।
कहा सुना मानै नहीं वचन कहो दुइ और ।। ४६२ ।।
सकल दुरमती दूर करि आछो जन्म बनाव ।
काग गमन गति छाँड़ि दे हंस गमन गति आव ।। ४६३ ।।
मधुर वचन है औषधी कटुक वचन है तीर ।
स्रवन द्वार ह्वै संचरै सालै सकल सरीर ।। ४६४ ।।

बोलत ही पहिचानिए साहु चोर को घाट ।
अंतर की करनी सबै निकसै मुख की बाट ॥ ४६५ ॥
पढ़ि पढ़ि के पत्थर भए लिखि लिखि भए जा ईंट ।
कबिरा अंतर प्रेम की लागी नेक न छींट ॥ ४६६ ॥
नाम भजो मन बसि करो यही बात है तंत ।
काहे को पढ़ि पचि मरो कोटिन ज्ञान गरंथ ॥ ४६७ ॥
करता था तो क्यों रहा अब करि क्यों पछिताय ।
बोवे पेड़ बबूल का आम कहाँ तें खाय ॥ ४६८ ॥
कबिरा दुनिया देहरे सीस नवावन जाय ।
हिरदे माहीं हरि बसैं तू ताही लौ लाय ॥ ४६९ ॥
मन मथुरा दिल द्वारिका काया कासी जान ।
दस द्वारे का देहरा तामें जोति पिछान ॥ ४७० ॥
पूजा सेवा नेम व्रत गुड़ियन का सा खेल ।
जब लग पिउ परसै नहीं तब लग संसय मेल ॥ ४७१ ॥
तीरथ चाले दुइ जना चित चंचल मन चोर ।
एको पाप न उतरिया मन दस लाए और ॥ ४७२ ॥
न्हाए धोए क्या भया जो मन मैल न जाय ।
मीनै सदा जल में रहै धोए बास न जाय ॥ ४७३ ॥
पोथी पढ़ि पढ़ि जग मुआ पंडित हुआ न कोय ।
एकै अच्छर प्रेम का पढ़े सो पंडित होय ॥ ४७४ ॥
पढ़े गुने सीखे सुने मिटी न संसय सूल ।
कह कबीर कासों कहूँ येही दुख का मूल ॥ ४७५ ॥

पंडित श्रौर मसालची दोनों सूझै नाहिं।
श्रौरन को कर चाँदना श्राप अँधेरे माहिं॥ ४७६॥
ऊँचे गाँव पहाड़ पर श्रौ मोटे की बाँह।
ऐसो ठाकुर सेइए उबरिय जाकी छाँह॥ ४७७॥
हे कबीर तैं उतरि रहु सँबल परोह न साथ।
सबल घटे श्रौ पग थके जीव बिराने हाथ॥ ४७८॥
श्रपा तजो श्रौ हरि भजो नख सिख तजो बिकार।
सब जिउ ते निरबैर रहु साधु मता है सार॥ ४७९॥
बहु बंधन ते बाँधिया एक बिचारा जीव।
का बल छूटै श्रापने जो न छुड़ावै पीव॥ ४८०॥
समुझाए समुझै नहीं परहथ श्राप बिकाय।
मैं खैंचत हौं श्रापको चला सो जमपुर जाय॥ ४८१॥
वोहू तो वैसहि भया तू मति होइ श्रयान।
तू गुणवंत वे निरगुणी मति एकै में सान॥ ४८२॥
पूरा साहब सेइए सब विधि पूरा होइ।
श्रोछे नेह लगाइए मूलो श्रावै खोइ॥ ४८३॥
पहिले बुरा कमाइ कै बाँधी बिष कै मोट।
कोटि कर्म मिट पलक में श्रावै हरि की श्रोट॥ ४८४॥

काम

सह कामी दीपक दसा सोखै तेल निवास।
कबिरा हीरा संत जन सहजै सदा प्रकास॥ ४८५॥

कामी क्रोधी लालची इनसे भक्ति न होय।
भक्ति करै कोइ सूरमा जाति बरन कुल खोय ॥ ४८६ ॥
भक्ति बिगारी कामियाँ इंद्री केरे स्वाद।
हीरा खोया हाथ से जनम गँवाया बाद ॥ ४८७ ॥
जहाँ काम तहँ नाम नहिं जहाँ नाम नहिं काम।
दोनों कबहूँ ना मिलैं रबि रजनी इक ठाम ॥ ४८८ ॥
काम क्रोध मद लोभ की जब लग घट में खान।
कहा मुर्ख कह पंडिता दोनों एक समान ॥ ४८९ ॥
काम काम सब कोइ कहै काम न चीन्है कोय।
जेती मन की कलपना काम कहावैं सोय ॥ ४९० ॥

क्रोध

कोटि परम लागे रहैं एक क्रोध की लार।
किया कराया सब गया जब आया हंकार ॥ ४९१ ॥
दसो दिसा से क्रोध की उठी अपरबल आगि।
सीतल संगति साधु की तहाँ उबरिए भागि ॥ ४९२ ॥
कुबुधि कमानी चढ़ि रही कुटिल बचन का तीर।
भरि भरि मारै कान में सालै सकल सरीर ॥ ४९३ ॥
कुटिल बचन सब से बुरा जारि करै तन छार।
साध बचन जल रूप है बरसै अमृत धार ॥ ४९४ ॥
करक करेजे गड़ि रही बचन बृच्छ की फाँस।
निकसाए निकसै नहीं रही सो काहू गाँस ॥ ४९५ ॥

मधुर बचन हैं औषधी कटुक बचन हैं तीर ।
श्रवण द्वार ह्वै संचरैं सालैं सकल शरीर ॥ ४९६ ॥

लोभ

जब मन लागै लोभ सों गया विषय में सोय ।
कहै कबीर विचारि कै कस भक्ती धन होय ॥ ४९७ ॥
कबिरा त्रिस्ना पापिनी तासों प्रीति न जोरि ।
पैंड पैंड पाछे परै लागै मोटी खोरि ॥ ४९८ ॥
कबिरा औंधी खोपरी कबहूँ धापै नाहिं ।
तीन लोक की संपदा कब आवै घर माहिं ॥ ४९९ ॥
आब गई आदर गया नैनन गया सनेह ।
ये तीनों तबही गए जबहिं कहा कछु देह ॥ ५०० ॥
बहुत जतन करि कीजिए सब फल जाय नसाय ।
कबिरा संचय सूम धन अंत चोर लै जाय ॥ ५०१ ॥

मोह

मोह फंद सब फाँदिया कोइ न सकै निरवार ।
कोइ साधू जन पारखी बिरला तत्त्व विचार ॥ ५०२ ॥
मोह मगन संसार है कन्या रही कुमारि ।
काहू सुरति जो ना करी फिरि फिरि ले अवतारि ॥ ५०३ ॥
जहँ लग सब संसार है मिरग सबन को मोह ।
सुर नर नाग पताल अरु ऋषि मुनिवर सब जोह ॥ ५०४ ॥

सलिल मोह की धार में बहि गए गहिर गँभीर ।
सुच्छम मछरी सुरति है चढ़ती उलटे नीर ॥ ५०५ ॥
अमृत केरी मोटरी सिर से धरी उतारि ।
जाहि कहौं मैं एक हौं मोहि कहै द्वै चारि ॥ ५०६ ॥
जाको मुनिवर तप करैं बेद पढ़ैं गुन गाय ।
सोई देव सिखापना नहिं कोई पतिआय ॥ ५०७ ॥
भर्म परा तिहुँ लोक में भर्म बसा सब ठाउँ ।
कहहि कबीर पुकारि के बसैं भर्म के गाउँ ॥ ५०८ ॥
युवा जरा बालापन बीत्यो चौथि अवस्था आई ।
जस मुसवा को तकै बिलैया तस जम घात लगाई ॥ ५०९ ॥
दर्पण केरी जो गुफा सोनहा पैठो धाय ।
देखत प्रतिमा आपनी भूँकि भूँकि मरि जाय ॥ ५१० ॥
मनुष बिचारा क्या करै कहे न खुलैं कपाट ।
श्वान चौक बैठाय कै पुनि पुनि ऐपन चाट ॥ ५११ ॥

अहंकार

माया तजी तो क्या भया मान तजा नहिं जाय ।
मान बड़े मुनिवर गले मान सबन को खाय ॥ ५१२ ॥
मान बड़ाई कूकरी संतन खेदी जानि ।
पांडव जग पूरन भया सुपच बिराजे आनि ॥ ५१३ ॥
मान बड़ाई जगत में कूकर की पहिचान ।
मीत किए मुख चाटही बैर किए तन हानि ॥ ~~५१४~~ ॥

बड़ा हुआ तो क्या हुआ जैसे पेड़ खजूर ।
पंथी को छाया नहीं फल लागै अति दूर ॥ ५१५ ॥
कबिरा अपने जीव तें ये दो बातें धोय ।
मान बड़ाई कारने आछत मूल न खोय ॥ ५१६ ॥
प्रभुता को सब कोउ भजै प्रभु को भजै न कोय ।
कह कबीर प्रभु को भजै प्रभुता चेरी होय ॥ ५१७ ॥
जहँ आपा तहँ आपदा जहँ संसय तहँ सोग ।
कह कबीर कैसे मिटैं चारों दीरघ रोग ॥ ५१८ ॥
माया त्यागे क्या भया मान तजा नहिं जाय ।
जेहि मानै मुनिवर ठगे मान सबन को खाय ॥ ५१९ ॥

कपट

कबिरा तहाँ न जाइए जहाँ कपट का हेत ।
जानो कली अनार की तन राता मन स्वेत ॥ ५२० ॥
चित कपटी सब सों मिलै माहीं कुटिल कठोर ।
इक दुरजन इक आरसी आगे पीछे और ॥ ५२१ ॥
हेत प्रीति सों जो मिले ताको मिलिए धाय ।
अंतर राखे जो मिलै तासों मिलै बलाय ॥ ५२२ ॥

आशा

आसा जीवै जग मरै लोग मरै मन जाहि ।
धन संचै सो भी मरै उबरै सो धन खाहि ॥ ५२३ ॥

आसन मारे का भया मुई न मन की आस।
ज्यों तेली के बैल को घर ही कोस पचास ॥ ५२४ ॥
आसा एक जो नाम की दूजी आस निरास।
पानी माहीं घर करै सो भी मरै पियास ॥ ५२५ ॥
कबिरा जोगी जगत गुरु तजै जगत की आस।
जो जग की आसा करै जगत गुरू वह दास ॥ ५२६ ॥
आसा का ईंधन करूँ मनसा करूँ भभूत।
जोगी फिरि फेरी करूँ यों बनि आवै सूत ॥ ५२७ ॥

तृष्णा

कबिरा सो धन संचिए जो आगे को होय।
सीस चढ़ाए गाठरी जात न देखा कोय ॥ ५२८ ॥
की त्रिस्ना है डाकिनी की जीवन का काल।
और और निस दिन चहै जीवन करै बिहाल ॥ ५२९ ॥

निद्रा

कबिरा सोया क्या करै उठि न भजै भगवान।
जम जब धर लै जायँगे पड़ा रहेगा म्यान ॥ ५३० ॥
कबिरा सोया क्या करै जागन की करु चौंप।
ये दम हीरा लाल है गिनि गिनि गुरु को सौंप ॥ ५३१ ॥
नींद निसानी मीच की उट्ठ कबीरा जाग।
और रसायन छाँड़ि कै नाम रसायन लाग ॥ ५३२ ॥

पिउ पिउ कहि कहि कूकिए ना सोइय असरार ।
रात दिवस के कूकते कबहुँक लगै पुकार ॥ ५३३ ॥
सोता साध जगाइए करै नाम का जाप ।
यह तीनों सोते भले साकत सिंह औ साँप ॥ ५३४ ॥
जागन में सोवन करै सोवन में लौ लाय ।
सुरति डोरि लागी रहै तार टूटि नहिं जाय ॥ ५३५ ॥

निंदा

निंदक नियरे राखिए आँगन कुटी छवाय ।
बिन पानी साबुन बिना निर्मल करै सुभाय ॥ ५३६ ॥
तिनका कबहुँ न निंदिए जो पाँवन तर होय ।
कबहूँ उड़ि आँखिन परै पीर घनेरी होय ॥ ५३७ ॥
सातो सायर मैं फिरा जंबुदीप दै पीठ ।
निंद पराई ना करै सो कोइ बिरला दीठ ॥ ५३८ ॥
दोष पराया देखि करि चले हसंत हसंत ।
अपने याद न आवई जाको आदि न अंत ॥ ५३९ ॥
निंदक एकहु मति मिलै पापी मिलौ हजार ।
इक निंदक के सीस पर कोटि पाप को भार ॥ ५४० ॥

माया

माया छाया एक सी बिरला जानै कोय ।
भगताँ के पीछै फिरै सनमुख भागै सोय ॥ ५४१ ॥

माया तो ठगनी भई ठगत फिरै सब देस ।
जा ठग या ठगनी ठगी ता ठग को आदेस ।। ५४२ ।।
कबिरा माया रूखड़ी दो फल की दातार ।
खोवत खरचत मुक्ति भे संचत नरक दुआर ।। ५४३ ।।
माया तो है राम की मोदी सब संसार ।
जाको चिट्ठी ऊतरी सोई खरचनहार ।। ५४४ ।।
माया संचै संग्रहै वह दिन जानै नाहिं ।
सहस बरस का सब करै मरै महूरत माहिं ।। ५४५ ।।
कबिरा माया मोहनी मोहे जान सुजान ।
भागे हूँ छूटै नहीं भरि भरि मारै बान ।। ५४६ ।।
माया के झक जग जरै कनक कामिनी लागि ।
कह कबीर कस बाँचिहै रुई लपेटी आगि ।। ५४७ ।।
मैं जानूँ हरि से मिलूँ मो मन मोटी आस ।
हरि बिच डारै अंतरा माया बड़ी पिचास ।। ५४८ ।।
आँधी आई ज्ञान की ढही भरम की भीति ।
माया टाटी उड़ि गई लगी नाम से प्रीति ।। ५४९ ।।
मीठा सब कोई खात है विष ह्वै लागै धाय ।
नीब न कोई पीवसी सर्व रोग मिट जाय ।। ५५० ।।
माया तरवर त्रिबिध का साख विषय संताप ।
सीतलता सपने नहीं फल फीका तन ताप ।। ५५१ ।।
जिनको साँईं रँग दिया कभी न होइ कुरंग ।
दिन दिन बानी आगरी चढ़ै सवाया रंग ।। ५५२ ।।

माया दीपक नर पतँग भ्रमि भ्रमि माहिं परंत ।
कोइ एक गुरु ज्ञान तें उबरे साधू संत ॥ ५५३ ॥

कनक और कामिनी

चलो चलो सब कोइ कहै पहुँचे बिरला कोय ।
एक कनक और कामिनी दुरगम घाटी दोय ॥ ५५४ ॥
नारी की झाँई परत अंधा होत भुजंग ।
कबिरा तिनकी कौन गति नित नारी को संग ॥ ५५५ ॥
पर नारी पैनी छुरी मति कोइ लावो अंग ।
रावन के दस सिर गए पर नारी के संग ॥ ५५६ ॥
पर नारी पैनी छुरी बिरला बाँचै कोय ।
ना वहि पेट सँचारिए सर्व सोन की होय ॥ ५५७ ॥
दीपक सुंदर देखि कै जरि जरि मरै पतंग ।
बढ़ी लहर जो विषय की जरत न मोड़ै अंग ॥ ५५८ ॥
साँप बीछि को मंत्र है माहुर झारे जात ।
बिकट नारि पाले परी काटि करेजा खात ॥ ५५९ ॥
कनक कामिनी देखि कै तू मति भूल सुरंग ।
बिछुरन मिलन दुहेलरा केंचुकि तजै भुजंग ॥ ५६० ॥

मादक द्रव्य

मद तो बहुतक भाँति का ताहि न जानै कोय ।
तन-मद मन-मद जाति-मद माया-मद सब लोय ॥ ५६१ ॥

बिद्या-मद और गुनहुँ मद राज-मद्द उनमद्द ।
इतने मद को रद्द करै तब पावै अनहद्द ।। ५६२ ।।
कबिरा माता नाम का मद मतवाला नाहिं ।
नाम पियाला जो पियै सो मतवाला नाहिं ।। ५६३ ।।

शील

सील छिमा जब ऊपजै अलख दृष्टि तब होय ।
बिना सील पहुँचै नहीं लाख कथै जो कोय ।। ५६४ ।।
सीलवंत सब तें बड़ा सर्व रतन की खानि ।
तीन लोक की संपदा रही सील में आनि ।। ५६५ ।।
ज्ञानी ध्यानी संजमी दाता सूर अनेक ।
जपिया तपिया बहुत हैं सीलवंत कोइ एक ।। ५६६ ।।
सुख का सागर सील है कोइ न पावै थाह ।
सब्द बिना साधू नहीं द्रव्य बिना नहीं साह ।। ५६७ ।।
घायल ऊपर घाव लै टोटे त्यागी सोय ।
भर जोबन में सीलवँत बिरला होय तो होय ।। ५६८ ।।

क्षमा

छिमा बड़न को चाहिए छोटन को उत्पात ।
कहा बिष्णु को घटि गयो जो भृगु मारी लात ।। ५६९ ।।
जहाँ दया तहँ धर्म्म है जहाँ लोभ तहँ पाप ।
जहाँ क्रोध तहँ काल है जहाँ छिमा तहँ आप ।। ५७० ।।

करगस सम दुर्जन वचन रहै संत जन टारि ।
बिजुली परै समुद्र में काह सकैगी जारि ॥ ५७१ ॥
खोद खाद धरती सहै काट कूट वनराय ।
कुटिल वचन साधू सहै और से सहा न जाय ॥ ५७२ ॥

उदारता

कबिरा गुरु के मिलन की बात सुनी हम दोय ।
कै साहेब का नाम लै कै कर ऊँचा होय ॥ ५७३ ॥
ऋतु बसंत जाचक भया हरषि दिया द्रुम पात ।
तातें नव पल्लव भया दिया दूर नहिं जात ॥ ५७४ ॥
जो जल बाढ़ै नाव में घर में बाढ़ै दाम ।
दोऊ हाथ उलीचिए यहि सज्जन कौ काम ॥ ५७५ ॥
हाड़ बड़ा हरि भजन कर द्रव्य बड़ा कछु देय ।
अकल बड़ो उपकार कर जीवन का फल येह ॥ ५७६ ॥
देह धरे का गुन यही देहु देहु कछु देहु ।
बहुरि न देही पाइए अब की देहु सो देहु ॥ ५७७ ॥
सतही में सत बाँटई रोटी में तें टूक ।
कह कबीर ता दास को कबहुँ न आवैं चूक ॥ ५७८ ॥

संतोष

चाह गई चिंता मिटी मनुवाँ बेपरवाह ।
जिनको कछू न चाहिए सोई साहंसाह ॥ ५७९ ॥

माँगन गए सो मरि रहे मरे सो माँगन जाहिं ।
तिनसे पहले वे मरे होत करत जो नाहिं ॥ ५८० ॥
गोधन गजधन बाजधन और रतनधन खान ।
जब आवै संतोष धन सब धन धूरि समान ॥ ५८१ ॥
मरि जाऊँ माँगूँ नहीं अपने तन के काज ।
परमारथ के कारने मोहिं न आवै लाज ॥ ५८२ ॥

धैर्य

धीरे धीरे रे मना धीरे सब कुछ होय ।
माली सींचै सौ घड़ा ऋतु आए फल होय ॥ ५८३ ॥
कबिरा धीरज के धरे हाथी मन भर खाय ।
टूक एक के कारने स्वान घरै घर जाय ॥ ५८४ ॥
कबिरा भँवर में बैठि कै भौचक मना न जोय ।
डूबन का भय छाँड़ि दे करता करे सो होय ॥ ५८५ ॥
मैं मेरी सब जायगी तब आवैगी और ।
जब यह निश्चल होयगा तब पावैगा ठौर ॥ ५८६ ॥

दीनता

दीन गरीबी बंदगी साधन सों आधीन ।
ताके संग मैं यों रहूँ ज्यों पानी सँग मीन ॥ ५८७ ॥
दीन लखे मुख सबन को दीनहिं लखै न कोय ।
भली बिचारी दीनता नरहुँ देवता होय ॥ ५८८ ॥

दीन गरीबी बंदगी सब से आदर भाव ।
कह कबीर तेई बड़ा जामें बड़ा सुभाव ॥ ५८९ ॥
कबिरा नवै सो आप को पर को नवै न कोय ।
घालि तराजू तौलिए नवै सो भारी होय ॥ ५९० ॥
ऊँचे पानी ना टिकै नीचे ही ठहराय ।
नीचा होय सो भरि पिवै ऊँचा प्यासा जाय ॥ ५९१ ॥
नीचे नीचे सब तरे जेते बहुत अधीन ।
चढ़ बोहित अभिमान की बूड़े ऊँच कुलीन ॥ ५९२ ॥
सब तें लघुताई भली लघुता ते सब होय ।
जस दुतिया को चंद्रमा सीस नवै सब कोय ॥ ५९३ ॥
बुरा जो देखन मैं चला बुरा न मिलिया कोय ।
जो दिल खोजों आपना मुझसा बुरा न होय ॥ ५९४ ॥
मेरा मुझमें कुछ नहीं जो कछु है सो तोर ।
तेरा तुझको सौंपते क्या लागैगा मोर ॥ ५९५ ॥
लघुता ते प्रभुता मिलै प्रभुता ते प्रभु दूरि ।
चींटी लै शक्कर चली हाथी के सिर धूरि ॥ ५९६ ॥

दया

दया भाव हिरदे नहीं ज्ञान कथै बेहद ।
ते नर नरकहिं जाहिंगे सुनि सुनि साखी सब्द ॥ ५९७ ॥
दया कौन पर कीजिए का पर निर्दय होय ।
साँई के सब जीवहैं कीरी कुंजर दोय ॥ ५९८ ॥

सत्यता

साँच बराबर तप नहीं झूठ बराबर पाप ।
जाके हिरदे साँच है ता हिरदे गुरु आप ॥ ५९९ ॥
साँई से साँचा रहै साँई साँच सुहाय ।
भाँवै लंबे केस रख भाँवै घोट मुँड़ाय ॥ ६०० ॥
साँचे स्राप न लागई साँचे काल न खाय ।
साँचे को साँचा मिलै साँचे माहिं समाय ॥ ६०१ ॥
साँच बिना सुमिरन नहीं भय बिन भक्ति न होय ।
पारस में परदा रहै कंचन केहि बिधि होय ॥ ६०२ ॥
प्रेम प्रीति का चोलना पहिरि कबीरा नाच ।
तन मन ता पर वारहूँ जो कोइ बोलै साँच ॥ ६०३ ॥
साँचे कोइ न पतीजई झूठे जग पतियाय ।
गली गली गोरस फिरै मदिरा बैठि बिकाय ॥ ६०४ ॥
साँच कहूँ तो मारि हैं झूठे जग पतियाय ।
ये जग काली कूकरी जो छेड़ै ता खाय ॥ ६०५ ॥
सब ते साँचा है भला जो साँचा दिल होय ।
साँच बिना सुख नाहिना कोटि करै जो कोय ॥ ६०६ ॥
साँचे सौदा कीजिए अपने मन में जानि ।
साँचे हीरा पाइए झूठे मूरौ हानि ॥ ६०७ ॥

वाचनिक ज्ञान

ज्यों अँधरे को हाथिया सब काहू को ज्ञान ।
अपनी अपनी कहत हैं काको धरिए ध्यान ॥ ६०८ ॥
ज्ञानी से कहिए कहा कहत कबीर लजाय ।
अंधे आगे नाचते कला अकारथ जाय ॥ ६०९ ॥
ज्ञानी भूले ज्ञान कथि निकट रह्यो निज रूप ।
बाहर खोजैं बापुरे भीतर वस्तु अनूप ॥ ६१० ॥
भीतर तो भेद्यो नहीं बाहर कथै अनेक ।
जो पै भीतर लखि परै भीतर बाहर एक ॥ ६११ ॥

विचार

पानी केरा पूतला राखा पवन सँचार ।
नाना बानी बोलता जोति धरी करतार ॥ ६१२ ॥
एक शब्द में सब कहा सब ही अर्थ विचार ।
भजिए निर्गुन नाम को तजिए विषय बिकार ॥ ६१३ ॥
सहज तराजू आन करि सब रस देखा तोल ।
सब रस माहीं जीभ रस जो कोइ जानै बोल ॥ ६१४ ॥
आचारी सब जग मिला मिला विचारि न कोइ ।
कोटि अचारी वारिए एक विचारि जो होय ॥ ६१५ ॥
मन दीया कहिं और ही तन साधन के संग ।
कह कबीर कोरी गजी कैसे लागै रंग ॥ ६१६ ॥

लोग भरोसे कौन के बैठि रहे अरगाय।
ऐसे जियरै जम लुटै मेढ़ैं लुटैं कसाय ॥ ६१७ ॥
बोली एक अमोल है जो कोइ बोलै जानि।
हिए तराजू तौलि के तब मुख बाहर आनि ॥ ६१८ ॥

विवेक

फूटी आँखि बिबेक की लखै न संत असंत।
जाके सँग दस बीस हैं ताका नाम महंत ॥ ६१९ ॥
साधू मेरे सब बड़े अपनी अपनी ठौर।
सब्द बिबेकी पारखी सो माथे के मौर ॥ ६२० ॥
समझा समझा एक है अन समझा सब एक।
समझा कोई जानिए जाके हृदय बिबेक ॥ ६२१ ॥
भँवर जाल बगु जाल है बूड़े जीव अनेक।
कह कबीर ते बाँचिहैं जिनके हृदय बिबेक ॥ ६२२ ॥
जहँ गाहक तहँ हौं नहीं हौं जहँ गाहक नाहिं।
बिन बिबेक भटकत फिरै पकरि शब्द की छाँहि ॥ ६२३ ॥

बुद्धि और कुबुद्धि

अकिल अरस सों उतरी बिधना दीन्हीं बाँटि। ✓
एक अभागा रह गया एकन लीन्हीं छाँटि ॥ ६२४ ॥
बिना वसीले चाकरी बिना बुद्धि की देह।
बिना ज्ञान का जोगना फिरै लगाए खेह ॥ ६२५ ॥

समझा का घर और है अनसमझा का और।
जा घर में साहब बसैं बिरला जानै ठौर ॥ ६२६ ॥
मूरख को समझावते ज्ञात गाँठि को जाय।
कोइला होय न ऊजरो नौ मन साबुन लाय ॥ ६२७ ॥
मूरख सों क्या बोलिए सठ सों कहा बसाय।
पाहन में क्या मारिए चोखा नीर नसाय ॥ ६२८ ॥
पल में परलय बीतिया लोगन लगी तमारि।
आगिल सोच निवारि कै पाछे करो गोहारि ॥ ६२९ ॥

आहार

खट्टा मीठा चरपरा जिह्वा सब रस लेय।
चोरों कुतिया मिलि गई पहरा किस का देय ॥ ६३० ॥
खट्टा मीठा देखि कै रसना मेलै नीर।
जब लग मन पाको नहीं काँचो निपट कथीर ॥ ६३१ ॥
बकरी पाती खात है ताकी काढ़ी खाल।
जो बकरी को खात है ताको कौन हवाल ॥ ६३२ ॥
दिन को राजा रहत है रात हनत है गाय।
यह तो खून वह बंदगी कहु क्यों खुसी खुदाय ॥ ६३३ ॥
खुस खाना है खीचरी माहिं परा टुक नौन।
माँस पराया खाय कर गला कटावै कौन ॥ ६३४ ॥
रूखा सूखा खाइ कै ठंढा पानी पीव।
देखि बिरानी चूपड़ी मत ललचावै जीव ॥ ६३५ ॥

कबिरा साँई मुज्झ को रूखी रोटी देय।
चुपड़ो माँगत मैं डरूँ रूखी छीनि न लेय।। ६३६ ।।
आधी अरु रूखी भली सारी सों संताप।
जो चाहैगा चूपड़ी बहुत करैगा पाप।। ६३७ ।।

संसारोत्पत्ति

प्रथमै समरथ आप रह दूजा रहा न कोय।
दूजा केहि विधि ऊपजा पूछत हौं गुरु सोय।। ६३८ ।।
तब सतगुरु मुख बोलिया सुकृत सुनो सुजान।
आदि अंत को पारिचै तोसों कहौं बखान।। ६३९ ।।
प्रथम सुरति समरथ कियो घट में सहज उचार।
ताते जामन दीनिया सात करी विस्तार।। ६४० ।।
दूजे घट इच्छा भई चित मनसा तो कीन्ह।
सात रूप निरमाइया अविगत काहु न चीन्ह।। ६४१ ।।
तब समरथ के श्रवण ते मूल सुरति भै सार।
शब्द कला ताते भई पाँच ब्रह्म अनुहार।। ६४२ ।।
पाँचौं पाँचौं अंड धरि एक एक माँ कीन्ह।
दुइ इच्छा तहँ गुप्त हैं सो सुकृत चित दीन्ह।। ६४३ ।।
योग मया यकु कारने ऊजो अच्छर कीन्ह।
या अवगति समरथ करी ताहि गुप्त करि दीन्ह।। ६४४ ।।
श्वासा सोहं ऊपजे कीन अमी बंधान।
आठ अंश निरमाइया चीन्हों संत सुजान।। ६४५ ।।

तेज अंड आचिंत्य का दीन्हों सकल पसार।
अंड शिखा पर बैठि कै अधर-दीप निरधार ॥ ६४६ ॥
ते अचिंत्य के प्रेम ते उपजे अक्षर सार।
चारि अंश निरमाइया चारि वेद बिस्तार ॥ ६४७ ॥
तब अक्षर का दीनिया नींद मोह अलसान।
वे समरथ अविगत करी मर्म कोइ नहिं जान ॥ ६४८ ॥
जब अक्षर के नींद गै दबी सुरति निरबान।
श्याम बरण इक अंड है सो जल में उतरान ॥ ६४९ ॥
अक्षर घट में ऊपजे व्याकुल संशय शूल।
किन अंडा निरमाइया कहाँ अंड का मूल ॥ ६५० ॥
तेही अंड के मुक्ख पर लगी शब्द की छाप।
अक्षर दृष्टि से फूटिया दश द्वारे कढ़ि बाप ॥ ६५१ ॥
तेहि तें ज्योति निरंजनौ प्रकटे रूप-निधान।
काल अपर बल वीर भा तीनि लोक परधान ॥ ६५२ ॥
ताते तीनों देव भे ब्रह्मा विष्णु महेश।
चारि खानि तिन सिरजिया माया के उपदेश ॥ ६५३ ॥
लख चौरासी धार माँ तहाँ जीव दिय वास।
चौदह जम रखवारिया चारि वेद विश्वास ॥ ६५४ ॥
आपु आपु सुख सबर मैं एक अंड के माहिं।
उत्पति परलय दुःख सुख फिरि आवहिं फिरि जाहिं ॥ ६५५ ॥
सात सुरति सब मूल है प्रलयहुँ इनहीं माहिं।
इनहीं में से ऊपजे इनहीं माँह समाहिं ॥ ६५६ ॥

सोइ ख्याल समरत्थ कर रहे सो अछपछ पाइ।
सोइ संधि ले आइया सोवत जगहिं जगाइ॥ ६५७॥
सात सुरति के बाहिरे सोरह संख के पार।
तहँ समरथ को बैठका हंसन केर अधार॥ ६५८॥

मन

मन के मते न चालिए मन के मते अनेक।
जो मन पर असवार है सो साधू कोइ एक॥ ६५९॥
मन-मुरीद संसार है गुरु-मुरीद कोइ साध।
जो माने गुरु-बचन को ता का मता अगाध॥ ६६०॥
मन को मारूँ पटकि के टूक टूक होइ जाय।
बिष की क्यारी बोइ के लुनता क्यों पछिताय॥ ६६१॥
मन पाँचों के बसि परा मन के बस नहिं पाँच।
जित देखूँ तित दौ लगी जित भागूँ तित आँच॥ ६६२॥
कबिरा बैरी सबल हैं एक जीव रिपु पाँच।
अपने अपने स्वाद को बहुत नचावैं नाच॥ ६६३॥
कबिरा मन तो एक है भावै तहाँ लगाय।
भावैं गुरु की भक्ति कर भावैं विषय कमाय॥ ६६४॥
मन के मारे बन गए बन तजि बस्ती माहिं।
कह कबीर क्या कीजिए यह मन ठहरै नाहिं॥ ६६५॥
जेती लहर समुद्र की तेती मन की दौर।
सहजै हीरा नीपजै जो मन आवे ठौर॥ ६६६॥

पहले यह मन काग था करता जीवन-घात ।
अब तो मन हंसा भया मोती चुँगि चुँगि खात ।। ६६७ ।।
कबिरा मन पर्वत हता अब मैं पाया कानि ।
टाँकी लागी शब्द की निकसी कंचन खानि ।। ६६८ ।।
अगम पंथ मन थिर करै बुद्धि करै परवेस ।
तन मन सबही छाँड़ि के तब पहुँचै वा देस ।। ६६९ ।।
मन मोटा मन पातरा मन पानी मन लाय ।
मन की जैसी ऊपजै तैसी ही ह्वै जाय ।। ६७० ।।
मन के बहुतक रंग हैं छिन छिन बदलैं सोय ।
एकै रंग में जो रहै ऐसा बिरला कोय ।। ६७१ ।।
मनुवाँ तो पंछी भया उड़ि के चला अकास ।
ऊपर ही तें गिरि पड़ा या माया के पास ।। ६७२ ।।
अपने अपने चोर को सब कोइ डारै मार ।
मेरा चोर मुझे मिलै सरबस डारूँ वार ।। ६७३ ।।
मन कुंजर महमंत था फिरता गहिर गँभीर ।
दोहरी तेहरी चौहरी परि गइ प्रेम जँजीर ।। ६७४ ।।
हिरदे भीतर आरसी मुख देखा नहिं जाय ।
मुख तो तबहीं देखसी दिल की दुविधा जाय ।। ६७५ ।।
पानी हूँ तें पातला धूआँ हूँ तें झीन ।
पवनहुँ तें अति ऊतला दोस्त कबीरा कीन ।। ६७६ ।।
मन मनसा को मार करि नन्हा करि के पीस ।
तब सुख पावे सुंदरी पदुम झलक्के सीस ।। ६७७ ।।

मन मनसा को मारि धे घटही माहीं घेर।
जबही चालै पीठ दै आँकुस दै दै फेर॥ ६७८॥
कबिरा मनहि गयंद है आँकुस दै दै राखु।
बिष की बेली परिहरी अमृत का फल चाखु॥ ६७९॥
कुंभें बाँधा जल रहै जल बिनु कुंभ न होय।
ज्ञाने बाँधा मन रहै मन बिनु ज्ञान न होय॥ ६८०॥
मन माया तो एक है माया मनहिं समाय।
तीन लोक संसय परा काहि कहूँ समुझाय॥ ६८१॥
मन सायर मनसा लहरि बूड़े बहे अनेक।
कह कबीर ते बाचिहैं जाके हृदय बिबेक॥ ६८२॥
नैनन आगे मन बसै रल पिल करै जो दौर।
तीन लोक मन भूप है मन पूजा सब ठौर॥ ६८३॥
तन बोहित मन काग है लख जोजन उड़ि जाय।
कबहीं दरिया अगम बहि कबहीं गगन समाय॥ ६८४॥
मन के हारे हार है मन के जीते जीत।
कह कबीर पिउ पाइए मनहीं की परतीत॥ ६८५॥
तीनि लोक टींड़ी भई उड़िया मन के साथ।
हरिजन हरि जाने बिना परे काल के हाथ॥ ६८६॥
बाजीगर का बंदरा ऐसा जिउ मन साथ।
नाना नाच नचाय कै राचै अपने हाथ॥ ६८७॥
मन करि सुर मुनि जँहड़िया मन के लच्च दुवार।
ये मन चंचल चोरई ई मन शुद्ध ठगार॥ ६८८॥

मन मतंग गैयर हनै मनसा भई शचान ।
जंत्र मंत्र मानै नहीं लागी उड़ि उड़ि खान ।। ६८९ ।।
मन गयंद मानै नहीं चलै सुरति कै साथ ।
दीन महावत क्या करै अंकुश नाहीं हाथ ।। ६९० ।।
देस विदेसन हौं फिरा मनहीं भरा सुकाल ।
जाको ढूँढ़न हौं फिरौं ताको परा दुकाल ।। ६९१ ।।
मन स्वारथ आपहिं रसिक विषय लहरि फहराय ।
मन के चलतै तन चलत ताते सरबसु जाय ।। ६९२ ।।
यह मन तो शीतल भया जब उपजा ब्रह्मज्ञान ।
जेहि बैसंदर जग जरै सो पुनि उदक समान ।। ६९३ ।।

विविध

सुपने में साँईं मिले सोवत लिया जगाय ।
आँखि न खोलूँ डरपता मत सुपना ह्वै जाय ।। ६९४ ।।
सोऊँ तो सुपने मिलूँ जागूँ तो मन माहिं ।
लोचन राते सुभ घड़ी बिसरत कबहूँ नाहिं ।। ६९५ ।।
कबिरा साथी सोइ किया दुख सुख जाहि न कोय ।
हिलि मिलि कै सँग खेलई कभी बिछोह न होय ।। ६९६ ।।
तरवर तासु बिलंबिए बारह मास फलंत ।
सीतल छाया सघन फल पंछी केल करंत ।। ६९७ ।।
तरवर सरवर संतजन चौथे बरसै मेंह ।
परमारथ के कारने चारौं धारैं देह ।। ६९८ ।।

कबिरा सोई पीर है जो जानै पर पीर ।
जो पर पीर न जानई सो काफिर बेपीर ॥ ६९९ ॥
नवन नवन बहु अंतरा नवन नवन बहु बान ।
ये तीनों बहुतै नवैं चीता चोर कमान ॥ ७०० ॥
कबिरा सीप समुद्र की खारा जल नहिं लेय ।
पानी पावै स्वाति का सोभा सागर देय ॥ ७०१ ॥
ऊँची जाति पपीहरा पिए न नीचा नीर ।
कै सुरपति को जाँचई कै दुख सहै सरीर ॥ ७०२ ॥
चातक सुतहि पढ़ावही आन नीर मत लेय ।
मम कुल यही सुभाव है स्वाति बूँद चित देय ॥ ७०३ ॥
लंबा मारग दूर घर बिकट पंथ बहु भार ।
कह कबीर कस पाइए दुर्लभ गुरु दीदार ॥ ७०४ ॥
हेरत हेरत हे सखी हेरत गया हेराय ।
बुंद समानी समुँद में सो कित हेरी जाय ॥ ७०५
आदि होत सब आप में सकल होत ता माहिं ।
ज्यों तरवर के बीज में डार पात फल छाँहिं ॥ ७०६ ॥
कबिरा मैं तो तब डरौं जो मुझ ही में होय ।
मीच बुढ़ापा आपदा सब काहू में सोय ॥ ७०७ ॥
सात दीप नौ खंड में तीन लोक ब्रह्मंड ।
कह कबीर सबको लगै देंह धरे का दंड ॥ ७०८ ॥
देंह धरे का दंड है सब काहू को होय ।
ज्ञानी भुगतै ज्ञान करि मूरख भुगतै रोय ॥ ७०९ ॥

اے شمع تیری عمر طبیعی ہے ایک رات
ہنس کر گزار یا اسے رو کر گزار دے ۔۔ ذوق ۔۔

देखन ही की बात है कहने की कछु नाहिं ।
आदि अंत को मिलि रहा हरिजन हरि की माहिं ॥ ७१० ॥
सबै हमारे एक हैं जो सुमिरै सत नाम ।
वस्तु लही पहिचानि कै बासना सों क्या काम ॥ ७११ ॥
जूआ चोरी मुखबिरी ब्याज घूस पर नार ।
जो चाहै दीदार को एती बस्तु निवार ॥ ७१२ ॥
राज-दुवारे साधुजन तीनि वस्तु को जाय ।
कै मीठा कै मान को कै माया की चाय ॥ ७१३ ॥
देखन को सब कोइ भला जैसे सीत का कोट ।
देखत ही ढहि जायगा बाँधि सकै नहिं पोट ॥ ७१४ ॥
नाचै गावै पद कहै नाहीं गुरु सों हेत ।
कह कबीर क्यों नीपजै बीज बिहूनी खेत ॥ ७१५ ॥
ब्रह्महिं तें जग ऊपजा कहत सयाने लोग ।
ताहि ब्रह्म के त्याग बिनु जगत न त्यागन जोग ॥ ७१६ ॥
ब्रह्म जगत का बीज है जो नहिं ताको त्याग ।
जगत ब्रह्म में लीन है कहहु कौन बैराग ॥ ७१७ ॥
नेत नेत जेहिं बेद कहि जहाँ न मन ठहराय ।
मन बानी की गम नहीं ब्रह्म कहा किन ताय ॥ ७१८ ॥
एक कर्म है बोवना उपजै बीज बहूत ।
एक कर्म है भूँजना उदय न अंकुर सूत ॥ ७१९ ॥
चाँद सुरज निज किरन को त्यागि कवन बिधि कीन ।
जाकी किरनैं ताहि में उपजि होत पुनि लीन ॥ ७२० ॥

गुरू झरोखे बैठि के सब का मुजरा लेइ।
जैसी जाकी चाकरी तैसा ताको देइ॥ ७२१॥
हंसा बक एक रंग लखि चरैं एक ही ताल।
छीर नीर ते जानिए बक उघरै तेहि काल॥ ७२२॥
बिन देखे वह देस की बातैं कहै सो कूर।
आपै खारी खात है बेचत फिरत कपूर॥ ७२३॥
मलयागिरि के बास में बृच्छ रहा सब गोय।
कहिबे को चंदन भया मलयागिरि ना होय॥ ७२४॥
काटे आँब न मौरिया फाटे जुरै न कान।
गोरख पद परसे बिना कहौ कौन की सान॥ ७२५॥
आगे सीढ़ी साँकरी पाछे चकनाचूर।
परदा तर की सुंदरी रही धका दै दूर॥ ७२६॥
बेरा बाँधि न सर्प को भवसागर के माहिं।
छोड़ै तो बूड़त अहै गहै तो डसिहैं वाहि॥ ७२७॥
कर खोरा खोवा भरा मग जोहत दिन जाय।
कबिरा उतरा चित्त सों छाँछ दियो नहिं जाय॥ ७२८॥
विष के बिरवा घर किया रहा सर्प लपटाय।
ताते जियरै डर भया जागत रैनि बिहाय॥ ७२९॥
सेमर केरा सूचना सिहुले बैठा जाय।
चोंच चहोरै सिर धुनै यह वाही को भाय॥ ७३०॥
सेमर सुवना बेगि तजु घनी बिगुर्चन पाँख।
ऐसा सेमर जो सेवै हृदया नाहीं आँख॥ ७३१॥

केते दिन ऐसे गए अनरूचे को नेह ।
बोए उसर न ऊपजै जो घन बरसैं मेह ॥ ७३२ ॥
प्रकट कहौं तौ मारिया परदा लखै न कोय ।
सहना छपा पयार तर को कहि बैरी होय ॥ ७३३ ॥
जौ लौं तारा जगमगै तौ लौं उगै न सूर ।
तौ लौं जिय जग कर्मबस जौ लौं ज्ञान न पूर ॥ ७३४ ॥
करु बहियाँ बल आपनी छाँड़ बिरानी आस ।
जाके आँगन नदी है सो कस मरै पिआस ॥ ७३५ ॥
हे गुणवंती बेलरी तव गुण बरणि न जाय ।
जर काटे ते हरिअरी सींचे ते कुँभिलाय ॥ ७३६ ॥
बेलि कुढंगी फल बुरो फुलवा कुबुधि बसाय ।
मूल बिनासी तूमरी सरोपात करुआय ॥ ७३७ ॥
हम जान्यो कुल हंस हो ताते कीन्हो संग ।
जो जनत्यों बक बरन हौ छुवन न देत्यों अंग ॥ ७३८ ॥
गुणिया तो गुण को गहै निर्गुण गुणहिं घिनाय ।
बैलहिं दीजै जायफर क्या बूझै क्या खाय ॥ ७३९ ॥
खेत भला बीजौ भला बोइए मूठी फेर ।
काहे बिरवा रूखरा या गुण खेतै केर ॥ ७४० ॥
जंत्र बजावत हौं सुना टूटि गए सब तार ।
जंत्र बिचारा क्या करै गयो बजावनहार ॥ ७४१ ॥
औरन के समुझावते मुख में परिगो रेत ।
रासि बिरानी राख ते खाए घर को खेत ॥ ७४२ ॥

तकत तकावत तकि रहे सके न बेझा मारि ।
सबै तीर खाली परे चले कमानी डारि ॥ ७४३ ॥
अपनी कह मेरी सुनै सुनि मिलि एकै होय ।
मेरे देखत जग गया ऐसा मिला न कोय ॥ ७४४ ॥
देस देस हम बागिया ग्राम ग्राम की खोरि ।
ऐसा जियरा ना मिला जो ले फटकि पछोरि ॥ ७४५ ॥
वस्तु अहै गाहक नहीं बस्तु सो गरुवा मोल ।
बिना दाम को मानवा फिरै सो डामाडोल ॥ ७४६ ॥
सिंह अकेला बन रमै पलक पलक के दौर ।
जैसा बन है आपना तैसा बन है और ॥ ७४७ ॥
बैठा है घर भीतरै बैठा है साचेत ।
जब जैसी गति चाहता तब तैसी मति देत ॥ ७४८ ॥
बना बनाया मानवा बिना बुद्धि बेतूल ।
कहा लाल लै कीजिए बिना बास का फूल ॥ ७४९ ॥
आगे आगे दव बरै पीछे हरियर होइ ।
बलिहारी वा वृक्ष की जर काटे फल होइ ॥ ७५० ॥
सरहर पेड़ अगाध फल अरु बैठा है पूर ।
बहुत लाल पचि पचि मरे फल मीठा अरु दूर ॥ ७५१ ॥
सब ही तरु तर जाय के सब फल लीन्हें चीखि ।
फिरि फिरि माँगत कबिर है दर्शन ही की भीखि ॥ ७५२ ॥
कंचन भो पारस परसि बहुरि न लोहा होइ ।
चंदन बास पलास बिधि ढाक कहै नहिं कोइ ॥ ७५३ ॥

भक्ति भक्ति सब कोइ कहै भक्ति न आई काज ।
जहँ को किया भरोसवा तहँ ते आई गाज ॥ ७५४ ॥
सुख को सागर मैं रचा दुख दुख मेलो पाव ।
थिथि ना पकरै आपना चलै रंक औ राव ॥ ७५५ ॥
लिखा-पढ़ी में परे सब यह गुण तजै न कोइ ।
सबै परे भ्रम-जाल में डारा यह जिय खोइ ॥ ७५६ ॥
जैसी लागी और की तैसी निबहै थोरि ।
कौड़ी कौड़ी जोरि कै पूञ्यो लच्छ करोरि ॥ ७५७ ॥
नव मन दूध बटोरि कै टिपका किया विनाश ।
दूध फाटि काँजी हुआ भया घीव का नाश ॥ ७५८ ॥
मानुष तेरा गुण बड़ा माँस न आवै काज ।
हाड़ न होते आभरण त्वचा न बाजन बाज ॥ ७५९ ॥
प्रथमै एक जो हो किया भया सो बारह बाट ।
कसत कसौटी ना टिका पीतर भया निराट ॥ ७६० ॥
फुलवा धार न लै सकै कहै सखिन सों रोइ ।
ज्यों ज्यों भीजै कामरी त्यों त्यों भारी होइ ॥ ७६१ ॥
पद गावै लवलीन ह्वै कटै न संसय फाँस ।
सबै पछोरै थोथरा एक बिना बिश्वास ॥ ७६२ ॥
घर कबीर का शिखर पर जहाँ सिलिहिली गैल ।
पायँ न टिकै पिपीलका खलक न लादे बैल ॥ ७६३ ॥
अपने अपने शीश की सबन लीन है मानि ।
हरि की बात दुरंतरी परी न काहू जानि ॥ ७६४ ॥

घाट भुलाना बाट बिन भेष भुलाना कानि।
जाकी माँड़ी जगद माँ सो न परा पहिचानि।। ७६५।।
ऊपर की दोऊ गईं हिय की गई हेराय।
कह कबीर चारिऊ गईं तासों कहा बसाय।। ७६६।।
यती सती सब खोजहीं मनै न मानै हारि।
बड़ बड़ बीर बचै नहीं कहहि कबीर पुकारि।। ७६७।।
एकै साधे सब सधै सब साधे सब जाय।
जो तू सेवै मूल को फूलै फलै अघाय।। ७६८।।
साँई केरे बहुत गुन लिखेजो हिरदे माहिं।
पिऊँ न पानी डरपता मत वै धोए जाहिं।। ७६९।।
यार बुलावै भाव से मो पै गया न जाय।
धन मैली पिउ ऊजला लागि न सक्कूँ पाँय।। ७७०।।
पपिहा पन को ना तजै तजै तो तन बेकाज।
तन छूटे तो कछु नहीं पन छूटे है लाज।। ७७१।।
प्रेम प्रीति से जो मिलैं तासों मिलिए धाय।
अंतर राखै जो मिलैं तासों मिलैं बलाय।। ७७२।।
खुलि खेलो संसार में बाँधि न सक्कै कोय।
घाट जगाती क्या करै जो सिर बोझ न होय।। ७७३।।
सब काहू का लीजिए साँचा शब्द निहार।
पच्छपात ना कीजिए कहै कबीर बिचार।। ७७४।।
तन सँदूक मन रतन है चुपके दे हठ ताल।
गाहक बिना न खोलिए पूँजी सब्द रसाल।। ७७५।।

जब दिल मिला दयाल सों तब कछु अंतर नाहिं ।
पाला गलि पानी भया यों हरिजन हरि माहिं ।। ७७६ ।।
मो में इतनी सक्ति कहँ गाओं गला पसार ।
बंदे को इतनी घनी पड़ा रहै दरबार ।। ७७७ ।।
रचनहार को चीन्हि ले खाने को क्यों रोय ।
दिल-मंदिर में पैठ करि तानि पिछौरा सोय ।। ७७८ ।।
सब से भली मधूकरी भाँति भाँति का नाज ।
दावा काहू का नहीं बिना बिलायत राज ।। ७७९ ।।
भौसागर जल बिष भरा मन नहिं बाँधै धीर ।
शब्द-सनेही पिउ मिला उतरा पार कबीर ।। ७८० ।।
नाम रतन धन संत पहँ खान खुली घट माहिं ।
सेंत मेत हौं देत हौं गाहक कोई नाहिं ।। ७८१ ।।

द्वितीय खंड

शब्दावली

कर्ता-निरूपण

सब का साखी मेरा साईं । ब्रह्मा विष्णु रुद्र ईश्वर लौं औ अव्याकृत नाहीं । सुमति पचीस पाँच से कर ले यह सब जग भरमाया । अकार उकार मकार मात्रा इनके परे बताया । जागत सुपन सुषोपत तुरिया इनते न्यारा होई । राजस तामस सात्विक निर्गुन इनतें आगे सोई । सुछम थूल कारन मह कारन इन मिल भोग बखाना । तेजस विस्व पराग आतमा इनमें सार न जाना । परा बसंती मधमा वैखरि चौवानी ना मानी । पाँच कोष नीचे कर देखो इनमें सार न जानी । पाँच ज्ञान औ पाँच कर्म की यह दस इंद्रो जानो । चित सोइ अंत:करण बखानों इनमें सार न मानो । कुरम सेस किरकिला धनंजय देवदत्त कहँ देखो । चौदह इंद्रो चौदह इंद्रा इनमें अलख न पेखो । तत् पद त्वं पद और असी पद बाच लच्छ पहिचाने । जहद लच्छना अजहद कहते अजहद जहद बखाने । सत्गुरु मिल सत् शब्द लखावै सार शब्द बिलगावे । कह कबीर सोई जन पूरा जो न्यारा कर गावै ॥ १ ॥

मेरी नजर में मोती आया है । कोइ कहे हलका कोइ कहे

भारी दोनों भूल भुलाया है। ब्रह्मा विष्णु महेसर थाके तिनहूँ खोज न पाया है। सेस सारदा संकर हारे पढ़ रट बहु गुन गाया है। है तिल के तिल के तिल भीतर विरले साधू पाया है। चहुँ दल कमल तिरकुटी साजे ओंकार दरसाया है। ररंकार पद सेत सुन्न मद षट्दल कँवल बताया है। पारब्रह्म महा सुन्न मँझारा सोइ निःअच्छर रहाया है। भँवर गुफा में सोहं राजै मुरली अधिक बजाया है। सत्त लोक सत पुरुख विराजै अलख अगम दोउ भाया है। पुरुख अनामी सब पर स्वामी ब्रह्मडँ पार जो गाया है। यह सब बातें देही माँही प्रतिबिंब अंड जो पाया है। प्रतिविंब पिंड ब्रहमंड है नकली असली पार बताया है। कह कबीर सतलोक सार है पुरुष नियारा पाया है॥ २॥

संतो वीजक मन परमाना। कैयक खोजी खोजि थके कोइ बिरला जन पहिचाना। चारिउ जुग औ निगम चार औ गावैं ग्रंथ अपारा। विष्णु विरंचि रुद्र ऋषि गावैं सेस न पावै पारा। कोइ निरगुन सरगुन ठहरावैं कोई जोति बतावैं। नाम धनी को सब ठहरावैं रूप को नहीं लखावैं। कोउ सूछम असथूल बतावै कोउ अच्छर निज साँचा। सतगुरु कहँ बिरले पहिचानैं भूले फिरैं असाँचा। लोभ के भक्ति सरै नहिं कामा साहब परम सयाना। अगम अगोचर धाम धनी को सबै कहैं ह्वाँ जाना। दिखै न पंथ मिलै नहिं पंथी ढूँढ़त ठौर ठिकाना। कोउ ठहरावै शून्यक कीन्हा जोति एक परमाना। कोउ कह रूप रेख नहिं वाके धरत कौन को ध्याना। रोम

रोम में परगट कर्त्ता काहे भरम भुलाना। पच्छ अपच्छ सबै पचि हारे कर्त्ता कोइ न बिचारा। कौन रूप है साँचा साहब नहिं कोई बिस्तारा। बहु परचै परतीत दृढ़ावै साँचे को बिसरावै। कलपत कोटि जनम युगवा गै दरशन कतहुँ न पावै। परम दयालु परम पुरुषोत्तम ताहि चीन्ह नर कोई। ततपर हाल निहाल करत है रीझत है निज सोई। बधिक कर्म्म करि भक्ति दृढ़ावै नाना मत को ज्ञानी। बीजक मत कोइ बिरला जाने भूलि फिरे अभिमानी। कह कबीर कर्त्ता में सब है कर्त्ता सकल समाना। भेद बिना सब भरम परे कोउ बूझै संत सुजाना ॥ ३ ॥

तेहि साहब के लागो साथा।
दुइ दुख मेटि कै होहु सनाथा ॥
दशरथ कुल अवतरि नहिं आया।
नहिं लंका के राय सताया ॥
नहिं देवकि के गर्भहिं आया।
नहीं यशोदा गोद खिलाया ॥
पृथ्वी रमन दमन नहिं करिया।
बैठि पताल नहीं बलि छलिया ॥
नहिं बलिराय सों माँड़ो रारी।
नहिं हिरनाकुस बधल पछारी ॥
रूप बराह धरणि नहिं धरिया।
छत्री मारि निछत्रि न करिया ॥

नहिं गोबर्धन कर पर धरिया ।
नहीं ग्वाल सँग बन बन फिरिया ।।
गंडक शालग्राम न शीला ।
मत्स्य कच्छ ह्वै नहिं जल हीला ।।
द्वारावती शरीर न छाँड़ा ।
लै जगनाथ पिंड नहिं गाड़ा ।।

कहहि कबीर पुकारि कै वा पंथे मत भूल ।
जेहि राखे अनुमान करि थूल नहीं असथूल ।। ४ ।।

संतौ आवै जाय सो माया ।
है प्रतिपाल काल नहिं वाके ना कहुँ गया न आया ।।
क्या मकसूद मच्छ कछ होना शंखासुर न सँघारा ।
अहै दयालु द्रोह नहिं वाके कहहु कौन को मारा ।।
वे कर्त्ता न वराह कहावैं धरणि धरैं नहिं भारा ।
ई सब काम साहेब कै नाहीं झूठ अहै संसारा ।।
खंभ फारि जो बाहिर होई ताहि पतिज सब कोई ।
हिरनाकुस नख उदर विदारे सो नहिं कर्त्ता होई ।।
बावन रूप न बलि की जाँचै जो जाँचै सो माया ।
विना विवेक सकल जग जँहड़े माया जग भरमाया ।।
परशुराम छत्री नहिं मारा ई छल माया कीन्हा ।
सतगुरु भक्ति भेद नहिं जानै जीव अमिथ्या दीन्हा ।।
सिरजनहार न ब्याही सीता जल पखान नहिं बंधा ।

वे रघुनाथ एक कै सुमिरै जो सुमिरै सो अंधा ॥
गोप ग्वाल गोकुल नहिं आए करते कंस न मारा ।
मेहरबान है सब का साहब नहिं जीता नहिं हारा ॥
वे कर्त्ता नहिं बौध कहावैं नहीं असुर को मारा ।
ज्ञानहीन कर्त्ता सब भरमे माया जग संहारा ॥
वे कर्त्ता नहिं भए कलंकी नहीं कलिंगहिं मारा ।
ई छल बल सब मायै कीन्हा जतिन सतिन सब टारा ॥
दस अवतार ईश्वरी माया कर्त्ता कै जिन पूजा ।
कहै कबीर सुनो हो संतो उपजै खपै सो दूजा ॥५॥

कर्ता-महत्ता

बरनहुँ कौन रूप औ रेखा । दूसर कौन आय जो देखा ॥
औ ओंकार आदि नहिं बेदा । ताकर कहौं कौन कुल भेदा ॥
नहिं तारागन नहिं रबि चंदा । नहिं कछु होत पिता के बिंदा ॥
नहिं जल नहिं थल नहिं थिर पवना । कोधर नाम हुकुम को बरना ॥
नहिं कछु होत दिवस अरु राती । ताकर कहहुँ कौन कुल जाती ॥
शून्य सहज मन सुरति ते प्रगट भई एक ज्योति ।
बलिहारी ता पुरुख छबि निरालंब जो होति ॥ ६ ॥
एकै काल सकल संसारा । एक नाम है जगत पियारा ॥
तिया पुरुख कछु कथो न जाई । सर्व रूप जग रहा समाई ॥
रूप अरूप जाय नहिं बोली । हलुका गरुआ जाय न तोली ॥
भूख न तृखा धूप नहिं छाँहीं । दुख सुख रहित रहै ते माहीं ॥

अपरम परम रूप मगु नहिं तेहि संख्या आहि ।
कहहि कबीर पुकारि कै अद्भुत कहिए ताहि ॥ ७ ॥
राम गुण न्यारो न्यारो न्यारो ।
अबुझा लोग कहाँ लौं बूझैं बूझनहार बिचारो ॥
केते रामचंद्र तपसी से जिन जग यह बिरमाया ।
केते कान्ह भए मुरलीधर तिन भी अंत न पाया ॥
मच्छ कच्छ बाराह स्वरूपी बामन नाम धराया ।
केते बौध भए निकलंकी तिन भी अंत न पाया ॥
केतिक सिध साधक संन्यासी जिन बन बास बसाया ।
केते मुनि जन गोरख कहिए तिन भी अंत न पाया ॥
जाकी गति ब्रह्मै नहिं पाए शिव सनकादिक हारे ।
ताके गुन नर कैसे पैहौ कहै कबीर पुकारे ॥ ८ ॥
अब हम जाना हो हरि बाजी को खेल ।
डंक बजाय देखाय तमाशा बहुरि सो लेत सकेल ॥
हरि बाजी सुर नर मुनि जहँड़े माया चेटक लाया ।
घर में डारि सबन भरमाया हृदए ज्ञान न आया ॥
बाजी झूँठ बाजीगर साँचा साधुन की मति ऐसी ।
कह कबीर जिन जैसी समझी ताकी गति भइ तैसी ॥ ९ ॥
छेम कुसल औ सही सलामत कहहु कौन को दीन्हा हो ।
आवत जात दुनों विधि लूटे सरब संग हरि लीन्हा हो ॥
सुर नर मुनि सब पीर औलिया मीरा पैदा कीन्हा हो ।
कहँ लौं गिनैं अनंत कोटि लौं सकल पयाना दीन्हा हो ॥

पानी पवन अकास जाहिगो चंद्र जाहिगो सूरा हो ।
वह भी जाहिगो यह भी जाहिगो परत काहु को न पूरा हो ॥
कुसलै कहत कहत जग बिनसै कुसल काल की फांसी हो।
कह कबीर सब दुनिया बिनसल रहल राम अविनासी हो ॥१०॥
ऐसा लो तत ऐसा लो, मैं केहि बिधि कहौं गँभीरा लो ।
बाहर कहौं तो सतगुरु लाजै, भीतर कहौं तो झूठा लो ।
बाहर भीतर सकल निरन्तर, गुरु परतापै दीठा लो ॥
दृष्टि न मुष्टि न अगम अगोचर, पुस्तक लिखा न जाई लो ।
जिन पहिचाना तिन भल जाना, कहे न तो पतियाई लो ॥
मीन चलै जल मारग जोवै, परम तत्त धौं कैसा लो ।
पुहुप बास हूँ ते कछु झीना, परम तत्त धौं ऐसा लो ॥
आकासै उड़ि गयो बिहंगम, पाछे खोज न दरसी लो ।
कह कबीर सतगुरु दाया तें, बिरला सत पद परसी लो ॥११॥
बाबा अगम अगोचर कैसा, तातें कहि समझाओं ऐसा ।
जो दीसै सो तो है नाहीं है सो कहा न जाई ।
सैना बैना कहि समझाओं, गूँगे का गुरु-भाई ॥
दृष्टि न दीसै मुष्टि न आवै, बिनसे नाहिं नियारा ।
ऐसा ज्ञान कथा गुरु मेरे, पण्डित करौ बिचारा ॥
बिन देखे परतीत न आवै, कहे न कोउ पतियाना ।
समुझा होय सो सब्दै चीन्है, अचरज होय अयाना ॥
कोई ध्यावै निराकार को, कोइ ध्यावै साकारा ।
वह तो इन दोऊ ते न्यारा, जानै जाननहारा ॥

काजी कथै कतेब कुराना, पंडित बेद पुराना।
वह अच्छर तो लखा न जाई, मात्रा लगै न काना।।
नादी बादी पढ़ना गुनना बहु चतुराई भीना।
कह कबीर सो पड़ै न परलय नाम भक्ति जिन चीना।। १२ ।।

अवधू कुदरत की गति न्यारी।
रंक निवाज करे वह राजा भूपति करै भिखारी।।
ये ते लवँगहिं फल नहिं लागै चंदन फूल न फूले।
मच्छ शिकारी रमै जँगल में सिंह समुद्रहि भूलै।।
रेंडा रूख भया मलयागिरि चहुँ दिसि फूटी बासा।
तीन लोक ब्रह्मांड खंड में देखे अंध तमासा।।
पंगुल मेरु सुमेरु उलंघै त्रिभुवन मुक्ता डोलै।
गूँगा ज्ञान विज्ञान प्रकासै अनहद बाणी बोलै।।
बाँधि अकाश पताल पठावै सेस स्वरग पर राजै।
कहै कबीर राम है राजा जो कछु करै सो छाजै।।१३।।

कर्त्तायुग

अवधू छोड़हु मन बिस्तारा।
सो पद गहो जाहि ते सद्गति पार ब्रह्म ते न्यारा।।
नहीं महादेव नहीं महम्मद हरि हजरत तब नाहीं।
आदम ब्रह्म नाहि तब होते नहीं धूप नहिं छाँहीं।।
असी सहस्र पैगम्बर नाहीं सहस अठासी मूनी।
चंद सूर्य्य तारा गन नाहीं मच्छ कच्छ नहिं दूनी।।

वेद किताब सुमृत नहिं संयम नाहि यमन परसाही ।
बाँग निवाज नहीं तब कमला रामौ नहीं खोदाही ।।
आदि अंत सन मध्य न होते आतश पवन न पानी ।
लख चौरासी जीव जंतु नहि साखी शब्द न बानी ।।
कहहिं कबीर सुनो हो अवधू आगे करहु बिचारा ।
पूरन ब्रह्म कहाँ ते प्रगटे किरतिम किन उपचारा ।। १४ ।।
जहिया होत पवन नहिं पानी । तहिया सृष्टि कौन उतपानी ।।
तहिया होत कली नहिं फूला । तहिया होत गर्भ नहि मूला ।।
तहिया होत न विद्या वेदा । तहिया होत शब्द नहि खेदा ।।
तहिया होत पिंड नहिं बासू । ना धर धरणि न गगन अकासू ।।
तहिया होत गुरू नहिं चेला । गम्य अगम्य न पंथ दुहेला ।।
अविगति की गति क्या कहीं जाके गाउँ न ठाउँ ।
गुणों बिहीना पेखना का कहि लीजे नाउँ ।। १५ ।।

सत्य लोक

बलिहारी अपने साहब की जिन यह जुगुत बनाई ।
उनकी शोभा केहि विधि कहिए मो सों कही न जाई ।।
बिना ज्योति की जहँ उँजियारी सो दरसै वह दीपा ।
निरतै हंस करै कौतूहल वो ही पुरुख समीपा ।।
झलकै पदुम बानि नाना बिध माथे छत्र बिराजै ।
कोटिन भानु चन्द तारागण एक एक फुचरियन छाजै ।।

कर गहि बिहँसि जबै मुख बोलै तब हंसा सुख पावै ।
वंश अंश जिन बूझ बिचारी सो जीवन मुक्तावै ॥
चौदह लोक बेद का मंडल तहँ लग काल दोहाई ।
लोक बेद जिन फंदा काटी ते वह लोक सिधाई ॥
सात शिकारी चौदह पारथ भिन्न भिन्न निरतावै ।
चारि अंश जिन समझ बिचारी सो जीवन मुक्तावै ॥
चौदह लोक बसै यम चौदह तहँ लग काल पसारा ।
ताके आगे ज्योति निरंजन बैठे सुन्न मँझारा ॥
सोरह पट अच्छर भगवाना जिन यह सृष्टि उपाई ।
अच्छर कला सृष्टि से उपजी उनही माँह समाई ॥
सत्रह संख्य पर अधर दीप जहँ शब्दातीत विराजै ।
निरतै सखी बहू बिध शोभा अनहद बाजा बाजै ॥
ताके ऊपर परम धाम है मरम न कोई पाया ।
जो हम कही नहीं कोउ मानै ना कोइ दूसर आया ॥
बेदन साखी सब जिउ अरुझे परम धाम ठहराया ।
फिरि फिरि भटकै आप चतुर ह्वै वह घर काहु न पाया ॥
जो कोइ होइ सत्य का किनका सो हमका पतिआई ।
और न मिलैं कोटि कर थाकै बहुरि काल घर जाई ॥
सोरह संख्य के आगे समरथ जिन जग मोहिं पठाया ।
कहै कबीर आदि की बानी बेद भेद नहिं पाया ॥ १६ ॥

चला जब लोक को सोक सब त्यागिया
हंस को रूप सतगुर बनाई ।

भृंग ज्यों कीट को पलटि भृंगै किया
आप सम रंग दै लै उड़ाई।
छोड़ि नासूत मलकूत को पहुँचिया
बिश्नु की ठाकुरी दीख जाई।
इंद्र कुबेर जहँ रंभ को नृत्य है
देव तैंतीस कोटिक रहाई॥
छोड़ि बैकुंठ को हंस आगे चला
शून्य में ज्योति जगमग जगाई।
ज्योति परकाश में निरखि निस्तत्व को
आप निर्भय हुआ भय मिटाई॥
अलख निरगुन करै बेद जेहि अस्तुती
तीनहूँ देव को है पिताई।
तिन परे श्वेत मूरति धरे भगवान
भाग का आन तिनको रहाई॥
चार मुक्काम पर खंड सोरह कहैं
अंड को छोर ह्याँ ते रहाई।
अंड के परे असथान आचिंत को
निरखिया हंस जब उहाँ जाई॥
सहस औ द्वादसै रुद्र हैं संग में
करत कल्लोल अनहद बजाई।
तासु के बदन की कौन महिमा कहौं
भातसी देह अति नूर छाई॥

महल कंचन बने मनिक तामें जड़े
बैठ तहँ कलस आखंड छाजै।
अचिंत के परे अस्थान साहंग का
हंस छत्तीस तहँवा बिराजै॥
नूर का महल औ नूर की भूमि है
तहाँ आनंद सो द्वंद भाजै।
करत कल्लोल बहु भाँति से संग
यह हंस सोहंग के जो समाजै॥
हंस जब जात षट चक्र को बेध के
सात मुक्काम में नजर फेरा।
परे सोहंग से सुरति इच्छा कही
सहस बामन जहाँ हंस डेरा॥
रूप की राशि ते रूप उनको बना
हिंदु जी नहीं उपमा निवेरा।
सुरति से भेटिकै सब्द को टेकि
चढ़ि देखि मुक्काम अंकूर केरा॥
शून्य के बीच में बिमल बैठक जहाँ
सहज अस्थान है गैब केरा।
न वो मक्काम यह हंस जब पहुँचिया
पलक बेलंब ह्वाँ कियो डेरा॥
तहाँ से डोरी मकतार ज्यों लागिया
ताहि चढि हंस गोदै दरेरा।

भए आनंद से फंद सब छोड़िया
पहुँचिया जहाँ सतलोक मेरा ॥
हंसिनी हंस सब गाय बजाय कै
साजि कै कलस ओहि लेन आए ।
युगन युग बोछुरे मिले तुम आइ कै
प्रेम करि अंग सों अंग लाए ॥
पुरुख ने दरस जब दीन्हि या हंस को
तपिन बहु जन्म की तब नसाए ।
पलटि कै रूप जब एक सो कीन्हिया
मनहुँ तब भानु खोड़स उगाए ॥
पुहुप कै दीप पीयूख भोजन करै
सब्द की देह जब हंस पाई ।
पुहुप के सेहरा हंस औ हंसिनी
सच्चिदानंद सिर छत्र छाई ॥
दिपैं बहु दामिनी दमक बहु भाँति की
जहाँ घन शब्द को घुमड़ लाई ।
लगे जहँ बरसने गरजि घन घेरि कै
उठत तहँ शब्द धुनि सति सुहाई ॥
सुनै सोइ हंस तहँ यूथ के यूथ ह्वै
एक ही नूर एक रंग रागै ।
करत बीहार मन भावनी मुक्ति भै
कर्म औ भर्म सब दूर भागै ॥

रंक औ भूप कोइ परखि आवै नहीं
करत कल्लोल बहु भाँति भागे।
काम औ क्रोध मद लोभ अभिमान सब
छाँड़ि पाखंड सत सब्द लागे॥
पुरुष के बदन की कौन महिमा कहों
जगत में उभय कछु नाहिं पाई।
चंद औ सूरगण जोति लागैं नहीं
एक ही नक्ख परकास भाई॥
पान परवान जिन बंश का पाइया
पहुँचिया पुरुख के लोक जाई।
कहै कब्बीर यहि भाँति सों पाइहै
सत्य की राह सो प्रगट गाई॥ १७॥
छोड़ि नासूत मलकूत जबरूत को
औ लाहूत हाहूत बाजी।
और साहूत राहूत ह्याँ डारि दै
कूदि आहूत जाहूत जाजी॥
जाय जाहूत में ख़ुद खाविंद जहँ
वहीं मक्कान साकेत साजी।
कहै कब्बीर ह्वाँ भिस्त दोजख थके
बेद कीताब काहूत काजी॥ १८॥
जहँ सतगुरु खेलैं ऋतु बसंत।
तहँ परम पुरुष सब साधु संत॥

वह तीन लोक ते भिन्न राज ।
तहँ अनहद्द धुनि चहुँ पास बाज ॥
दीपकैं बरैं जहँ निराधार ।
बिरला जन कोई पाव पार ॥
जहँ कोटि कृश्न जोरे दु हाथ ।
जहँ कोटि विश्नु नावैं सुमाथ ॥
जहँ कोटिन ब्रह्मा पढ़ पुरान ।
जहँ कोटि महादेव धरैं ध्यान ॥
जहँ कोटि सरस्वति करैं राग ।
जहँ कोटि इंद्र गावने लाग ॥
जहँ गण गंधर्व मुनि गनि न जाहिं ।
सो तहवाँ परगट आपु आहिं ॥
तहँ चोवा चंदन अरु अबीर ।
तहँ पुहुप बास भरि अति गँभीर ॥
जहँ सुरति सुरंग सुगंध लीन ।
सब वही लोक में बास कीन ॥
मैं अजर दीप पहुँच्यो सुजाइ ।
तहँ अजर पुरुष के दरस पाइ ॥
सो कह कबीर हृदया लगाइ ।
यह नरक उधारन नाम जाइ ॥ १६ ॥
सदा बसंत होत तेहि ठाऊँ ।
संशय रहित अमरपुर गाऊँ ॥

जहँवा रोग सोग नहिं कोई।
सदा अनंद करै सब कोई॥
सूरज चंद दिवस नहिं राती।
बरन भेद नहिं जाति अजाती॥
तहवाँ जरा मरन नहिं होई।
कर बिनोद क्रीड़ा सब कोई॥
पुहुप बिमान सदा उँजियारा।
अमृत भोजन करै अहारा॥
काया सुंदर को परवाना।
उदित भए जिमि खोड़स भाना॥
एता एक हंसा उँजियारा।
शोभित चिकुर उदय जनु तारा॥
विमल वास जहवाँ पैढ़ाहीं।
जोजन चार ध्रान जो जाहीं॥
स्वेत मनोहर छत्र सिर छाजा।
बूझि न परै रंक अरु राजा॥
नहिं तहँ नरक स्वर्ग की खानी।
अमृत बचन बोलै भल बानी॥
अस सुख हमरे घरन महँ कहैं कबीर बुझाय।
सत्य सब्द को जानि कै अस्थिर बैठे आय॥२०॥
तू सूरत नैन निहार अंड के पारा है।
तू हिरदे सोच विचार यह देस हमारा है॥

पहले ध्यान गुरन का धारो, सुरत निरत मन पवन चितारो।
सुहेलना धुन नाम उचारो, लहु सतगुरु दीक्षारा है ॥
सतगुरु दरस होय जब भाई, वह दें तुमको नाम चिताई।
सुरत सब्द दोउ भेद बताई, देख खंख के पारा है ॥
सतगुरु कृपा दृष्टि पहिचाना, अंड सिखर बेहद मैदाना।
सहज दास तहँ रोपा थाना, अग्र दीप सरदारा है ॥
सात सुन्न बेहद के माहीं, सात संख तिनकी ऊँचाई।
तीन सुन्न लौं काल कहाई, आगे सत्त पसारा है ॥
परथम अभय सुन्न है भाई, कन्या कढ़ यहँ बाहर आई।
जोग सँतायन पूछो वाई, दारा वह भरतारा है ॥
दूजे सकल सुन्न कर गाई, माया सहित निरंजन राई।
अमर कोट कै नकल बनाई, अँड मध रच्यो पसारा है ॥
तीजे है मह सुन्न सु खासी, महा काल यहँ कन्या ग्रासी।
जोग सँतायन आ अविनासी, गल नख छेद निकारा है ॥
चौथे सुन्न अजोख कहाई, सुद्ध ब्रह्म के ध्यान समाई।
आद्या याँ बीजा ले आई, देखो दृष्टि पसारा है ॥
पंचम सुन्न अलेल कहाई; तहँ अदली बँदिवान रहाई।
जिनका सतगुरु न्याव चुकाई, गादी अक्षली सारा है ॥
षष्ठे सार सुन्न कहलाई, सार भँडार याहि के माँहीं।
नीचे रचना जाहि रचाई, जाका सकल पसारा है ॥
सतवें सत्त सुन्न कहलाई, सत्त भँडार याहि के माँहीं।
निःतत रचना ताहि रचाई, जो सबहिन ते न्यारा है ॥

सत सुन ऊपर सत की नगरी, बाट बिहंगम बाँकी डगरी ।
सो पहुँचे चाले बिन पगरी, ऐसा खेल अपारा है ॥
पहली चकरि समाध कहाई; जिन हंसन सतगुरु मति पाई ।
बेद भरम सब दियो उड़ाई, तज तिरगुन भए न्यारा है ॥
दूज चकिर अगाध कहाई, जिन सतगुरु सँग द्रोह कराई ।
पीछे आन गहे सरनाई, सो यहँ आन पधारा है ॥
तीजी चकरी मुनि कर नामा, निज मुनियन सतगुरु मम जाना ।
सो मुनियन यहँ आय रहाना, करम भरम तज डारा है ॥
चौथी चकरी धुन है भाई, जिन हंसन धुन ध्यान लगाई ।
धुन सँग पहुँचे हमरे पाहीं, यह धुन सब्द झँकारा है ॥
पंचम चकरी रास जो भाखी, अलमीना है तहँ मध झाँकी ।
लीला कोट अनंत वहाँ की, रास बिलास अपारा है ॥
षष्ठम चकरि बिलास कहाई, जिन सतगुरु सँग प्रीति निबाही ।
छुटते देह जगह यह पाई, फिर नहिं भव अवतारा है ॥
सतवों चकरि बिनोद कहानो, कोटिन बंस गुरन तहँ जानो ।
कलि में बोध किया ज्यों मानो, अंधकार उँजियारा है ॥
अठवों चकरि अनुरोध बखाना, तहाँ जुलहटी ताना ताना ।
जा का नाम कबीर बखाना, जो संतन सिर धारा है ॥
ऐसी ऐसी सहस करोड़ी, ऊपर तले रचो ज्यों पैड़ो ।
गादी अदलि रही सिर मोड़ी, सतगुरु बंदि निवारा है ॥
अनुरोधी के ऊपर भाई, पद निरबान के नीचे ताही ।
पाँच संख है याहि उँचाई, अद्भुत ठाठ पसारा है ॥

सोलह सुतहित दीप रचाई, सत सुत रहैं तासु के माहीं ।
गादी अदल कबीर यहाँ हीं, जो सबहिन सरदारा है ॥
पद निरबान है अनँत अपारा, नूतन सूरति लोक सुधारा ।
सत्त पुरुख नूतन तन धारा, सतगुरु संतन सारा है ॥
आगे सत्त लोक है भाई, संखन कोस तासु ऊँचाई ।
हीरा पन्ना लाल जड़ाई, अद्भुत खेल अपारा है ॥
बाग बगीचे खिली फुलवारी, अमृत नहरें हो रहिं जारी ।
हंसा खेल करत तहँ भारी, अनहद घुरै अपारा है ॥
ता मध अधर सिंघासन गाजै, पुरुख सब्द तहँ अधिक बिराजै ।
कोटिन सूर रोम इक लाजै, ऐस पुरुख दीदारा है ॥
हंसि हंस आरती उतारैं, खोड़स भानु सूर पुनि चारैं ।
पग बीना सत सब्द उचारैं, बेधत हिए मँझारा है ॥
तापर अगम महल एक न्यारा, संखन कोट तासु बिस्तारा ।
बाग बावड़ी अमृतधारा, अधरी चलैं फुहारा है ॥
मोति महल औ हीरन चौरा, सेत बरन तहँ हंस चकोरा ।
सहस सूर छबि हंसन जोरा, ऐसा रूप निहारा है ॥
अधर सिंहासन जिंदा साईं, अर्बन सूर रोम सम नाहीं ।
हंस हिरंबर चँवर ढुलाईं, ऐसा अगम अपारा है ॥
अधरी ऊपर अधर धराई, संखन संख तासु ऊँचाई ।
झिलमिलहट सो लोग कहाई, झिलमिल झिलमिल सारा है ॥
बाग बगीचे झिलमिल कारी, रतनन जड़े पात औ डारी ।
मोती महल और रतन अटारी, पुरुख विदेह पधारा है ॥

कोटिन भानु हंस को रूपा, धुन है वहँ की अजब अनूपा ।
हंसा करत चँवर सिर भूपा, बिन कर चँवर ढुलारा है ॥
हंसा केल सुनो मन लाई, एक हंस के जो चित आई ।
दूजा हंस समुझ पुनि जाई, बिन मुख बैन उचारा है ॥
तेहि आगे निःलोक है भाई, पुरुख अनामी अकह कहाई ।
जा पहुँचे जानेंगे वाही, कहन सुनन ते न्यारा है ॥
रूप सरूप कछू वहँ नाहीं, ठौर ठाँव कुछ दीसै नाहीं ।
अरज तूल कुछ दृष्टि न आई, कैसे कहूँ सुमारा है ॥
जा पर किरपा करिहै साईं, गगनी मारग पावै ताहीं ।
सत्तर परलय मारग माँहीं, जब पावै दीदारा है ॥
कह कबीर मुख कहा न जाई, ना कागद पर अंक चढ़ाई ।
मानों गूँगे सम गुड़ खाई, सैनन बैन उचारा है ॥ २१ ॥
चुवत अमीरस भरत ताल जहँ, सब्द उठै असमानी हो ।
सरिता उमड़ सिंधु को सोखै नहिं कछु जात बखानी हो ॥
चाँद सुरज तारागण नहिं वहँ नहिं वहँ रैन बिहानी हो ।
बाजे बजें सितार बाँसुरी ररंकार मृदु बानी हो ॥
कीट झिलमिली जहँ वह झलकै बिन जल बरसत पानी हो ।
शिव अज विष्णु सुरेस सारदा निज निज मति अनुमानी हो ॥
दस अवतार एक तत राजैं असतुति सहज सयानी हो ।
कहैं कबीर भेद की बातैं बिरला कोई पहिचानी हो ॥
कर पहिचान फेर नहिं आवै जम की जुलमी खानी हो ॥२२॥
सखिया वा घर सबसे न्यारा जहँ पूरन पुरुख हमारा ।

जहँ नहिं सुख दुख साँच झूठ नहिं पाप न पुन्न पसारा।
नहिं दिन रैन चंद नहिं सूरज बिना जोति उँजियारा॥
नहिं तहँ ज्ञान ध्यान नहिं जप तप बेद कितेब न बानी।
करनी धरनी रहनी गहनी ये सब उहाँ हेरानी॥
घर नहिं अघर न बाहर भीतर पिंड ब्रह्मँड कछु नाहीं।
पाँच तत्व गुन तीन नहीं तहँ साखी सब्द न ताहीं॥
मूल न फूल बेल नहिं बीजा बिना वृच्छ फल सोहै।
ओहं सोहं अरध उरध नहिं स्वासा लेखन को है॥
नहिं निरगुन नहिं सरगुन भाई नहिं सूछम अस्थूल।
नहिं अच्छर नहिं अविगत भाई ये सब जग के मूल॥
जहाँ पुरुख तहँवा कछु नाहीं कह कबीर हम जाना।
हमरी सैन लखै जो कोई पावै पद निरबाना॥ २३॥

सुरत सरोवर न्हाइ के मंगल गाइए।
दरपन सब्द निहार तिलक सिर लाइए॥
चल हंसा सतलोक बहुत सुख पाइए।
परसि पुरुख के चरन बहुरि नहिं आइए॥
अमृत भोजन तहाँ अमी अँचवाइए।
मुख में सेत तँबूल सब्द लौ लाइए॥
पुहुप अनूपम बास हंस घर चलि जिए।
अमृत कपड़े ओढ़ि मुकुट सिर दीजिए॥
वह घर बहुत अनंद हंसा सुख लीजिए।
बदन मनोहर गात निरख के जोजिए॥

दुति बिन मसि बिन अंक सो पुस्तक बाँचिए।
बिन करताल बजाय चरन बिन नाचिए ॥
बिन दीपक उँजियार आगम घर देखिए।
खुल गए सब्द किवाड़ पुरुख सों भेटिए ॥
साहब सन्मुख होय भक्ति चित लाइए।
मन मानिक सँग हंस दरस तहँ पाइए ॥
कह कबीर यह मंगल भाग न पाइए।
गुरु संगत लौ लाय हंस चल जाइए ॥ २४ ॥

कर्त्ता-स्थान

संतौ योग अध्यातम सोई।
एक ब्रह्म सकल घट व्यापै दुतिया और न कोई ॥
प्रथम कमल जहँ ज्ञान चारि दल तहँ गणेश को बासा।
रिधि सिधि जाकी शक्ति उपासी जप ते होत प्रकासा ॥
षट दल कमल ब्रह्म को बासा सावित्री सँग सेवा।
षट सहस्र जहँ पाप जपत हैं इन्द्र सहित सब देवा ॥
अष्ट कमल जहँ हरि सग लछमी तीजो सेवक पवना।
षट सहस्र जहँ जाप जपत हैं मिटिगो आवा गवना ॥
द्वादस कमल में शिव को बासा गिरिजा शक्ती सारँग।
षट सहस्र जहँ पाप जपत हैं ज्ञान सुरति लै पारँग ॥
खोड़स कमल में जीव को बासा शक्ति अविद्या जानै।
एक सहस जहँ जाप जपत हैं ऐसा भेद बखानै ॥

भँवर गुफा जहँ दुइ दल कमला परम हंस कर बासा ।
एक सहस जाके जाप जपत हैं करम भरम को नासा ॥
सहस कमल में झिलमिल दरसो आपुइ बसत अपारा ।
जोति सरूप सकल जग व्यापी अछय पुरुष है प्यारा ॥
सुरति कमल पर सतगुरु बोले सहज जाप जप सोई ।
छः सै इकइस सहसहिं जपि ले बूझै अजपा कोई ॥
यही ज्ञान को कोई बूझै भेद अगोचर भाई ।
जो बूझै सो मन का पेखै कह कबीर समझाई ॥ २५ ॥

रस गगन गुफा में अजर झरै ।
बिना बाजा झनकार उठे जहँ समुझि परै जब ध्यान धरै ॥
बिना ताल जहँ तहँ कँवल फुलाने तेहि चढ़ि हंसा केलि करै ।
बिन चंदा उँजियारी दरसै जहँ तहँ हंसा नजर परै ॥
दसवें द्वारे ताड़ी लागी अलख पुरुष जाको ध्यान धरै ।
काल कराल निकट नहिं आवै काम क्रोध मद लोभ जरै ॥
जुगुन जुगुन की तृषा बुझानी करम भरम अघ व्याधि टरै ।
कहैं कबीर सुनो भाई साधो अमर होय कबहूँ न मरै ॥२६॥

मोको कहाँ ढूँढ़ो बंदे मैं तो तेरे पास में ।
ना मैं बकरी ना मैं भेड़ी ना मैं छुरी गँड़ास में ॥
नहीं खाल में नहीं पोंछ में ना हड्डो ना मास में ।
ना मैं देवल ना मैं मसजिद ना कावे कैलास में ॥
ना तौ कौनो क्रिया कर्म में नहीं जोग बैराग में ।
खोजी होय तुरतै मिलिहौं पल भर की तलास में ॥

मैं तो रहौं सहर के बाहर मेरी पुरी मवास में।
कहैं कबीर सुनो भाई साधो सब साँसों की साँस में ।। २७ ।।

कर्त्ता-प्राप्ति-साधन

ज्ञान का गेंद कर सुरति का दंड कर
खेल चौगान मैदान माहीं।
जगत का भरमना छोड़ दे बालके
आय जा भेख भगवंत पाहीं ।।
भेख भगवंत की सेस महिमा करै
सेस के सीस पर चरन डारै।
कामदल जीति कै कँवल दल सोधि कै
ब्रह्म को वेधि कै क्रोध मारै ।।
पदम आसन करै पवन परिचै करै
गगन के पहल पर मदन जारै।
कहत कब्बीर कोइ संतजन जौहरी
करम की रेख पर मेख मारै ।। २८ ।।
दो सुर चले सुभाव सेती
नाभी से उलटा आवता है।
बिच इंगला पिंगला तीन नाड़ी
सुषमन से भोजन पावता है ।।
पूरक करै कुँभक करै
रेचक करै झरि जावता है।

कायम कबीर का झूलना जी
दया भूल परे पछितावता है ॥ २९ ॥

मुरशिद नैनों बीच नबी है ।
स्याह सपेद तिलों बिच तारा अबिगत अलख रबी है ॥
आँखी मद्धै पाँखी चमकै पाँखी मद्धे द्वारा ।
तेहि द्वारे दुरबीन लगावे उतरे भौ-जल पारा ॥
सुन्न सहर में बास हमारा तहुँ सरबंगी जावै ।
साहब कबिर सदा के संगी सब्द महल ले आवै ॥३०॥

कर नैनों दीदार महल में प्यारा है ।
काम क्रोध मद लोभ बिसारो, सील सँतोख छमा सत धारो ।
मद्य मांस मिथ्या तजिडारो हो ज्ञान घोड़े असबार भरम से न्यारा है॥
धोती नेती बस्ती पाओ, आसन पदम जुगुत से लाओ ।
कुंभक कर रेचक करवाओ पहले मूल सुधार कार्य्य हो सारा है॥
मूल कँवल दल चतुर बखानो, जाप कलिंग लाल रँग मानो ।
देव गनेस तहुँ रोपा थानो, ऋधि सिधि चँवर ढुलारा है ॥
स्वाद चक्र षट दल बिस्तारो, ब्रह्म सवित्री रूप निहारो ।
उलटि नागिनी का सिर मारो, तहाँ शब्द ओंकारा है ॥
नाभी अष्ट कँवल दल साजा, सेत सिंहासन विष्णु बिराजा ।
जाप हिरिंग तासु सुख गाजा, लछमी शिव आधारा है ॥
द्वादश कँवल हृदय के माहीं, संग गौरि शिव ध्यान लगाई ।
सोहं शब्द तहाँ धुन छाई, गन कर जैजैकारा है ॥
दो दल कँवल कंठ के माँहीं, तेहि मध बसे अविद्या बाई ।

हरि हर ब्रह्मा चँवर डुलाई, शृंग नाम उच्चारा है ॥
तापर कंज कँवल है भाई, बग भौंरा दुइ रूप लखाई ।
निज मन करत तहाँ ठकुराई, सो नैनन पिछवारा है ॥
कँवलन भेद किया निरवारा, यह सब रचना पिंड मँझारा ।
सतसंग कर सतगुरु सिर धारा, वह सत नाम उचारा है ॥
आँख कान मुख बंद कराओ, अनहद झिंगा शब्द सुनाओ ।
दोनों तिल इक तार मिलाओ, तब देखो गुलजारा है ॥
चंद सूर एकै घर लाओ, सुषमन सेती ध्यान लगाओ ।
तिरबेनी कै संघ समाओ, भोर उतर चल पारा है ॥
घंटा संख सुनो धुन दोई, सहस कँवल दल जगमग होई ।
ता मध करता निरखो सोई, बंक नाल धँस पारा है ॥
डाकिनी साकिनि बहु किलकारे जम किंकर ध्रम दूत हकारे ।
सत्त नाम सुन भागें सारे, सतगुरु नाम उचारा है ॥
गगन मँडल विच उर्ध मुख कुइयाँ, गुरुमुख साधू भर भर पीया ।
निगुरें प्यास मरे बिन कीया, जाके हिय अँधियारा है ॥
त्रिकुटि महल में विद्या सारा, घनहर गरजें बजे नगारा ।
लाल बरन सूरज उजियारा, चतुर कँवल मँझार ओंकारा है ॥
साध सोई जिन यह गढ़ लीन्हा, नौ दरवाजे परगट चीन्हा ।
दसवाँ जाय खोल जिन दीन्हा, जहाँ कुलुफ रहा मारा है ॥
आगे सेत सुन्न है भाई, मान सरोवर पैठि अन्हाई ।
हंसन मिलि हंसा होइ जाई, मिलै जो अमी अहारा है ॥
किंगरी सारँग बजै सितारा, अच्छर ब्रह्म सुन्न दरबारा ।

द्वादस भानुहंस उँजियारा, षटदल कँवल मंझार सब्द ररंकारा है ॥
महा सुन्न सिंध बिषमी घाटी, बिन सतगुरु पावै नहिं बाटी ।
व्याघर सिंघ सरप बहु काटी, सहज अचिंत पसारा है ॥
अठ-दल कँवल पार ब्रह्म भाई, दहिने द्वादस अचिंत रहाई ।
बाएँ दस दल सहज समाई, यों कँवलन निरवारा है ॥
पाँच ब्रह्म पाँचों अँड बीनो, पाँच ब्रह्म निःअच्छर चीनो ।
चार मुकाम गुप्त तहँ कीनो, जा मध बंदीवान पुरुख दरबारा है ॥
दो परबत के संध निहारो, भँवर गुफा में संत पुकारो ।
हंसा करते केल अपारो, तहाँ गुरन दरबारा है ॥
सहस अठासी दीप रचाए, हीरे पन्ने महल जड़ाए ।
मुरली बजत अखंड सदाए, तहँ सोहं झनकारा है ॥
सोहं हद तजी तब भाई, सत्त लोक की हद पुनि आई ।
उठत सुगंध महा अधिकाई, जाको वार न पारा है ॥
खोड़स भानु हंस को रूपा, बीना सत धुन बजै अनूपा ।
हंसा करे चँवर सिर भूपा, सत्त पुरुष दरबारा है ॥
कोटिन भानु उदय जो होई, एते ही पुन चंद्र लखोई ।
पुरुष रोम सम एक न होई, ऐसा पुरुष दीदारा है ॥
आगे अलख लोक है भाई, अलख पुरुष की तहँ ठकुराई ।
अरबन सूर रोम सम नाँहीं, ऐसा अलख निहारा है ॥
तापर अगम महल इक साजा, अगम पुरुष ताही को राजा ।
खरबन सूर रोम इक लाजा, ऐसा अगम अपारा है ॥
तापर अकह लोक है भाई, पुरुष अनामी तहाँ रहाई ।

जो पहुँचा जानेगा वाही, कहन सुनन ते न्यारा है ॥
काया भेद किया निरवारा, यह सब रचना पिंड मँझारा ।
माया अवगति जाल पसारा, सो कारीगर भारा है ॥
आदि माया कीन्ही चतुराई, झूठी बाजी पिंड दिखाई ।
अवगति रचन रची अँड माहीं, ताका प्रतिबिंब डारा है ॥
सब्द बिहंगम चाल हमारी, कह कबीर सतगुरु दइ तारी ।
खुलेकपाट शब्द झनकारी, पिंड अंडके पार सो देस हमारा है ॥ ३१ ॥

कर नैनों दीदार पिंड से न्यारा है ।
हिरदे सोच विचार सो अंड मँझारा है ॥

चोरी जारी निंदा चारो, मिथ्या तज सतगुरु सिर धारो ।
सतसँग कर सत नाम उचारो, सनमुख लहु दीदारा है ॥
जो जन ऐसी करी कमाई, तिनकी जग फैली रोसनाई ।
अष्ट प्रमान जगह सुख पाई, देखा अंड मँझारा है ॥
सोइ अंड को अवगत राई, अकह अमरपुर नकल बनाई ।
सुद्ध ब्रह्म पद तहँ ठहराई, नाम अनामी धारा है ॥
सतवीं सुन्न अंड के माहीं, झिलमिलहट की नकल बनाई ।
महाकाल तहँ आन रहाई, अगम पुरुष उच्चारा है ॥
छठवीं सुन्न जो अंड मँझारा, अगम महल की नकल सुधारा ।
निरगुन काल तहाँ यह धारा, अलख पुरुष कहु न्यारा है ॥
पंचम सुन्न अंड के माहीं, सत्त लोक की नकल बनाई ।
माया सहित निरंजन राई, सत्त पुरुष दीदारा है ॥
चौथी सुन्न अंड के माहीं, पद निर्बान की नकल बनाई ।

अविगत कला है सतगुरु आई, सो सोहं यह सारा है ॥
ताजी सुन्न की सुनो बड़ाई, एक सुन्न के दोय बनाई ।
ऊपर महा सुन्न अधिकाई नीचे सुन्न पसारा है ॥
सतवीं सुन्न महाकाल रहाई, तासु कला महा सुन्न समाई ।
पारब्रह्म कर थाप्यो ताही, सो नि:अच्छर सारा है ॥
छठवीं सुन्न जो निरगुन राई, तासु कला आ सुन्न समाई ।
अच्छर ब्रह्म कहैं पुनि ताहीं, सोई सब्द ररंकारा है ॥
पंचम सुन्न निरंजन राई, तासु कला दूजी सुन छाई ।
पुरुष प्रकिरती पदवी पाई, सरगुन सुद्ध पसारा है ॥
पुरुष प्रकृति दूजी सुन माहीं, तासु कला परिथम सुन आई ।
जोत निरंजन नाम धराई, सरगुन थूल पसारा है ॥
परिथम सुन्न जो जोत रहाई, ताकी कला अबिद्या बाई ।
पुत्रन सँग पुत्री उपजाई, सिंध बैराट पसारा है ॥
सतवें अकास उतर पुनि आई, ब्रह्मा विष्णु समाधि जगाई ।
पुत्रन सँग पुत्री परनाई, स्रिग नाम उच्चारा है ॥
छठे अकास शिव अवगति भौंरा, गंग गौर रिधि करतीं चौरा ।
गिरि कैलास गन करते सोरा, तहँ सोहं सिरमौरा है ॥
पंचम अकास में बिष्णु बिराजे, लछमी सहित सिहासन साजे ।
हिरिंग बैकुंठ भक्त समाजे, भक्तन कारज सारा है ॥
चउथ अकास ब्रह्म बिस्तारा, सावित्री सँग करत बिहारा ।
ब्रह्म ऋद्धि में ओम पद सारा, यह जग सिरजनहारा है ॥
तिसर अकास रहे धर्मराई, नरक सुरग जिन लीन्ह बनाई ।

करमन फल जीवन भुगताई, ऐसा अदल पसारा है ॥
दुसर अकास में इन्द्र रहाई, देव मुनी बासा तहँ पाई ।
रंभा करती निरत सदाई, कलिंग सब्द उच्चारा है ॥
प्रथम अकास मृत्यु है लोका, जनम मरन का जहँ नित धोका ।
सो हंसा पहुँचे सतलोका, सतगुरु नाम उचारा है ॥
चौदह तबक किया निरवारा, अब नीचे का सुनो बिचारा ।
सात तबक में छः रखवारा, भिन भिन सुनो पसारा है ॥
सेस धवल बाराह कहाई, मीन कच्छ और कुरम रहाई ।
सो छ रहे सात के माहीं, यह पाताल पसारा है ॥ ३२ ॥

राम नाम महिमा

राम के नाम ते पिंड ब्रह्मंड सब राम का नाम सुनि भरम मानी ।
निरगुन निरंकार के पार परब्रह्म है तासु को नाम रंकार जानी ॥
बिष्णु पूजा करै ध्यान शंकर धरै
मनहि सुबिरंचि बहु बिबिध बानी ।
कहै कब्बीर कोउ पार ता पावै नहीं
राम को नाम है अकह कहानी ॥ ३३ ॥
रसना राम गुण रमि रमि पीजै । गुणातीत निर्मूलक लीजै ।
निरगुन ब्रह्म जपो रे भाई । जेहि सुमिरत सुधिबुधि सब पाई ॥
बिख तजि राम न जपसि अभागे । का बूड़े लालच के आगे ।
ते सब तरे राम रसस्वादी । कह कबीर बूड़े बकवादी ॥ ३४ ॥

मन रे जब ते राम कह्यो रे। फिरि कहिबे को कछु न रह्यो रे।
का भो जोग जज्ञ जप दाना। जो तैं राम नाम नहिं जाना॥
काम क्रोध दोउ भारे। गुरु प्रसाद सब तारे।
कह कबीर भ्रमनाशी। राम मिले अबिनाशी॥ ३५॥

राम का नाम संसार में सार है
राम का नाम अमृत बानी।
राम के नाम ते कोटि पातक टरै
राम का नाम विस्वास मानी॥
राम का नाम लै साधु सुमिरन करै
राम का नाम लै भक्ति ठानी।
राम का नाम सूर सनमुख लरै
पैठि संग्राम में युद्ध ठानी॥
राम का नाम लै नारि सत्ती भई
खेह बनि कंत संग जरि उड़ानी।
राम का नाम लै तीर्थ सब भरमिया
करत अस्नान झक्कोर पानी॥
राम का नाम लै मूर्तिपूजा करै
राम का नाम लै देत दानी।
राम का नाम लै बिप्र भिच्छुक बनै
राम का नाम दुर्लभ जानी॥
राम का नाम चौबेद का मूल है
निगम निच्चोर करतत्व छानी।

राम का नाम षट सासतर मत्थिए
चली षटदरसनों में कहानी ।।
राम का नाम अग्गाध लीला बड़ी
खोजत खोज नहिं हार मानी ।
राम का नाम लै विष्णु सुमिरन करै
राम का नाम शिवजोग ध्यानी ।।
राम का नाम लै सिद्ध साधक बने
संभु सनकादि नारद गिआनी ।
राम का नाम लै दृष्टि लइ रामचंद
भए वासिष्ठ गुरु मंत्र दानी ।।
कहाँ लौं कहों अग्गाध लीला रची
राम का नाम काहू न जानी ।
राम का नाम लै कृष्ण गीता कथी
बाँधिया सेत तब मर्म जानी ।।
है परम जोति औ गुन निराकार है
तासु को नाम निरंकार मानी ।
रूप बिन रेख बिन निगम अस्तुति करै
सत्त की राह अनकथ कहानी ।।
विष्णु सुमिरन करै जोग शिव जेहि धरै
भनै सब ब्रह्म वेदान्त गाया ।
ब्रह्म सनकादि कोइ पावै नहीं
तासु का नाम कह रामराया ।

कहै कब्बीर वह शख्श तहकीक कर
राम का नाम जो पृथो लाया ॥ ३६ ॥

नाम अमल उतरै ना भाई ।
और अमल छिन छिन चढ़ि उतरै नाम अमल दिन बढ़ै सवाई ॥
देखत चढ़ै सुनत हिय लागै सुरत किए तन देत घुमाई ।
पियत पियाला भए मतवाला पायो नाम मिटी दुचिताई ॥
जो जन नाम अमल रस चाखा तर गइ गनिका सदन कसाई ।
कहु कबीर गूँगे गुड़ खाया बिन रसना का करै बड़ाई ॥ ३७ ॥

शब्द-महिमा

साधो सब्द साधना कीजै ।
जासु शब्द ते प्रगट भए सब सब्द सोई गहि लीजै ॥
शब्दहिं गुरू शब्द सुनि सिख भे शब्द सो बिरला बूझै ।
सोइ सिष्य औ गुरू महातम जेहि अंतरगत सूझै ॥
शब्दै बेद पुरान कहत है शब्दै सब ठहरावै ।
शब्दै सुर मुनि संत कहत हैं शब्द भेद नहिं पावै ॥
शब्दै सुनि सुनि भेख धरत हैं शब्द कहै अनुरागी ।
षट दरशन सब शब्द कहत हैं शब्द कहै बैरागी ॥
शब्दै माया जग उतपानी शब्दै केर पसारा ।
कह कबीर जहँ शब्द होत है तवन भेद है न्यारा ॥३८॥

साधो शब्द सबन से न्यारा, जानैगा कोइ जाननहारा ॥
जोगी जती तपी संन्यासी, अंग लगावै छारा ।
मूल मंत्र सतगुरु दाया बिन, कैसे उतरै पारा ॥
जोग जज्ञ व्रत नेम साधना, कर्म धर्म व्योपारा ।
सो तो मुक्ति सबन ते न्यारी, कस छूटै जम द्वारा ॥
निगम नेति जाके गुन गावैं, शंकर जोग अधारा ।
ध्यान धरत जेहि ब्रह्मा विष्णू, सो प्रभु अगम अपारा ॥
लागा रहै चरन सतगुरु के, चंद चकोर की धारा ।
कहैं कबीर सुनो भाइ साधो, नख शिख शब्द हमारा ॥ ३९॥

शब्द को खोजि ले शब्द को बूझि ले शब्द ही शब्द तू चलो भाई ।
शब्द आकास है शब्द पाताल है शब्द ते पिंड ब्रह्मांड छाई ॥
शब्द बयना बसै शब्द सरवन बसै शब्द के ख्याल मूरति बनाई ।
शब्द ही वेद है शब्द ही नाद है शब्द ही शास्त्र बहु भाँति गाई ॥
शब्द ही यंत्र है शब्द ही मंत्र है शब्द ही गुरू सिख को सुनाई ।
शब्द ही तत्व है शब्द निःतत्व है शब्द आकार निराकार भाई ॥
शब्द ही पुरुख शब्द ही नारि है शब्द ही तीन देवा थपाई ।
शब्द ही दृष्ट अनदृष्ट ओंकार है शब्द ही सकल ब्रह्मांड जाई ॥
कहैं कबीर तैं शब्द को परखि ले शब्द ही आप करतार भाई॥४०॥

माया-प्रपंच

राम तेरी माया दुंद मचावै ।
गति मति वाकी समझि परै नहिं सुर नर मुनिहिं नचावै ॥

का सेमर के साख बढ़े ये फूल अनूपम बानी।
केतिक चातक लागि रहे हैं चाखत रुवा उड़ानी॥
कहा खजूर बड़ाई तेरी फल कोई नहिं पावै।
ग्रीषम ऋतु जब आइ तुलानी छाया काम न आवै॥
अपना चतुर और को सिखवै कामिनि कनक सयानी।
कहै कबीर सुनो हो संतो राम-चरण रति मानी॥४१॥

माया महा ठगिनि हम जानी।
तिरगुन फाँस लिए कर डोलै बोलै मधुरी बानी॥
केशव के कमला ह्वै बैठी शिव के भवन भवानी।
पंडा के मूरति ह्वै बैठी तीरथ में भइ पानी॥
योगी के योगिनि ह्वै बैठी राजा के घर रानी।
काहू के हीरा ह्वै बैठी काहु के कौड़ी कानी॥
भक्तन के भक्तिनि ह्वै बैठी ब्रह्मा के ब्रह्मानी।
कहै कबीर सुनो हो संतो यह सब अकथ कहानी॥४२॥

सबही मदमाते कोइ न जाग। सँगहि चोर घर मूसन लाग॥
योगी मदमाते योग ध्यान। पंडित मदमाते पढ़ि पुरान॥
तपसी मदमाते तप के भेव। संन्यासी मदमाते करि हमेव॥
मौलाना मदमाते पढ़ि मोसाफ। काजी मदमाते कै निसाफ॥
शुकदेव मते ऊधो अक्रूर। हनुमत मदमाते ले लँगूर॥
संसार मत्यो माया के धार। राजा मदमाते कहि हँकार॥
शिव माति रहे हरिचरण सेव। कलि माते नामा जयदेव॥

वह सत्य सत्य कह सुम्रित वेद । जस रावण मारे घर के भेद ॥
एहि चंचल मन के अधम काम । कह कबीर भज राम नाम॥४३॥
आँधर गुष्टि सृष्टि भै बैरी । तीनि लोक महँ लागि ठगौरी ॥
ब्रह्महि ठग्यो नाम संहारी । देवन सहित ठग्यो त्रिपुरारी ॥
राज ठगौरी बिश्नुहिं परी । चौदह भुवन केर चौधरी ॥
आदि अंत जेहि साहु न जानी । ताके डर तुम काहे मानी ॥
ऊ उतंग तुम जाति पतंगा । यम घर किहेहु जीव कै संगा ॥
नीम कीट जस नीम पियारा । बिख को अमृत कहैं गँवारा ॥
बिष के संग कवन गुण होई । किंचित लाभ मूल गो खोई ॥
बिष अमृत गो एकहिं सानी । जिन जाना तिन बिष कै मानी ॥
कहा भए नर सुध वे सूझा । बिन परचै जग मूढ़ न बूझा ॥
मति के हीन कौन गुण कहई । लालच लागे आशा रहई ॥
मुवा अहै मरि जाहुगे, मुए कि बाजी ढोल ।
स्वप्न सनेही जग भया, सहि दानी रह बोल ॥ ४४ ॥
जरासिंधु शिशुपाल सँहारा । सहस अर्जुनै छल सों मारा ॥
बड़ छल रावण से गए बीती । लंका रह कंचन की भीती ॥
दुर्योधन अभिमानहिं गयऊ । पंडव केर मरम नहिं पयऊ ॥
माया के डिंभ गे सब राजा । उत्तम मध्यम बाजन बाजा ॥
छाँच कवै वित धरनि समाना । याकौ जीव परतीति न आना ॥
कहँ लौं कहौं अचेते गयऊ । चेत अचेत झगर एक भयऊ ॥
ई माया जग मोहिनी मोहिसि सब जग धाय ।
हरिचंद सत के कारने घर घर गयो बिकाय ॥४५॥

या माया रघुनाथ कि बौरी खेलन चली अहेरा हो।
चतुर चिकनिया चुनि चुनि मारै काहु न राखै नेरा हो॥
मौनी बीर निगंबर मारे ध्यान धरे ते जोगी हो।
जंगल में के जंगम मारे माया किनहुँ न भोगी हो॥
बेद पढ़ंता पाँड़े मारे पुजा करंते स्वामी हो।
अर्थ बिचारत पंडित मारे बाँध्यो सकल लगामी हो॥
शृंगी ऋषि बन भीतर मारे शिर ब्रह्मा कै फोरी हो।
नाथ मछंदर चले पीठ दै सिंहलहूँ में बोरी हो॥
साकत के घर कर्त्ता धर्त्ता हरि-भक्तन की चेरी हो।
कहै कबीर सुनौ संतो ज्यों आवै त्यों फेरी हो॥४६॥
नागिन ने पैदा किया नागिन डँसि खाया।
कोइ कोइ जन भागत भए गुरु सरन तकाया॥
शृंगी ऋषि भागत भए बन माँ बसे जाई।
आगे नागिनि गाँसि के वोही डँसि खाई॥
नेजा धारी शिव बड़े भागे कैलासा।
जोति रूप परगट भई परबत परकासा॥
सुर नर मुनि जोगी जती कोइ बचन न पाया।
नोन तेल ढूँढ़ै नहीं कच्चै धरि खाया॥
नागिन डरपै संत से उहवाँ नहिं जावै।
कह कबीर गुरु-मंत्र से आपै मरि जावै॥४७॥
बूझहु पंडित करहु बिचारी पुरुष अहै की नारी।
ब्राह्मण के घर ब्राह्मणि होती जोगी के घर चेली।

कलमा पढ़ि पढ़ि भई तुरकिनी कवि में रहै अकेली ॥
बर नहिं बरै ब्याह नहिं करई पुत्र जन्म होनिहारी ।
कारे मँडे एक नहिं छाँडै अबहीं आदि कुँवारी ॥
रहै न मैके जाय न ससुरे साईं संग न सोवै ।
कह कबीर वह जुग जुग जीवै जाति-पाँति कुल खोवै ॥४८॥

तुम बूझहु पंडित कौन नारि ।
कोइ नाहिं बिआहल रह कुमारि ॥
येहि सब देवन मिलि हरिहि दीन्ह ।
तेहि चारो युग हरि संग लीन्ह ॥
यह प्रथमहिं पद्मिनी रूप आय ।
है साँपिनि सब जग खेदि खाय ॥
या बर युवती वे वर नाह ।
अति तेज तिया है रैनि ताह ॥
कह कबीर सब जग पियारि ।
यह अपने बलकवै रहै मारि ॥४९॥

कर पल्लव के बल खेल नारि ।
पंडित जो होय सो ले विचारि ॥
कपरा नहिं पहिरे रह उघारि ।
निर जीवै सो धन अति पियारि ॥
उलटी पलटी बाजै सो तार ।
काहुहि मारै काहुहि उबार ॥

कह कबीर दासन के दास।
काहुहि सुख दे काहुहि उदास ॥५०॥

संतो यक अचरज भो भाई। कहौं तो को पतिआई॥
एकै पुरुष एक है नारी ताकर करहु बिचारा।
एकै अंड सकल चौरासी भर्म भुला संसारा॥
एकै नारी जाल पसारा जग में भया अँदेसा।
खोजत काहू अंत न पाया ब्रह्मा बिष्णु महेसा॥
नाग-फाँस लीन्हें घट भीतर मूसि सकल जग खाई।
ज्ञान खड्ग बिन सब जग जूझै पकरि काहु नहिं पाई॥
आपुहि मूल फूल फुलवारी आपुहि चुनि चुनि खाई।
कह कबीर तेई जन उबरे जेहिं गुरु लियो जगाई ॥५१॥

जगत-उत्पत्ति

जीव रूप एक अंतर बासा। अंतर ज्योति कीन परगासा॥
इच्छा रूप नारि अवतरी। तासु नाम गायत्री धरी॥
तेहि नारी के पुत तिन भयऊ। ब्रह्मा बिष्णु शंभु नाम धरेऊ॥
तब ब्रह्मा पूछत महतारी। को तोर पुरुख काकर तुम नारी॥
तुम हम हम तुम और न कोई। तुम मोर पुरुष हमैं तोर जोई॥
बाप पूत की नारि एक एकै माय बिआय।
दिख्यो न पूत सपूत अस बापै चीन्है धाय ॥ ५२ ॥
अंतर ज्योति शब्द एक नारी। हरि ब्रह्मा ताके त्रिपुरारी॥
बखरी एक बिधातै कीन्हा। चौदह ठहर पाटि सो लीन्हा॥

हरि हर ब्रह्म महँ ता नाऊँ । ते पुनि तीन बसावल गाँऊँ ॥
ते पुन रचिनि खंड ब्रह्मंडा । छ दरशन छानबे पखंडा ॥
पेटहिं काहु न बेद पढ़ाया । सुनति कराय तुरुक नहिं आया ॥
नारी मोच्चित गर्भ प्रसूती । स्वाँग धरे बहुतै करतूती ॥
तहिया हम तुम एकै लोहू । एकै प्राण बिआयल मोहू ॥
एकै जनी जना संसारा । कौन ज्ञान ते भयो निनारा ॥
अवगति की गति काहु न जानी । एक जीभ कित कहौं बखानी ॥
जो मुख होय जीभ दस लाखा । तौ कोइ आइ महंतौ भाखा ॥
कहँहि कबीर पुकारि कै ई लेऊ व्यवहार ।
राम राम जाने बिना बूड़ि मुआ संसार ॥ ५३ ॥
प्रथम आरंभ कौन के भाऊ । दूसर प्रगट कीन सो ठाऊँ ॥
प्रगटे ब्रह्म विष्णु शिव शक्ती । प्रथमै भक्ति कीन्ह जिव उक्ती ॥
प्रगटि पवन पानी औ छाया । बहुविस्तर ह्वै प्रगटी माया ॥
प्रगटे अंड पिंड ब्रह्मंडा । पृथवी प्रगट कीन नवखंडा ॥
प्रगटे सिध साधक संन्यासी । ये सब लागि रहे अबिनासी ॥
प्रगटे सुर नर मुनि सब झारी । तेऊ खोजि परे सब हारी ॥
जीउ सीउ सब प्रगटे वै ठाकुर सब दास ।
कबिर और जानै नहीं राम नाम की आस ॥ ५४ ॥
प्रथम एक जो आवै आप । निराकार निरगुन निरजाप ॥
नहिं तब भूमि पवन आकासा । नहिं तब पावक नीर निवासा ॥
नहि तब पाँच तत्व गुन तीनी । नहिं तब सृष्टी माया कीनी ॥
नहिं तब आदि अंत मध तारा । नहिं तब अंध धुंध उँजियारा ॥

नहिं तब ब्रह्मा विष्णु महेसा । नहिं तब सूरज चाँद गनेसा ॥
नहिं तब मच्छ कच्छ बाराहा । नहिं तब भादों फागुन माहा ॥
नहिं तब कंस कृष्ण बलि बावन । नहिं तब रघुपति नहिं तब रावन॥
नहिं तब सरगुन सकल पसारा । नहिं तब धारे दस अवतारा ॥
नहिं तब सरसुति जमुना गंगा । नहिं तब सागर समुँद तरंगा ॥
नहिं तब तीरथ व्रत जग पूजा । नहिं तब देव दैत अरु दूजा ॥
नहिं तब पाप पुन्न गुरु सीखा । नहिं तब पढ़ना गुनना लीखा ॥
नहिं तब बिद्या बेद पुराना । नहिं तब भए कतेब कुराना ॥
कहैं कबीर बिचारि कै तब कुछ किरतिम नाहिं ।
परम पुरुख तहँ आपही अगम अगोचर माहिं ॥ ५५ ॥
करता एक अगम है आप । वाके कोई माय न बाप ॥
करता के नहिं बंधु औ नारी । सदा अखंडित अगम अपारी ॥
करता कछु खावै नहिं पीवै । करता कबहूँ मरै न जीवै ॥
करता के कुछ रूप न रेखा । करता के कुछ बरन न भेखा ॥
ताके जात गोत कछु नाहीं । महिमा बरनि न जाय मो पाहीं ॥
रूप अरूप नहीं तेहि नाऊँ । बर्न अबर्न नहीं तेहि ठाऊँ ॥
कहैं कबीर विचारि कै जाके बर्न न गाँव ।
निराकार औ निर्गुना है पूरन सब ठाँव ॥ ५६ ॥
करता किरतिम बाजी लाई । ओंकार ते सृष्टि उपाई ॥
पाँच तत्त तीनों गुन साजा । ताते सब किरतिम उपराजा ॥
किरतिम धरती और अकास । किरतिम चंद सूर परकास ॥
किरतिम पाँच तत्त गुन तीनी । किरतिम सृष्टि जु माया कीनी ॥

किरतिम आदि अंत मध तारा । किरतिम अंध कूप उँजियारा ॥
किरतिम सरगुन सकल पसारा । किरतिम कहिए दस अवतारा ॥
किरतिम कंस और बलि बावन । किरतिम रघुपति किरतिम रावन ॥
किरतिम कच्छ मच्छ बाराहा । किरतिम भादों फागुन माहा ॥
किरतिम सहर समुद्र तरंगा । किरतिम सरसुति जमुना गंगा ॥
किरतिम इसमृत बेद पुराना । किरतिम काजि कतेब कुराना ॥
किरतिम जोग जो पावत पूजा । किरतिम देवी देव जो दूजा ॥
किरतिम पाप पुन्न गुरु सीखा । किरतिम पढ़ना गुनना सीखा ॥
कहै कबीर बिचारि कै कृतिम न करता होय ।
यह सब बाजी कृतिम है साँच सुनो सब कोय ॥ ५७ ॥
करता एक और सब बाजी । ना कोई पीर मसायख काजी ॥
बाजी ब्रह्मा बिष्णु महेसा । बाजी इन्दर चंद गनेसा ॥
बाजी जल थल सकल जहाना । बाजी जान जमीं असमाना ॥
बाजी बरनों इसमृति बेदा । बाजीगर का लखै न भेदा ॥
बाजी सिध साधक गुरु सीखा । जहाँ तहाँ यह बाजी दीखा ॥
बाजी जोग जज्ञ ब्रत पूजा । बाजी देवी देवल दूजा ॥
बाजी तीरथ ब्रत आचारा । बाजी जोग यज्ञ व्यवहारा ॥
बाजी जल थल सकल किवाई । बाजी सों बाजी लिपटाई ॥
बाजी का यह सकल पसारा । बाजी माहिं रहै संसारा ॥
कह कबीर सब बाजी माहीं । बाजीगर को चीन्हैं नाहीं ॥५८॥

मन-महिमा

संतो यह मन है बड़ जालिम ।
जासौं मन सों काम परो है तिसही ह्वैहै मालुम ॥
मन कारण की इनकी छाया तेहि छाया में अटके ।
निरगुन सरगुन मन की बाजी खरे सयाने भटके ॥
मनही चौदह लोक बनाया पाँच तत्व गुण कीन्हे ।
तीन लोक जीवन बस कीन्हे परै न काहू चीन्हे ॥
जो कोउ कह हम मन को मारा जाके रूप न रेखा ।
छिन छिन में कितनो रँग लावै जे सपनेहुँ नहिं देखा ॥
रासातल बक्कइस ब्रह्मंडा सब पर अदल चलावै ।
षट रस में भोगा मन राजा सो कैसे के पावै ॥
सब के ऊपर नाम निरच्छर तहँ लै मन को राखै ।
तब मन की गति जानि परै यह सत कबीर मुख भाखै ॥ ५९ ॥

निर्बाण पद

पंडित सोधि कहहु समुझाई । जाते आवागवन नसाई ॥
अर्थ धर्म औ काम मोक्ष फल कौन दिशा बस भाई ॥
उत्तर दक्खिन पूरब पच्छिम सरग पतालहिं माहे ।
बिन गोपाल ठौर नहिं कतहूँ नरक जात धौं काहे ॥
अनजाने को नरक सरग है हरि जाने को नाहीं ।
जेहि डर को सब लोग डरत हैं सो डर हमरे नाहीं ॥

पाप पुन्न की संका नाहीं नरक सरग नहिं जाहीं ।
कहै कबीर सुनो हो संतो जहँ पद तहाँ समाहीं ।। ६० ।।

चलो सखी बैकुंठ विष्णु माया जहाँ ।
चारिउ मुक्ति निदान परम पद ले तहाँ ।।
आगे शून्य स्वरूप अलख नहिं लखि परै ।
तत्व निरंजन जान भरम जनि चित धरै ।।
आगे है भगवंत निरच्छर नाँव है ।
तीन मिटावै कोटि बनावै ठाँव है ।।
आगे सिंधु बलंद महा गहिरो जहाँ ।
को नैया लै जाय उतारै को तहाँ ।।
कर अजया की नाव तो सुरति उतारिहै ।
लेइहौं अज्जर नाउ तो हंस उबारिहै ।।
पार उतर पुरुषोत्तम परख्यो जान है ।
तहँवा धाम अखंड तो पद निर्बान है ।।
तहँ नहिं चाहत मुक्ति तो पद डारे फिरै ।
सुनत सनेही हंस निरंतर उच्चरै ।।
बारह मास बसंत अमरलीला जहाँ ।
कहैं कबीर बिचार अटल ह्वै रहु तहाँ ।। ६१ ।।

सत्त सुकृत सत नाम जगत जानै नहीं ।
बिना प्रेम परतीत कहा मानै नहीं ।।
जिव अनंत संसार न चीन्हत पीव को ।
कितना कह समझाय चौरासिक जीव को ।।

आगे धाम अखंड सो पद निरबान है।
भूख नींद ना वहाँ निःअच्छर नाम है ॥
कहैं कबीर पुकारि सुना मनभावना।
हंसा चल सत लोक बहुरि नहिं आवना ॥ ६२ ॥

हँसा लोक हमारे अइहौ, ताते अमृत फल तुम पइहौ ॥
लोक हमारा अगम दूर है, पार न पावै कोई।
अति आधीन होय जो कोई, ताको देउँ लखाई ॥
मिरत लोक से हंसा आए, पुहुप दीप चलि जाई।
अंबु दीप में सुमिरन करिहौ, तब वह लोक दिखाई ॥
माटी का पिंड छूट जायगा, औ यह सकल बिकारा।
ज्यों जल माहिं रहत है पुरइन, ऐसे हंस हमारा ॥
लोक हमारे अइहौ हंसा, तब सुख पइहौ भाई।
सुखसागर असनान करोगे, अजर अमर है जाई ॥
कहैं कबीर सुनो धर्मदासा, हंसन करी बधाई।
सेत सिंहासन बैठक देहैं, जुग जुग राज कराई ॥६३॥

सतगुरु महिमा और लक्षण

चल सतगुरु की हाट ज्ञान बुध लाइए।
कर साहब सों हेत परम पद पाइए ॥
सतगुरु सब कछु दीन देन कछु नहिं रह्यो।
हमहिं अभागिन नारि छोरि सुख दुख लह्यो ॥

गई पिया के महल हिया अँग ना रची ।
रह्यो कपट हिय छाय मान लज्जा भरी ॥
जहाँ गैल सितहिली चढ़ौं गिरि गिरि परौं ।
उठहुँ सम्हारि सम्हारि चरण आगे धरौं ॥
पिया मिलन की चाह कौन तेरे लाज है ।
अरघ मिलो किन जाय भला दिन आज है ॥
भला वना संजोग प्रेम का चोलना ।
तन मन अरपौं सीस साहब हँस बोलना ॥
जो गुरु रूठे होंय तो तुरत मनाइए ।
हुईए दीन अधीन चूकि बकसाइए ॥
जो गुरु होंय दयाल दया दिल हेरिहैं ।
कोटि करम कटि जायँ पलक छिन फेरिहैं ॥
कह कबीर समुझाय समुझ हिरदै धरो ।
जुगन जुगन कर राज कुमति अस परिहरो ॥ ६४ ॥
भाई कोइ सतगुरु संत कहावै, नैनन अलख लखावै ।
डोलत डिगै न बोलत बिसरै जब उपदेश दृढ़ावै ॥
प्रानपूज्य किरिया ते न्यारा सहज समाधि सिखावै ।
द्वार न रूँधै पवन न रोकै नहिं अनहद अरुझावै ॥
यह मन जाय जहाँ लग जबहीं परमातम दरसावै ।
करम करै निहकरम रहै जो ऐसौ जुगुत लखावै ॥
सदा विलास त्रास नहिं मन में भोग में जोग जगावै ।
धरती त्यागि अकासहुँ त्यागै अधर मँड़इया छावै ॥

सुन्न सिखर के सार सिला पर आसन अचल जमावै ।।
भीतर रहा सो बाहर देखै दूजा दृष्टि न आवै ।
कहत कबीर बसा है हंसा आवागमन मिटावै ।।६५।।

साधो सो सतगुरु मोहिं भावै ।
सत्त नाम का भर भर प्याला आप पिवे मोहिं प्यावे ।।
मेले जाय न महँत कहावै पूजा भेंट न लावै ।
परदा दूर करै आँखिन का निज दरसन दिखलावै ।।
जाके दरसन साहब दरसैं अनहद शब्द सुनावै ।
माया के सुख दुख कर जानै संग न सुपन चलावै ।।
निसि दिन सत-सँगति में राचै शब्द में सुरत समावै ।
कह कबीर ताको भय नाहीं, निरभय पद परसावै ।।६६।।

दसो दिसा कर मेटो धोखा । सो कँड़हार बैठ ही चोखा ।।
दसो दिसा कर लेखा जानै । सो कँड़हार आरती ठानै ।।
दस इंद्री कै पारख पावै । सो कँड़हार आरती गावै ।।
जो नहिं जानै एतिक साजै । चौका युक्ति करै केहि काजै ।।
हिंस कारन करहीं गरुआई । बिगरै ज्ञान जो पंथ पराई ।।
पद साखी अरु ग्रंथ दृढ़ावै । बिन पारख उत्तम घर पावै ।।
शब्द साखि सिखि पारस करही । होय भूत पुनि नरकहिं परही ।।
बिना भेद कँड़हार कहावै । आगिल जन्म स्वान को पावै ।।
पद साखी नहिं करहि बिचारा । भूँकि भूँकि जस मरै सियारा ।।
पद साखी है भेद हमारा । जो बूझै सो उतरै पारा ।।
जब लग पूरा गुरू न पावै । तब लग भव जल फिरि फिरि आवै ।।

पूरा गुरू जो होय लखावै । शब्द निरखि परगट दिखलावै ।।
एक बार जिय परचौ पावै । भव जल तरै बार नहिं लावै ।।
शब्द भेद जो जानही सो पूरा कँड़हार ।
हक कबीर धूमच्छ है सोहं शब्दहिं पार ।। ६७ ।।
साँचे सतगुरु की बलिहारी । जिन यह कुंजी कुफुल उघारी ।।
नख सिख साहब है भरपूरा । सो साहब क्यों कहिए दूरा ।।
सतगुरु दया अमी रस भीजै । तन मन धन सब अर्पन कीजै ।।
कहत कबीर संत सुखदाई । सुखसागर असथिर घर पाई ।।६८।।

संत लक्षण

हरिजन हंस दशा लिए डोलैं । निर्मल नाम चुनी चुनि बोलैं ।।
मुक्ताहल लिए चोंच लुभावैं । मौन रहैं कै हरि-गुन गावैं ।।
मान सरोवर तट के बासी । राम-चरण चित अंत उदासी ।।
काग कुबुद्धि निकट नहिं आवै । प्रति दिन हंसा दरसन पावै ।।
नीर छीर को करै निबेरा । कहै कबीर सोई जन मेरा ।।६९।।
सील सँतोख ते सब्द जा मुख बसे, संतजन जौहरी साँच गानी ।
बदन बिकसित रहै ख्याल आनंद में, अधर में मधुर मुसकात बानी ।
साँच डोलै नहीं झूठ बोलै नहीं, सुरत में सुमति सोइ श्रेष्ठ ज्ञानी ।
कहत हौं ज्ञान पुकारि के सबन सों, देत उपदेस दिल दर्द जानी ।
ज्ञान को पूर है रहनि को सूर है, दया की भक्ति दिल माहिं ठानी ।
ओर ते छोर लौं एक रस रहत है, ऐस जन जगत में बिरले प्रानी ।
ठग्ग बट-पार संसार में भरि रहे, हंस की चाल कहँ काग जानी ।

चपल ता चतुर हैं बने बहु चीकने, बात में ठीक पै कपट ठानी ।
कहा तिनसों कहों दया जिनके नहीं, घात बहुतै करैं बकुल ध्यानी ।
दुर्मती जीव की दुबिध छूटै नहीं, जन्मजन्मात्र पड़ नर्क खानी ।
काग कूबुद्धि सूबुद्धि पावैं कहाँ, कठिन कट्ठोर बिकराल बानी ।
अगिन के पुँज हैं सितलता तन नहीं, अमृत औ बिष दोउ एक खानी ।
कहा साखी कहे सुमति जागी नहीं,साँच की चाल बिन धूर धानी ।
सुकृति और सन्त की चाल साँची सही,काग बक अधम की कौन खानी ।
कहै कब्बीर कोउ सुघर जन जौहरी, सदा सब धान पय नीर छानी ॥ ७० ॥

ख्याल

है साधू संसार में कँवला जल माहीं ।
सदा सरबदा संग रहै परसत जल नाहीं ॥
जल केरी ज्यों कूकही जल माहिं रहानी ।
पंख पानी बेधै नहीं कछु असर न जानी ॥
मीन तरै जल ऊपरै जल लगै न भारा ।
आड़ अटक मानैं नहीं पैरे जल धारा ॥
जैसे सीप समुद्र में चित देत अकासा ।
कुंभ कला है खेलही तस साहेब दासा ॥
जुगति जमूरा पाइकै सरपे लपटाना ।
बिख वाके बेधे नहीं गुरु गम्म समाना ॥
दूध भात घृत भोजना बहु पाक मिठाई ।
जिभ्या लेस लगैं नहीं उनके रोसनाई ॥

बामी में बिखधर बसै कोइ पकरि न पावै।
कह कबीर गुरु-मंत्र से सहजै चलि आवै ॥७१॥

दरस दिवाना बावरा अलमस्त फकीरा।
एक अकेला ह्वै रहा अस मत का धीरा ॥
हिरदे में महबूब है हर दम का प्यारा।
पीएगा कोइ जौहरी गुरु-मुख मतवाला ॥
पियत पियाला प्रेम का सुधरे सब साथी।
आठ पहर झूमत रहै जस मैगल हाथी ॥
बंधन्न काटे मोह के बैठा निरसंका।
वाके नजर न आवता क्या राजा रंका ॥
धरती तो आसन किया तंबू असमाना।
चोला पहिरा खाक का रह पाक समाना ॥
सेवक को सतगुरु मिले कछु रहि न तबाही।
कह कबीर निज घर चलो जहँ काल न जाही ॥७२॥

जेहि कुल भगत भाग बड़ होई।
अवरन बरन न गनिय रंक धनि बिमल बास निज सोई ॥
बाम्हन छत्री बैस सूद्र सब भगत समान न कोई।
धन वह गाँव ठाँव असथाना है पुनीत सँग लोई ॥
होत पुनीत जपै सतनामा आपु तरै तारै कुल दोई।
जैसे पुरइन रह जल भीतर कह कबीर जग में जन सोई ॥७३॥

वेदांतवाद

साधो सतगुरु अलख लखाया आप आप दरसाया ।
बीज मध्य ज्यों बृच्छा दरसै बृच्छा मद्धे छाया ।
परमातम में आतम तैसे आतम मद्धे माया ॥
ज्यों नभ मद्धे सुन्न देखिए सुन्न अंड आकारा ।
निह अच्छर तें अच्छर तैसे अच्छर छर बिस्तारा ॥
ज्यों रवि मद्धे किरिन देखिए किरिन मध्य परकासा ।
परमातम में जीवब्रह्म इमि जीव मध्य तिमि स्वाँसा ॥
स्वाँसा मद्धे शब्द देखिए अर्थ शब्द के माहीं ।
ब्रह्म ते जीव जीव ते मन इमि न्यारा मिला सदाहीं ॥
आपहि बीज बृच्छ अंकूरा आप फूल फल छाया ।
आपहि सूर किरिन परकासा आप ब्रह्म जिव माया ॥
अंडाकार सुन्न नभ आपै स्वाँस शब्द अरथाया ।
निह अच्छर अच्छर छर आपै मन जिव ब्रह्म समाया ॥
आतम में परमातम दरसै परमातम में झाँईं ।
झाँईं में परछाईं दरसै लखै कबीरा साईं ॥७४॥

पानी बिच मीन पियासी, मोहिं सुन सुन आवत हाँसी ।
आतम ज्ञान बिना सब सूना, क्या मथुरा क्या कासी ॥
घर में वस्तु धरी नहिं सूझै, बाहर खोजत जासी ॥
मृग की नाभि माहिं कस्तूरी, बन बन खोजत जासी ।
कहैं कबीर सुनो भाई साधो सहज मिलै अबिनासी ॥७५॥

चंदा झलकै एहि घट माँहीं । अंधो आँखिन सूझै नाहीं ॥
एहि घट चंदा एहि घट सूर । एहि घट गाजै अनहद तूर ॥
एहि घट बाजै तबल निसान । बहिरा शब्द सुनै नहिं कान ॥
जब लग मेरी मेरी करै । तब लग काज न एको सरै ॥
जब मेरी ममता मरि जाय । तब प्रभु काज सँवारे आय ॥
जब लग सिंह रहै बन माहिं । तब लग वह बन फूलै नाहिं ॥
उलटा स्यार सिंह को खाय । उकठा बन फूलै हरिआय ॥
ज्ञान के कारन करम कमाय । होय ज्ञान तब करम नसाय ॥
फल कारन फूलै बनराय । फल लागे पर फूल सुखाय ॥
मिरग पास कस्तूरी बास । आप न खोजै खोजै घास ॥
पारै पिंड मीन लै खाई । कहैं कबीर लोग बौराई ॥७६॥

अवधू अंध कूप अँधियारा ।
या घट भीतर सात समुंदर याहि में नदी नारा ।
या घट भीतर काशि द्वारिका याहि में ठाकुरद्वारा ॥
या घट भीतर चंद सूर है याहि में नौ लख तारा ।
कहैं कबीर सुनो भाई साधो याहि में सत करतारा ॥७७॥

साधो एक आपु जगमाहीं ।
दूजा करम भरम है किरतिम ज्यों दरपन में छाहीं ॥
जल तरंग जिमि जल ते उपजै फिर जल माहिं रहाई ।
काया झाईं पाँच तत्त की बिनसे कहाँ समाई ॥
या बिधि सदा देह गति सबकी या बिधि मनहिं बिचारो ।
आया होय न्याव करि न्यारो परम तत्त्व निरवारो ॥

सहजै रहै समाय सहज में ना कहुँ आय न जावै।
धरै न ध्यान करै नहिं जप तप राम रहीम न गावै॥
तीरथ बरत सकल परित्यागै सुन्न डोर नहिं लावै।
यह धोखा जब समुझि परै तब पूजै काहि पुजावै॥
जोग जुगत में भरम न छूटै जब लग आप न सूझै।
कह कबीर सोइ सतगुरु पूरा जो कोइ समुझै बूझै ॥७८॥
साधो सहजै काया सोधो।
करता आपु आप में करता लख मन को परमोधो॥
जैसे बट का बीज ताहि मैं पत्र फूल फल छाया।
काया मद्धे बुंद बिराजै बुंदै मद्धे काया॥
अग्नि पवन पानी पिरथी नभ ता बिन मेला नाहीं।
काजी पंडित करो निबेरा काके माहिं न साँईं॥
साँचे नाम अगम की आसा है वाही में साँचा।
करता बीज लिए है खेतै त्रिगुन तीन तत पाँचा॥
जल भरि कुंभ जलै बिच धरिया बाहर भीतर सोई।
उनको नाम कहन को नाँहीं दूजा धोखा होई॥
कठिन पंथ सतगुरु को मिलना खोजत खोजत पाया।
इक लग खोज मिटी जब दुबिधा ना कहुँ गया न आया॥
कहैं कबीर सुनो भाइ साधो सत्त शब्द निज सारा।
आपा मद्धे आपै बोलै आपै सिरजनहारा॥ ७९॥
दरियाव की लहर दरियाव है जी दरियाव औ लहर भिन्न कायम।
उठे तो नीर है बैठता नीर है कहो किस तरह दूसरा होयम॥

उसी नाम को फेर के लहर धारो लहर के कहे क्या नीर खोयम ।
जत्त ही फेर सब जक्त है ब्रह्म में ज्ञान करि देख कब्बीर गोयम ॥८०॥

मन तू मानत क्यों न मना रे ।
कौन कहन को कौन सुनन को दूजा कौन जना रे ॥
दरपन में प्रतिबिंब जो भासे आप चहूँ दिसि साई ।
दुबिधा मिटै एक जब होवै तो लख पावै कोई ॥
जैसे जल ते हेम बनत है हेम धूम जल होई ।
तैसे या तत वाहू तत सों फिर यह अरु वह सोई ॥
जो समझै तो खरी कहन है ना समझै तो खोटी ।
कह कबीर दोऊ पख त्यागै ताकी मति है मोटी ॥८१॥

ना मैं धरमी नाहिं अधरमी ना मैं जती न कामी हो ।
ना मैं कहता न मैं सुनता ना मैं सेवक स्वामी हो ॥
ना मैं बंधा ना मैं मुक्ता ना निरबँध सरबंगी हो ।
ना काहू से न्यारा हूआ ना काहू को संगी हो ॥
ना हम नरक लोक को जाते ना हम सरग सिधारे हो ।
सब ही कर्म हमारा कीया हम कर्म्मन ते न्यारे हो ॥
या मत को कोइ बिरला बूझै सो सतगुरु हो बैठे हो ।
मत कबीर काहू को थापे मत काहू को मेटे हो ॥ ८२ ॥

फहम करु फहम करु फहम करु मान यह फहम बिनु फिकिर नहि मिटै तेरी । सकल उँजियार दीदार दिल बीच है जौक औ शौक सब मौज तेरी ॥ बोलता मस्त मस्ताने महबूब है इना सा अदल कहु कौन केरी । एक ही नूर दरियाव वह

देखिए फैल वह रहा सब सृष्टि में री। आप ही गन्नी गरीब है आप ही आप गन्नीम हो आप घेरी। आप ही चोर पुनि साहु है आप ही ज्ञान कथि आप ही आप सुने री। आप ही हरी हरिनाकुसा आप ही आप नरसिंह हो आप गेरी। आप ही रावना आप रघुनाथ जी आपको आप ही आप दले री। आप बलि होइकै दान बसुधा किया आप हो बावना आप छले री। आप ही कृष्ण है, कंस है आप ही, आप को आप आपहि हते री। आप ही भक्त, भगवंत है आप ही और नहिं दूसरा अर्ज सुने री ॥ ८३ ॥

मुक्त होवै छुटै बँधन सेती तब कौन मरै तिसै कौन मारै।
अहंकार तजै भय रहित होवै तब कौन तरै तिसै कौन तारै ॥
मरना जीना है ताहि को जी जो आपु को आपु बिसारि डारै।
चैतन्य होवै उठि जागि देखै दया देखकै जोति कबीर धारै ॥८४॥

यह तो एक हुबाब है जी साकिन दरियाव के बीच सदा।
हुब्बाब तो ऐन दरियाव है जी देखो नहिं वह से मौज जुदा ॥
हुब्बाब तो है उठनेहि में जी है बैठने में मतलब्ब खुदा।
होबाब दरियाव कबीर है जो दुजा नाम बोलै सो बुदबुदा ॥८५॥

घट घट में रटना लागि रही परगट हुआ अलेख है जी।
कहुँ चोर हुआ कहुँ साह हुआ कहुँ बाम्हन है कहुँ सेख है जी।
बहुरंगी प्यारा सबसे न्यारा सब ही में एक भेख है जी।
कब्बीर मिला मुरशिद उसमें हम तुम नाहीं वह एक है जी ॥८६॥

असमान का आसरा छोड़ प्यारे उलटि देखो घट अपना जी ।
तुम आप में आप तहकीक करो तुम छोड़ो मन की कल्पना जी ।
बिन देखे जो निज नाम जपे सो कहिए रैन का सपना जी ।
कबीर दीदार परगट देखा तब जाप कौन का जपना जी ।।८७।।

अपनपो आप ही बिसरो ।
जैसे सोनहा काँच मँदिर में भरमत भूँकि मरो ।
ज्यों केहरि बपु निरखि कूप जल प्रतिमा देखि परो ।
ऐसेहि मदगज फटिक शिला पर दसननि आनि अरो ।
मरकट मुठी स्वाद ना बिसरे घर घर नटत फिरो ।
कह कबीर ललनी के सुवना तोहि कौने पकरो ।।८८।।

साम्यवाद

आपुहि करता भे करतारा । बहु बिधि बासन गढ़ै कुम्हारा ।।
बिधना सबै कीन यक ठाऊँ । अनिक जतन कै बनक बनाऊँ ।।
जठर अग्नि महँ दिय परजाली । तामें आप भए प्रतिपाली ।।
बहुत जतन कै बाहर आया । तब शिव शक्ती नाम धराया ।।
घर को सुत जो होय अयाना । ताके संग न जाय सयाना ।।
साँची बात कहौं मैं अपनी । भया दिवाना और कि सपनी ।।
गुप्त प्रगट है एकै मुद्रा । काको कहिए ब्राह्मन शूद्रा ।
झूठ गरब भूलै मति कोई । हिंदू तुरुक झूठ कुल दोई ।।
जिन यह चित्र बनाइया साँची सूरत ढारि ।
कह कबीर ते जन भले जे तेहि लेहिं बिचारि ।।८९।।

जो तोहि कर्ता वर्ण बिचारा । जन्मत तीन दंड अनुसारा ॥
जन्मत शूद्र भए पुनि शूद्रा । कृत्रिम जनेउ घालि जगदुंद्रा ॥
जो तुम बाम्हन बाम्हनि जाए । और राह तुम काहे न आए ॥
जो तू तुरुक तुरुकिनी जाया । पेटै काहे न सुनति कराया ॥
कारी पीरी दूहौ गाई । ताकर दूध देहु बिलगाई ॥
छाँडु कपट नर अधिक सयानी । कह कबीर भजु सारँगपानी ॥६०॥

दुइ जगदीश कहाँ ते आए कहुँ कौने भरमाया ।
अल्ला राम करिम केशव हरि हजरत नाम धराया ॥
गहना एक कनक ते गहना तामें भाव न दूजा ।
कहन सुनन को दुइ कर थाते एक नेवाज एक पूजा ॥
वही महादेव वही मुहम्मद ब्रह्मा आदम कहिए ।
कोइ हिंदू कोइ तुरुक कहावै एक जमीं पर रहिए ॥
वेद किताब पढ़ै वे कुतबा वे मौलना वे पाँड़े ।
बिगत बिगत कै नाम धरायो एक माटी के भाँड़े ॥
कह कबीर ते दोनों भूलें रामहिं किनहु न पाया ।
वे खसिया वे गाय कटावैं वादै जन्म गँवाया ॥६१॥

ऐसो भरम बिगुरचन भारी ।
वेद किताब दीन औ दोजख को पुरुषा को नारी ॥
माटी के घर साज बनाया नादे बिंदु समाना ।
घट बिनसे क्या नाम धरहुगे अहमक खोज भुलाना ॥
एकै हाड़ त्वचा मल मूत्रा रुधिर गुदा एक मुद्रा ।
एक बिंदु ते सृष्टि रच्यो है को ब्राह्मण को शूद्रा ॥

रजगुण ब्रह्म तमोगुण शंकर सतोगुणी हरि सोई ।
कहै कबीर राम रमि रहिया हिंदू तुरुक न कोई ।।९२।।

भक्ति-उद्रेक

ओढ़न मेरो राम नाम मैं रामहिं को बनिजारा हो ।
राम नाम को करौं बनिज मैं हरि मोरा हटवारा हो ।।
सहस नाम को करौं पसारा दिन दिन होत सवाई हो ।
कान तराजू सेर तिनपौवा डहकिन ढोल बजाई हो ।।
सेर पसेरी पूरा कर ले पासँघ कतहुँ न जाई हो ।
कहैं कबीर सुनो हो संतो जोरि चले जहँड़ाई हो ।।९३।।
तोको पीव मिलैंगे घूँघट को पट खोल रे ।
घट घट मैं वह साँई रमता कटुक बचन मत बोल रे ।
धन जोवन को गरब न कीजै झूठा पँचरँग चोल रे ।
सुन्न महल में दियना वारि ले आसा सों मत डोल रे ।
जाग जुगुत सों रंग-महल में पिय पायो अनमोल रे ।
कहैं कबीर अनंद भयो है बाजत अनहद ढोल रे ।।९४।।
पायो सतनाम गरै कै हरवा ।
साँकर खटोलना रहनि हमारी दुबरे दुबरे पाँच कँहरवा ।
ताला कुंजी हमें गुरु दीन्हो जब चाहौं तब खोलौं किवरवा ।
प्रेम प्रीति की चुनरी हमारी जब चाहौं तब नाचौं सहरवा ।
कहैं कबीर सुनो भाई साधो बहुर न ऐबै एही नगरवा ।।९५।।

मिलना कठिन है, कैसे मिलौंगी पिय जाय ।
समुझि सोच पग धरौं जतन से बार बार डिग जाय ।
ऊँची गैल राह रपटीली पाँव नहीं ठहराय ।
लोक-लाज कुल की मरजादा देखत मन सकुचाय ।
नैहर बास बसा पीहर में लाज तजी नहिं जाय ।
अधर भूमि जहँ महल पिया का हम पै चढ़ो न जाय ।
धन भई बारी पुरुख भए भोला सुरत झकोरा खाय ।
दूती सतगुरु मिले बीच में दीन्हों भेद बताय ।
साहब कबिरा पिया सों भेंट्यो सीतल कंठ लगाय ॥९६॥
दुलहिन गावो मंगलचार । हमरे घर आए राम भतार ।
तन रति कर मैं मन रति करिहौं पाँचों तत्त्व बराती ।
रामदेव मोहिं ब्याहन आए मैं जोबन मदमाती ।
सरिर सरोवर वेदी करिहौं ब्रह्मा वेद उचारा ।
रामदेव सँग भाँवर लैहौं धन धन भाग हमारा ।
सुर तैंतीसो कौतुक आए मुनिवर सहस अठासी ।
कह कबीर मोहिं ब्याहि चले हैं पुरुष एक अविनासी ॥९७॥
हरि मोर पीव मैं राम की बहुरिया ।
राम मोर बड़ा मैं तन की लहुरिया ॥
हरि मोर रहँटा मैं रतन पिउरिया ।
हरि को नाम लै कातल बहुरिया ॥
छ मास ताग बरस दिन ककुरी ।
लोग बोले भल कातल बपुरी ॥

कहै कबीर सूत भल काता।
रहँटा न होय मुक्ति कर दाता ।।९८।।

साँईं के सँग सासुर आई।
संग न सूती स्वाद न जानी जोबन गो सपने की नाँईं ।।
जना चारि मिलि लगन सोचाई जना पाँच मिलि मंडप छाई।
सखी सहेली मंगल गावैं दुख सुख माथे हरदि चढ़ाई ।।
नाना रूप परी मन भौंवरि गाँठी जोरि भई पति आई।
अरघ देइ देइ चली सुवासिनि चौकहिं राँड़ भई सँग साई ।।
भयो बियाह चली बिन दूलह बाट जान समधी समुझाई।
कहै कबीर हम गौने जैबै तरब कंत ले तूर बजाई ।।९९।।

विरह-निवेदन

बालम आओ हमारे गेह रे। तुम बिन दुखिया देह रे ।।
सब कोइ कहै तुमारी नारी मोको यह संदेह रे।
एकमेक ह्वै सेज न सोवै तब लग कैसे नेह रे ।।
अन्न न भावे नींद न आवे गृह बन धरे न धीर रे।
ज्यों कामी को कामिनि प्यारी ज्यों प्यासे को नीर रे ।।
है कोइ ऐसा पर-उपकारी पिय से कहै सुनाय रे।
अब तो बेहाल कबीर भए हैं बिन देखे जिउ जाय रे ।।१००।।

सतगुरु हो महाराज, मोपै साईं रँग डारा।
शब्द की चोट लगी मेरे मन में बेध गया तन सारा ।।
औषध मूल कछू नहिं लागे क्या करे बैद बिचारा।

सुर नर मुनि जन पीर औलिया कोइ न पावै पारा ।
साहब कबिर सर्व रँग रँगिया सब रंग से रंग न्यारा ॥१०१॥

कैसे दिन कटिहै जतन बताए जइयो ।
एहि पार गंगा वोही पार जमुना
बिचवाँ मँड़इया हम काँ छवाए जइयो ॥
अँचरा फारि के कागद बनाइन
अपनी सुरतिया हियरे लिखाए जइयो ।
कहत कबीर सुनो भाई साधो
बहियाँ पकरि के रहिया बताए जइयो ॥ १०२ ॥

प्रीत लगी तुअ नाम की पल बिसरै नाहीं ।
नजर करो अब मेहर की मोहिं मिलो गुसाईं ॥
बिरह सतावे मोहिं को जिव तड़पै मेरा ।
तुम देखन की चाव है प्रभु मिलो सबेरा ॥
नैन तरसे दरस को पल पलक न लागै ।
दरद बंद दीदार का निस बासर जागै ॥
जो अब प्रीतम मिलै करूँ निमिख न न्यारा ।
अब कबीर गुरु पाइया मिला प्रान प्यारा ॥ १०३ ॥

हूँ बारी मुख फेर पियारे । करवट दे मोहिं काहे को मारे ।
करवत भला न करवट तेरी । लाग गरे सुन बिनती मोरी ॥
हम तुम बीच भया नहिं कोई । तुमहिं सो कंत नारि हम सोई ।
कहत कबीर सुनो नर लोई । अब तुम्हारी परतीत न होई॥ १०४॥

शब्द की चोट लगी तन में। घर नहिं चैन चैन नहिं बन में ॥
ढूँढत फिरों पीव नहीं पावौं। औषध मूल खाय गुजरावौं ॥
तुम से बैद न हम से रोगी। बिन दिदार क्यों जिए बियोगी ॥
एकै रंग रँगी सब नारी। ना जानों को पिय की प्यारी ॥
कह कबीर कोइ गुरमुख पावै। बिन नैनन दीदार दिखावै॥१०५॥
चली मैं खोज में पिय की। मिटी नहिं सौच यह जिय की ॥
रहै नित पास ही मेरे। न पाऊँ यार को हेरे ॥
बिकल चहुँ ओर को धाऊँ। तबहुँ नहिं कंत को पाऊँ ॥
धरों केहि भाँति से धीरा। गयो गिर हाथ से हीरा ॥
कटी जब नैन की झाँईं। लख्यो तब गगन में साँईं ॥
कबीरा शब्द कहि भासा। नयन में यार को बासा॥१०६॥

अबिनासी दुलहा कब मिलिहौ, भक्तन के रछपाल।
जल उपजी जल ही सों नेहा, रटत पियास पियास।
मैं ठाढ़ी बिरहिन मग जोऊँ, प्रियतम तुमरी आस ॥
छोड़े गेह नेह लगि तुम सों, भइ चरनन लवलीन।
ताला बेलि होत घट भीतर, जैसे जल बिन मीन ॥
दिवस रैन भूख नहिं निद्रा, घर अँगना न सुहाय।
सेजरिया बैरिन भइ हमको, जागत रैन बिहाय ॥
हम तो तुमरी दासी सजना, तुम हमरे भरतार।
दीन दयाल दया करि आओ, समरथ सिरजनहार ॥
कै हम प्रान तजत हैं प्यारे, कै अपना कर लेव।
दास कबीर बिरह अति बाढ़ेउ, हमकै दरसन देव ॥१०७॥

सुन सतगुरु की तान नींद नहिं आती ।
बिरहा में सूरत गई पछाड़े खाती ॥
तेरे घर में हुआ अँधेर भरम की राती ।
नहिं भई पिया से भेंट रही पछताती ॥
सिख नैन सैन से खोज ढूँढ़ ले आती ।
मेरे पिया मिले सुख चैन नाम गुन गाती ॥
तेरि आवा गमन कि त्रास सबै मिट जाती ।
छवि देखत भई है निहाल काल मुरझाती ॥
सखि मान सरोवर चलो हंस जहँ पाती ।
यह कहैं कबीर विचार सीप मिलि स्वाती ॥१०८॥

तड़पै तलफै बिन बालम मोर जिया ।
दिन नहिं चैन रात नहिं निंदिया तलफ तलफ के भोर किया ।
तन मन मोर रहँट अस डोलै सून सेज पर जनम छिया ॥
नैन थकित भए पंथ न सूझै साँईं बेदरदी सुध न लिया ।
कहत कबीर सुनो भाई साधो हरो पीर दुख जोर किया ॥१०९॥

पिया मिलन की आस रहौं कब लौं खरी ।
ऊँचे नहिं चढ़ि जाय मने लज्जा भरी ॥
पाँव नहीं ठहराय चढ़ूँ गिर गिर परूँ ।
फिरि फिरि चढ़हुँ सम्हारि चरन आगे धरूँ ॥
अंग अंग थहराय तो बहु बिधि डरि रहूँ ।
करम कपट मग घेरि तो भ्रम में परि रहूँ ॥
बारी निपट अनारि तो झीनी गैल है ।

अटपट चाल तुम्हार मिलन कस होइहै ॥
छोरो कुमति बिकार सुमति गहि लीजिए ।
सतगुरु शब्द सम्हारि चरन चित दीजिए ॥
अंतर पट दे खोल सब्द उर लाव री ।
दिल बिच दास कबीर मिलैं तोहि बावरी ॥ ११० ॥

गृह-वैराग्य

अवधू भूले को घर लावै, सो जन हमको भावै ।
घर में जोग भोग घर ही में, घर तजि बन नहिं जावै ॥
बन के गए कलपना उपजै, तब धों कहाँ समावै ।
घर में मुक्ति भुक्ति घर ही में, जो गुरु अलख लखावै ॥
सहज सुन्न में रहै समाना, सहज समाधि लगावै ।
उनमुनि रहै ब्रह्म को चीन्है, परम तत्त को ध्यावै ॥
सुरत निरत सो मेला करि कै, अनहद नाद बजावै ।
घर में बस्तु बस्तु में घर है, घर ही बस्तु मिलावै ॥
कहैं कबीर सुनो हो अवधू ज्यों का त्यों ठहरावै ॥१११॥

दूर वे दूर वे दूर वे दूरमति
दूर की बात तोहि बहुत भावै ।
अहै हज्जूर हाजीर साहब धनी
दूसरा कौन कहु काहि गावै ॥
छोड़ दे कल्पना दूर का धावना
राज तजि खाक मुख काहि लावै ।

पेड़ के गहे ते डार पल्लव मिले
डार के गहे नहिं पेड़ पावै ॥
डार औ पेड़ औ फूल फल प्रगट है
मिले जब गुरु इतनो लखावै ।
सँपति सुख साहबी छोड़ जोगी भए
सून्य की आस बनखंड जावै ॥
कहहिं कब्बीर बनखंड में क्या मिलै
दिलहि को खोज दीदार पावै ॥११२॥

अनप्रापत वस्तु को कहा तजे, प्रापत को तजै सो त्यागी है ।
सु असील तुरंग कहा फेरं, अफतर फेरे सो बागी है ॥
जगभव का गावना क्या गावै, अनुभव गावै सो रागी है ।
बन गेह की बासना नास करे, कब्बीर सोई बैरागी है ॥११३॥

कर्म्मगति

करमगति टारे नाहिं टरी ।
मुनि बसिष्ठ से पंडित ज्ञानी सोध के लगन धरी ॥
सीता हरन मरन दसरथ को बन में बिपति परी ।
कहँ वह फंद कहाँ वह पारधि कहँ वह मिरग चरी ॥
सीया को हरि लैगो रावन सुबरन लंक जरी ।
नीच हाथ हरिचंद बिकाने बलि पाताल धरी ॥
कोटि गाय नित पुन्न करत नृप गिरिगिट जोन परी ।
पांडव जिनके आपु सारथी तिन पर बिपति परी ॥

दुरजोधन को गरब घटायो जदुकुल नास करी।
राहु केतु औ भानु चंद्रमा बिधी सँजोग परी॥
कहत कबीर सुनो भाई साधो होनी हो के रही॥११४॥

अपने करम न मेटो जाई।
कर्म के लिखा मिटेधौं कैसे जो युग कोटि सिराई॥
गुरु बसिष्ठ मिलि लगन सोधाई सूर्य्य मंत्र एक दीन्हा।
जो सीता रघुनाथ बिश्राही पल एक संच न कीन्हा॥
नारद मुनि को बदन छपायो कीन्हें कपि से रूपा।
सिसुपालहुँ की भुजा उपारी आपुन बोध सरूपा॥
तीन लोक के करता कहिए बालि बध्यो बरिआई।
एक समय ऐसी बनि आई उनहूँ अवसर पाई॥
पारबती को बाँझ न कहिए ईस न कहिय भिखारी।
कह कबीर करता की बातैं करम की बात निआरी॥११५॥

मोहमहिमा

बुढिया हँसि कह मैं नितहिं बारि।
मोहिं ऐसि तरुन कहु कौन नारि॥
ये दाँत गए मोर पान खात।
औ केस गयल मोर गँग नहात॥
औ नयन गयल मोर कजल देत।
औ बैस गयल पर पुरुष लेत॥

औ जान पुरुखवा मोर अहार।
मैं अनजाने को कर सिंगार॥
कह कबीर बुढ़ि आनँद गाय।
नित पूत भतारहिं बैठि खाय॥११६॥

मोर मनुख है अति सुजान। धंधा कुटि कुटि कर बिहान॥
उठि बड़े भोर आँगन बुहार। ले बड़ी खाँच गोबरहिं डार॥
बासी भात मनुख ले खाय। बड़ घैला लै पानी जाय॥
अपने सैयाँ बाँधी पाट। लै रे बेचौं हाटै हाट॥
कह कबीर ये हरि के काज। जोइया के ढिगर कौन काज॥११७॥

डर लागै हाँसी आवे अजब जमाना आया रे।
धन दौलत ले माल खजाना बेस्या नाच नचाया रे॥
मुट्ठी अन्न साध कोइ माँगै कहैं नाज नहिं आया रे।
कथा होय तहँ स्रोता सोवैं वक्ता मूँड पचाया रे॥
होय जहाँ कहि स्वाँग तमासा तनिक न नींद सताया रे।
भंग तमाखू .सुलफा गाँजा सूखा खूब उड़ाया रे॥
गुरु चरनामृत नेम न धारै, मधुवा चाखन आया रे।
उलटी चलन चली दुनियाँ में, तातें जिय घबराया रे॥
कहत कबीर सुनो भाइ साधो, फिर पाछे पछताया रे॥११८॥

ऐसी दुनिया भई दिवानी, भक्ति भाव नहिं बूझै जी।
कोई आवे तो बेटा माँगे, यही गुसाईं दीजै जी॥
कोई आवै दुख का मारा, हम पर किरपा कीजै जी।
कोइ आवे तो दौलत माँगै, भेंट रुपैया लीजै जी॥

कोई करावै ब्याह सगाई, सुनत गुसाईं रीझै जी ।।
साँचे का कोइ गाहक नाहीं, झूठे जगत पतीजै जी ।
कहै कबीर सुनो भाइ साधो, अंधों को क्या कीजै जी ।।११९।।

यह जग अंधा, मैं केहि समझावों ।
इक दुइ होय उन्हैं समझावों, सबही भुलाना पेट के धंधा ॥
पानी कै घोड़ा पवन असवरवा, ढरकि परै जस ओस कै बुंदा ।
गहिरी नदिया अगम बहै धरवा, खेवनहारा पड़िगा फंदा ॥
घर की बस्तु निकट नहिं आवत, दियना बारिके ढूँढत अंधा ।
लागी आग सकल बन जरिगा, बिन गुर ज्ञान भटकिगा बंदा ॥
कहैं कबीर सुनो भाई साधो, इक दिन जाय लँगोटी झार बंदा ।।१२०।।

चली है कुलबोरनी गंगा नहाय ।
सतुवा कराइन बहुरी भुँजाइन घूँघट ओटे भसकत जाय ।।
गठरी बाँधिन मोटरी बाँधिन, खसम के मूँड़े दिहिन धराय ।
बिछुवा पहिरिन औंठा पहिरिन, लात खसम के मारिन जाय ।
गंगा न्हाइन जमुना न्हाइन, नौ मन मैल हैं लिहिन चढ़ाय ॥
पाँच पचीस कै धक्का खाइन, घरहुँ की पूँजी आईं गँवाय ।
कहत कबीर हेत करु गुरु सौं नहिं तोर मुकती जाइ नसाय ।।१२१।।

उद्बोधन

पंडित वाद बदै सो झूठा ।
राम के कहे जगत गति पावै खाँड़ कहे मुख मीठा ॥
पावक कहे पाँव जो दाहै जल कहे तृखा बुझाई ।

भोजन कहे भूख जो भागै तो दुनिया तरि जाई ॥
नर के संग सुवा हरि बोलै हरि प्रताप नहिं जानै ।
जो कबहूँ उड़ि जाय जंगल को तौ हरि सुरति न आनै ॥
बिनु देखे बिनु अरस परस बिनु नाम लिए का होई ।
धन के कहे धनिक जो होतो निरधन रहत न कोई ॥
साँचो प्रोति बिषय माया सों हरि भगतन की हाँसी ।
कह कबीर एक राम भजे बिन बाँधे जमपुर जासी ॥१२२॥

पंडित देखा मन मों जानी ।
कहु धौं छूत कहाँ ते उपजी तबहिं छूत तुम मानी ॥
नाहरु बिंद रुधिर एक संगै घटही में घट सज्जै ।
अष्ट कमल को पुहुमी आई कहँ यह छूत उपज्जै ॥
लख चौरासी बहुत बासना सो सब सरि भो माटी ।
एकै पाट सकल वैठारे सोंचि लेत धौं काटी ॥
छूतहि जेवन छूतहि अचवन छूतहि जग उपजाया ।
कह कबीर ते छूत बिबर्जित जाके संग न माया ॥१२३॥
पंडित देखो हृदय बिचारी । कौन पुरुष को नारी ॥
सहज समाना घट घट बोलै वाको चरित अनूपा ।
वाको नाम कहा कहि लीजै ना ओहि बरन न रूपा ॥
तैं मैं काह करे नर बौरे क्या तेरा क्या मेरा ।
राम खोदाय शक्ति शिव एकै कहुवौं काहि निबेरा ॥
बेद पुरान कुरान कितेबा नाना भाँति बखानी ।
हिंदू तुरुक जैन औ जोगो एकल काहु न जानी ॥

छ दरशन में जो परवाना तासु नाम मनमाना ।
कह कबीर हमहीं हैं बौरे ई सब खलक सयाना ॥१२४॥
माया मोहहिं मोहित कीन्हा । तातें ज्ञान रतन हरि लीन्हा ॥
जीवन ऐसो सपना जैसो जीवन सपन समाना ।
शब्द गुरू उपदेश दियो, तैं छाँड्यो परम निधाना ॥
जोतिहिं देख पतंग हूलसै, पसु नहिं पेखै आगी ।
काम क्रोध नर मुगुध परे हैं, कनक कामिनी लागी ॥
सय्यद शेख किताब नीरखै, पंडित शास्त्र बिचारै ।
सतगुरु के उपदेश विना, तुम जानि कै जीवहिं मारै ॥
करो बिचार बिकार परिहरौ, तरन तारनै सोई ।
कह कबीर भगवंत भजन करु द्वितिया और न कोई ॥१२५॥
आपन आस किए बहुतेरा । काहु न मर्म पाव हरि केरा ॥
इंद्री कहा करै विश्राम । सो कहँ गए जो कहते राम ॥
सो कहँ गए होत अज्ञान । होय मृतक ओहि पदहिं समान ॥
रामानंद रामरस छाके । कह कबीर हम कहि कहि थाके १२६
कहो हो अंबर कासौं लागा । चेतनहारे चेतु सुभागा ॥
अंबर मध्ये दीसै तारा । एक चेतै दुजे चेतवनहारा ॥
जेहि खोजै सो उहवाँ नाहीं । सोतो आहि अमर पद माहीं ॥
कह कबीर पद बूझै सोई । मुख हृदया जाकर एक होई ॥१२७॥
बाबू ऐसौ है संसार तिहारो, है यह कलि व्यवहारा ।
को अब अनख सहै प्रति दिन को नाहिंन रहन हमारा ॥
सुमृत सुभाव सबै कोइ जानै हृदया तत्त न बूझै ।

निरजिव आगे सरजिव थापै लोचन कछुव न सूझै ॥
तजि अमृत बिख काहें अचवो गाँठी बाँधो खोटा ।
चोरन को दिय पाट सिंहासन साहुहिं कीन्हो ओटा ॥
कह कबीर झूठो मिलि झूठा ठगही ठग व्यवहारा ।
तीन लोक भरपूर रह्यो है नाहीं है पतियारा ॥ १२८ ॥
नैनन आगे ख्याल घनेरा ।
अरध उरध बिच लगन लगी है क्या संध्या रैन सबेरा ॥
जेहि कारन जग भरमत डोलैं सो साहब घट लिया बसेरा ।
पूरि रह्यो असमान धरनि में जित देखो तित साहब मेरा ॥
तसबो एक दिया मेरे साहब कह कबीर दिलही बिच फेरा ॥१२९॥
जागु रे जिव जागु रे अब क्या सोवै जिय जागु रे ।
चोरन को डर बहुत रहत है उठि उठि पहिरे लागु रे ।
ररौ खौलि ममो करि भीतर ज्ञान रतन करि जागु रे ।
ऐसै जो अजरायल मारै मस्तक आवै भागु रे ।
ऐसी जागनि जो कोइ जागै तो हरि देह सोहागु रे ।
कह कबीर जागोई चहिए क्या गिरही बैरागु रे ॥ १३० ॥

उपदेश और चेतावनी

बोलना कासों बोलिए भाई । बोलत ही सब तत्व नसाई ॥
बोलत बोलत बाढु बिकारा । सो बोलिए जो परे बिचारा ॥
मिले जो संत बचन दुइ कहिए । मिले असंत मौन ह्वै रहिए ॥

पंडित सों बोलिय हितकारी। मूरख सों रहिए झख मारी ॥
कह कबीर आधा घट डोलै। पूरा होय बिचार लै बोलै ॥१३१॥
मरिहौ रे तन का ले करिहौ। प्रान छुटे बाहर लै धरिहौ ॥
काय बिगुरचन अनबन बाटी। कोइ जारै कोइ गाड़ै माटी ॥
जारै हिंदु तुरुक लै गाड़ै। ई परपंच दुनो घर छाँड़ै ॥
कर्म फाँस जग जाल पसारा। ज्यों धीमर मछरी गहि मारा ॥
राम बिना नर ह्वैहो कैसा। बाट माँझ गोबरौरा जैसा ॥
कह कबीर पाछे पछतैहो। या घर सों जब वा घर जैहो ॥१३२॥

चलत का टेढ़े टेढ़े टेढ़े।
दसो द्वार नरक में बूड़े दुरगंधों के बेढ़े ॥
फूटे नैन हृदय नहिं सूझै मति एकौ नहिं जानी।
काम क्रोध तृष्णा के मारे बूड़ि मुए बिनु पानी ॥
जारे देह भसम ह्वै जाई गाड़े माटी खाई।
सूकर स्वान काग के भोजन तन की यहै बड़ाई ॥
चेति न देखु मुगुध नर बौरे तोते काल न दूरी।
कोटिन जतन करै बहुतेरे तन कि अवस्था धूरी ॥
बालू के घरवा में बैठे चेतत नाहिं अयाना।
कह कबीर एक राम भजे बिन बूड़े बहुत सयाना ॥ १३३ ॥

फिरहु का फूले फूले फूले।
जो दस मास उरध मुख झूले सो दिन काहें भूले ॥
ज्यों माखी स्वादै लहि बिहरै सोचि सोचि धन कीन्हा।
त्योंही पीछे लेहु लेहु करि भूत रहनि कुछ दीन्हा ॥

देहरी लौं बर नारि संग है आगे संग सहेला।
मृतक थान सँग दियो खटोला फिरि पुनि हंस अकेला॥
जारे देह भसम ह्वै जाई गाड़े माटी खाई।
काँचे कुंभ उदक ज्यों भरिया तन की इहै बड़ाई॥
राम न रमसि मोह में माते परयो काल बस कूवा।
कह कबीर नर आप बँधायो ज्यों नलिनी भ्रम सूवा॥१३४॥

अल्लह राम जीव तेरी नाईं।
जन पर मेहर करहु तुम साईं॥
क्या मूँड़ी भीमहिं सिर नाए क्या जल देह नहाए।
खून करै मसकीन कहावै गुन को रहै छिपाए॥
क्या भो उज्जू मज्जन कीने क्या मसजिद सिर नाए।
हृदये कपट नेवाज गुजारै का भो मक्का जाए॥
हिंदू एकादशि चौबिस रोजा मुसलिम तीस बनाए।
बारह मास कहो क्यों टारो ये केहि माहँ समाए॥
पूरब दिसि में हरि को बासा पच्छिम अल्लह मुकामा।
दिल में खोज दिले में देखो यहै करीमा रामा॥
जो खुदाय मसजिद में बसतु है और मुलुक केहि केरा।
तीरथ मूरत राम निवासी दुइ महँ किनहुँ न हेरा॥
बेद किताब कीन किन झूठा झूठा जो न बिचारै।
सब घट माँहिं एक करि लेखै भै दूजा करि मारै॥
जेते औरत मर्द उपाने सो सब रूप तुम्हारा।
कबिर पोंगड़ा अलह राम का सो गुरु पीर हमारा॥१३५॥

भँवर उड़े बक बैठे आय । रैनि गई दिवसौ चलि जाय ।।
हल हल काँपै बाला जीव । ना जानै का करिहै पीव ।।
काँचे बासन टिकै न पानी । उड़िगे हंसकाय कुम्हिलानी ।।
काग उड़ावत भुजा पिरानी। कह कबीर यह कथा सिरानी १३६
राम नाम का सेवहु बीरा दूर नहीं दुरआसा हो ।
और देव का पूजहु बौरे ई सब झूठी आसा हो ।।
उपर के उजरे कह भो बौरे भीतर अजहूँ कारो हो ।
तन के वृद्ध कहा भौ बौरे ई मन अजहूँ बारो हो ।।
मुख के दाँत गए का बौरे अंदर दाँत लोहे के हो ।
फिर फिर चना चबाउ विषय के काम क्रोध मद लोभे हो ।।
तन की सक्ति सकल घट गयऊ मनहिं दिलासा दूनी हो ।
कहै कबीर सुनो हो संतो सकल सयानप ऊनी हो ।।१३७।।
राम नाम बिनु राम नाम बिनु मिथ्या जन्म गँवाई हो ।
सेमर सेइ सुवा जो जहुँड़े ऊन परे पछिताई हो ।।
जैसे महिप गाँठि अरथै दे घरहुँ कि अकिल गँवाई हो ।
स्वादे उदर भरत धौं कैसे ओसै प्यास न जाई हो ।।
द्रव्य क हीन कौन पुरुषारथ मनहीं माहिं तवाई हो ।
गाँठी रतन भरम नहिं जानेहु पारख लीन्हीं छोरी हो ।।
कह कबीर एहि अवसर बीते रतन न मिलै बहोरी हो। १३८।
जो तैं रसना राम न कहिहै । उपजत बिनसत भरमत रहिहै ।।
जस देखी तरुबर की छाया। प्रान गए कहु काकी माया ।।
जीवत कछु न किए परमाना । मुए कर्म कहु काकर जाना ।।

अंत काल सुख कोउ न सोवै । राजा रंक दोऊ मिल रोवै ॥
हंस सरोवर कमल सरीरा । राम रसायन पिवै कबीरा ॥१३९॥

सोच समझ अभिमानी, चादर भई है पुरानी ।
टुकड़े टुकड़े जोड़ि जुगुत सों, सी के अँग लपटानी ।
कर डारी मैली पापन सों, लोभ मोह में सानी ॥
ना एहि लग्यो ज्ञान कै साबुन, ना धोई मल पानी ।
सारी उमरि ओढ़तै बीती, भली बुरी नहिं जानी ॥
संका मान जान जिय अपने, यह है चीज बिरानी ।
कह कबीर धरि राखु जतन से फेर हाथ नहिं आनी ॥१४०॥

बहुर नहिं आवना या देस ।
जो जो गए बहुर नहिं आए, पठवत नाहिं सँदेस ॥
सुर नर मुनि औ पीर औलिया देवी देव गनेस ।
धरि धरि जनम सबै भरमे हैं ब्रह्मा विष्णु महेस ॥
जोगी जंगम और संन्यासी दीगंबर दरवेस ।
चुंडित मुंडित पंडित लोई सरग रसातल सेस ॥
ज्ञानी गुनी चतुर औ कविता राजा रंक नरेस ।
कोइ रहीम कोइ राम बखानै कोइ कहै आदेस ॥
नाना भेख बनाय सबै मिलि ढूँढि फिरे चहुँदेस ।
कहैं कबीर अंत ना पैहौ बिन सतगुरु उपदेस ॥१४१॥

वा दिन की कछु सुध कर मन माँ ।
जा दिन लै चलु लै चलु होई, ता दिन संग चलै नहिं कोई ॥

तात मात सुत नारी रोई, माटी के संग दियो समोई।
सो माटी काटेगी तन माँ।
उलफत नेहा कुलफत नारी। किसकी बोबी किसकी बाँदी॥
किसका सोना किसकी चाँदी। जा दिन जम ले चलिहै बाँधी॥
डेरा जाय परै वहि बन माँ।
टाँड़ा तुमने लादा भारी। बनिज किया पूरा ब्योपारी॥
जूआ खेला पूँजी हारी। अब चलने की भई तयारी॥
हित चित मत तुम लाओ धन माँ।
जो कोइ गुरु से नेह लगाई। बहुत भाँति सोई सुख पाई॥
माटी में काया मिलि जाई। कह कबीर आगे गोहराई॥
साँच नाम साहेब को सँग माँ॥१४२॥

ना जानें तेरा साहेब कैसा।
महजिद भीतर मुला पुकारै क्या साहेब तेरा बहिरा है।
चिउँटी के पग नेवर बाजै सो भी साहब सुनता है॥
पंडित होय के आसन मारै लंबी माला जपता है।
अंतर तेरे कपट कतरनी सो भी साहब लखता है॥
ऊँचा नीचा महल बनाया गहरी नेव जमाता है।
चलने का मनसूबा नाहीं रहने को मन करता है॥
कौड़ी कौड़ी माया जोड़ी गाड़ि जमीं में धरता है।
जेहि लहना है सो लै जैहै पापी बहि बहि मरता है॥
सतवंती को गजी मिलै नहिं बेश्या पहिरे खासा है।
जेहि घर साधू भीख न पावै भँड़ुवा खात बतासा है॥

हीरा पाय परख नहिं जानै कौड़ी परखन करता है ।
कहत कबीर सुनो भाइ साधो हरि जैसे को तैसा है ॥१४३॥

मुखड़ा क्या देखै दरपन में, तेरे दया धरम नहिं तन में ।
आम की डार कोइलिया बोलै सुवना बोलै बन में ।
घरबारी तो घर में राजी फक्कड़ राजी बन में ॥
ऐंठी धोती पाग लपेटी तेल चुआ जुलफन में ।
गली गली की सखी रिझाईं दाग लगाया तन में ॥
पाथर की इक नाव बनाई उतरा चाहै छन में ।
कहत कबीर सुनो भाई साधो वे क्या चढ़िहैं रन में ॥१४४॥

मोरे जियरा बड़ा अँदेसवा, मुसाफिर जैहो कौनी ओर ।
मोह का सहर कहर नर नारी दुइ फाटक घन घोर ॥
कुमती नायक फाटक रोकै, परिहो कठिन झँझोर ।
संसय नदी अगाड़ी बहती बिषम धार जल जोर ॥
क्या मनुवाँ तू गाफिल सोवै, इहाँ मोर औ तोर ।
निसि दिन प्रीति करो साहब से, नाहिन कठिन कठोर ॥
काम दिवाना क्रोध है राजा बसै पचीसो चोर ।
सत्त पुरुख इक बसै पछिम दिसि तासों करो निहोर ॥
आवै दरद राह तोहि लावै तब पैहो निज ओर ।
उलटि पाछिलो पैंड़ा पकड़ो पसरा मना बटोर ॥
कहैं कबीर सुनो भाई साधो तब पैहो निज ठोर ॥१४५॥

पी ले प्याला हो मतवाला प्याला नाम अमी-रस का रे ।
बालपना सब खेलि गँवाया तरुन भया नारी बस का रे ॥

बिरध भया कफ बाय ने घेरा खाट पड़ा न जाय खसका रे ।
नाभि कँवल बिच है कस्तूरी जैसे मिरग फिरै बन का रे ॥
बिन सतगुरु इतना दुख पाया बैद मिला नहिं इस तन का रे ।
माता पिता बंधु सुत तिरिया संग नहीं कोई जाय सका रे ॥
जब लग जीवै गुरु गुन गा ले धन जोबन है दिन दस का रे ।
चौरासी जो उबरा चाहै छोड़ कामिनी का चसका रे ॥
कहै कबीर सुनो भाई साधो नख सिख पूरा रहा विसका रे ॥१४६॥

नाम सुमिर, पछतायगा ।
पापी जियरा लोभ करत है आज काल उठि जायगा ॥
लालच लागी जनम गँवाया माया भरम भुलायगा ।
धन जोबन का गरब न कीजै कागद ज्यों गलि जायगा ॥
जब जम आइ केस गहि पटकै ता दिन कछु न बसायगा ।
सुमिरन भजन दया नहिं कीन्ही तो मुख चोटा खायगा ॥
धरमराय जब लेखा माँगे क्या मुख लेके जायगा ।
कहत कबीर सुनो भाई साधो साध संग तरि जायगा ॥१४७॥

मेरा तेरा मनुआँ कैसे इक होइ रे ।
मैं कहता हौं आँखिन देखी, तू कहता कागद की लेखी ।
मैं कहता सुरझावन हारी, तू राख्यो अरुझाई रे ॥
मैं कहता तू जागत रहियो तू रहता है सोइ रे ।
मैं कहता निरमोही रहियो तू जाता है मोहि रे ॥
जुगन जुगन समझावत हारा कहा न मानत कोइ रे ।
तू तो रंडी फिरे बिहंडी सब धन डारे खोइ रे ॥

सतगुरु धारा निरमल बाहै वा में काया धोइ रे।
कहत कबीर सुनो भाई साधो तबही वैसा होइ रे ॥१४८॥

समझ देख मन मीत पियरवा आसिक होकर सोना क्या रे।
रूखा सूखा गम का टुकड़ा फीका और सलोना क्या रे।
पाया हो तो दे ले प्यारे पाय पाय फिर खोना क्या रे।
जिन आँखिन में नींद घनेरी तकिया और बिछौना क्या रे।
कहैं कबीर सुनो भाई साधो सीस दिया तब रोना क्या रे ॥१४९॥

जाके नाम न आवत हिए।
काह भए नर कासि बसे से का गंगा-जल पिए ॥
काह भए नर जटा बढ़ाए का गुदरी के लिए।
काह भयो कंठी के बाँधे काह तिलक के दिए ॥
कहत कबीर सुनो भाइ साधो नाहक ऐसे जिए ॥१५०॥

गुरु से कर मेल गँवारा। का सोचत बारंबारा ॥
जब पार उतरना चहिए। तब केवट से मिल रहिए ॥
जब उतरि जाय भव पारा। तब छूटै यह संसारा ॥
जब दरसन देखा चहिए। तब दरपन माँजत रहिए ॥
जब दरपन लागत काई। तब दरसन कहँ ते पाई ॥
जब गढ़ पर बजी बधाई। तब देखि तमासे जाई ॥
जब गढ़ बिच होत सकेला। तब हंसा चलत अकेला ॥
कहैं कबीर देख मन करनी। वाके अंतर बीच कतरनी ॥
कतरनी कै गाँठ न छूटै। तब पकरि पकरि जग लूटै ॥१५१॥

चल चल रे भौंरा कँवल पास ।
तेरी भौंरी बोलै अति उदास ॥
वह करत चोज बारही बार ।
तन बन फूल्यौ कस डार डार ॥
है लियो बनस्पति केर भोग ।
कुछ सुख न भयो तन बढ़्यो रोग ॥
दिवस चार के सुरंग फूल ।
तेहि लखि भौंरा रह्यो भूल ॥
बनस्पति जब लागै आग ।
तब भँवरा कहँ जैहो भाग ॥
पुहुप पुराने गए सूख ।
लगी भँवर को अधिक भूख ॥
उड़ न सकत बल गयौ छूट ।
तब भँवरा रोवै सीस कूट ॥
चहुँ दिसि चितवै मुँह पराय ।
ले चल भँवरी सिर चढ़ाय ॥
कहैं कबीर ये मन के भाव ।
नाम बिना सब जम के दाँव ॥ १५२ ॥

भजु मन जीवन नाम सबेरा ।
सुंदर देह देख जिन भूलो झपट लेत जस बाज बटेरा ।
यह देही को गरब न कीजै उड़ पंछी जस लेत बसेरा ॥
या नगरी में रहन न पैहो कोइ रहि जाग न दूख घनेरा ।

कहैं कबीर सुनो भाई साधो मानुख जनम न पैहो फेरा ।।१५३।।

ऐसी नगरिया में केहि बिधि रहना ।
नित उठ कलंक लगावै सहना ।।
एकै कुआँ पाँच पनिहारी ।
एकै लेजुर भरै नौ नारी ।।
कट गया कुँआँ बिनस गई बारी ।
बिलग भईं पाँचो पनिहारी ।।
कहैं कबीर नाम बिनु बेरा ।
उठ गया हाकिम लुट गया डेरा ।।१५४।।

का नर सोवत मोह निसा में जागत नाहिं कूच नियराना ।
पहिल नगारा सेत के समये दूजे बैन सुनत नहिं काना ।।
तीजे नैन दृष्टि नहिं सूझै चौथे आन गिरा परवाना ।
मात पिता कहना नहिं मानै बिप्रन सों कीन्हा अभिमाना ।।
धरम की नाव चढ़न नहिं जानै अब जमराज ने भेद बखाना ।
होत पुकार नगर कसबे में रैयत लोग सबै अकुलाना ।।
पूरन ब्रह्म की होत तयारी अंत भवन बिच प्रान लुकाना ।
प्रेम नगर में हाट लगतु है जहँ रँगरेजवा है सत वाना ।।
कह कबीर कोइ काम न ऐहै माटी के देहिया माटि मिल जाना।१५५।

रे दिल गाफिल गफलत मत कर एक दिन जम आवेगा ।
सौदा करने या जग आया, पूँजी लाया मूल गँवाया ।।
प्रेम-नगर का अंत न पाया, ज्यों आया त्यों जावैगा ।
सुन मेरे साजन सुन मेरे मीता, या जीवन में क्या क्या कीता ।।

सिर पाहन का बोझा लीता, आगे कौन छुड़ावैगा ।
परलि पार मेरा मीता खड़िया, उस मिलने का ध्यान न धरिया ॥
टूटी नाव ऊपर जा बैठा, गाफिल गोता खावैगा ।
दास कबीर कहैं समुझाई, अंतकाल तेरा कौन सहाई ॥
चला अकेला संग न कोई, कीया अपना पावैगा ॥ १५६ ॥

सुमिरो सिरजनहार, मनुख तन पाय के ।
काहे रहो अचेत कहा यह अवसर पैहो ।
फिर नहिं मानुख जनम बहुरि पीछे पछतैहो ॥
लख चौरासी जीव जंतु में मानुख परम अनूप ।
सो तन पाय न चेतहू कहा रंक का भूप ॥
गरभ बास में रह्यो कह्यो मैं भजिहौं तोहीं ।
निसि दिन सुमिरौं नाम कष्ट से काढ़ौं मोहीं ॥
इक मन इक चित ह्वै रहों रहों नाम लव लाय ।
पलक न तुमैं बिसारिहौं यह तन रहै कि जाय ॥
इतना कियो करार तबै प्रभु बाहर कीना ।
बिसर गयो वह ठाँव भयो माया आधीना ॥
भूली बातैं उदर की यहाँ तो मत भइ आन ।
बारह बरस ऐसही बीते डोलत फिरत अजान ॥
बिखया पवन समान तबै ज्वानी मदमाते ।
चलत निहारै छाँह तमक के बोलै बातैं ॥
चोवा चंदन लाइ के पहिरे बसन बनाय ।
गलियों में डोलत फिरै परतिय लख मुसुकाय ॥

गा तरुनापा बीत बुढ़ापा आइ तुलाना ।
कंपन लागे सीस चलत दोउ पाँव पिराना ॥
नैन नासिका चूवन लागे करन सुनै नहिं बात ।
कंठ माहिं कफ घेरि लियो है बिसर गए सब नात ॥
मात पिता सुत नारि कहौ काके सँग लागी ।
तन मन भजि लो नाम काम सब होयँ सुभागी ॥
नहिं तो काल गरासिहै परिहौ जम के जार ।
बिन सतगुरु नहिं बाँचिहौ हिरदय करहु बिचार ॥
सुफल होय यह देह नेह सतगुरु से कीजै ।
मुक्ती मारग यही संत चरनन चित दीजै ॥
नाम जपो निरभय रहो अंग न ब्यापै पीर ।
जरा मरन बहु संसय मेटै गावैं दास कबीर ॥१५७॥
तोरी गठरि में लागे चोर, बटोहिया का रे सोवै ।
पाँच पचीस तीन हैं चोरवा, यह सब कीन्हा सोर ॥
जाग सबेरा बाट अनेरा, फिर नहिं लागै जोर ।
भव सागर एक नदी बहत है, बिन उतरे जीव बोर ॥
कहैं कबीर सुनो भाइ साधो, जागत कीजै भोर ॥१५८॥
का सोवो सुमिरन की बेरिया ।
जिन सिरजा तिनकी सुधि नाहीं,
झकत फिरो झकझलनि झलरिया ।
गुरु उपदेस सँदेस कहत हैं,
भजन करो चढ़ि गगन अटरिया ।

नित उठि पाँच पचिसकै झगरा,
ब्याकुल मोरी सुरति सुँदरिया ।
कहत कबीर सुनो भाई साधो,
भजन बिना तोरी सूनी नगरिया ।।१५९।।

बागों ना जा रे तेरे काया में गुलजार । करनी क्यारी बोइ के रहनी करु रखवार । दुरमति काग उड़ाइ के देखै अजब बहार । मन माली परबोधिए करि संजम की बार । दया पौद सूखै नहीं छमा सींच जल ढार । गुल औ चमन के बीच में फूला अजब गुलाब । मुक्ति कली सतमाल की पहिरूँ गूँथि गलहार । अष्ट कमल से ऊपजै लीला अगम अपार । कह कबीर चित चेत के आवागमन निवार ।। १६० ।।

सुमिरन बिन गोता खाओगे ।
मुट्ठी बाँधे गर्भ से आए हाथ पसारे जाओगे ।
जैसे मोती झरत ओस के बेर भए झर जाओगे ।।
जैसे हाट लगावै हटवा सौदा बिन पछताओगे ।
कहैं कबीर सुनो भाई साधो सौदा लेकर जाओगे ।।१६१।।

अरे मन समझ के लादु लदनियाँ ।
काहे क टटुआ काहे क पाखर काहे क भरी गौनियाँ ।।
मन कै टटुआ सुरति कै पाखर भर पुन पाप गौनियाँ ।
घर के लोग जगाती लागे छीन लेयँ करधनियाँ ।।
सौदा करु तो यहि करु भाई आगे हाट न बनियाँ ।

पानी पी तो यहाँ पी भाई आगे देस निपनियाँ ॥
कहैं कबीर सुनो भाई साधो सत्त नाम का बनियाँ ॥१६२॥

दिवाने मन भजन बिना दुख पैहो ।
पहिले जनम भूत का पैहो सात जनम पछतैहो ।
काँटा पर कै पानी पैहो प्यासन ही मरि जैहो ॥
दूजा जनम सुवा का पैहो बाग बसेरा लइहो ।
टूटे पंख बाज मँड़राने अधफड़ प्रान गँवइहो ॥
बाजीगर के बानर होइहो लकड़िन नाच नचैहो ।
ऊँच नीच से हाथ पसरिहो माँगे भीख न पैहो ॥
तेली के घर बैला होइहो आँखिन ढाँप ढँपैहो ।
कोस पचास घरै में चलिहो बाहर होन न पैहो ॥
पँचवाँ जनम ऊँट कै पैहो बिन तौलै बोझ लदैहो ।
बैठे से तो उठै न पैहो घुरच घुरच मरि जैहो ॥
धोबी घर के गदहा होइहौ कटी घास ना पैहो ।
लादी लादि आपु चढ़ि बैठै लै घाटे पहुँचैहो ॥
पच्छी माँ तो कौवा होइहो करर करर गुहरैहो ।
उड़ि के जाइ बैठि मैले थल गहिरे चोंच लगैहो ॥
सत्त नाम की टेर न करिहौ मन ही मन पछितैहो ।
कहैं कबीर सुनो भाई साधो नरक निसानी पैहो ॥१६३॥

साधो यह तन ठाठ तँबूरे का ।
ऐंचत तार मरोरत खूँटी निकसत राग हजूरे का ।
टूटे तार बिखरि गई खूँटी हो गया धूरम धूरे का ॥

या देही का गरब न कीजै उड़ि गया हंस तँबूरे का ।
कहत कबीर सुनो भाइ साधो अगम पंथ कोई सूरे का ॥१६४॥

गगन घटा घहरानी, साधो गगन घटा घहरानी ।
पूरब दिसि से उठी बदरिया रिमझिम बरसत पानी ।
आपन आपन मेंड़ सम्हारो बह्यो जात यह पानी ॥
मन कै बैल सुरत हरवाहा जोत खेत निरबानी ।
दुबिधा दूब छोल करु बाहर बोव नाम की धानी ॥
जोग जुगुत करि करु रखवारी चरन जाय मृगधानी ।
बाली झार कूट घर लावै सोई कुसल किसानी ॥
पाँच सखी मिल कीन रसोइया एक से एक सयानी ।
दूनो थार बराबर परसे जेवैं मुनि अरु ज्ञानी ॥
कहत कबीर सुनो भाई साधो यह पद है निरबानी ।
जो या पद को परिचै पावे ता को नाम बिज्ञानी ॥१६५॥

सकुच और शिक्षा

नैहर में दाग लगाय आई चुनरी । ऊ रँगरेजवा कै मरम न जानै नहिं मिलै धोबिया कवन करै उजरी । तन कै कूँड़ी ज्ञान कै सउँदन साबुन महँग बिकाय या नगरी । पहिरि ओढ़ि के चली ससुररिया गौंवाँ के लोग कहैं बड़ी फुहरी । कहत कबीर सुनो भाई साधो बिन सतगुरु कबहूँ नहिं सुधरी ॥ १६६ ॥

मोरी चुनरी में परि गयो दाग पिया ।
पाँच तत्त कै बनी चुनरिया सोरह सै बँद लागे जिया ।
यह चुनरी मोरे मैके ते आई ससुरे में मनुआ खोय दिया ।।
मलि मलि धोई दाग न छूटै ज्ञान को साबुन लाय पिया ।
कहत कबीर दाग तब छुटिहै जब साहब अपनाय लिया ।।१६७।।

पिय ऊँची रे अटरिया, तोरी देखन चली ।
ऊँची अटरिया जरद किनरिया लगी नाम की डोरिया ।
चाँद सुरज सम दियना बरतु हैं ता बिच भूली डगरिया ।।
पाँच पचीस तीन घर बनिया मनुआँ है चौधरिया ।
मुंशी है कोतवाल ज्ञान को चहुँ दिस लगी बजरिया ।।
आठ मरातिब दस दरवाजा नौ में लगी किवरिया ।
खिरकि बैठ गोरी चितवन लागी उपराँ झाँप झोंपरिया ।।
कहत कबीर सुनो भाई साधो गुरु चरनन बलिहरिया ।
साध संत मिलि सौदा करिहैं झोंखै मुरुख अनरिया ।।१६८।।

रतन जतन करु प्रेम कै तत धरु सतगुरु इमरित नाम जुगत कै राखब रे । बाबा घर रहलों बबुई कहैलों सैंया घर चतुर सयान चेतब घरवा आपन रे । खेलत रहलौं मैं सुपली मउनिया औचक आए लेनिहरर चलब केसिया झार रे । यह तो अँधेरी रात मुसल चोरवा थाती सैयाँ के बान कुबान सुतैलैं गोड़वा तान रे । चुन चुन कलिया में सेजिया बिछौलों बिना रे पुरुखवा कै नारि झँखैले दिनवा रात रे । ताल झुराय गैलैं फूल कुम्हिलाय गैलैं हंसा उड़त अकेल कोई नहिं देखल रे ।

अब का झंखैलू नारि हिए बैठलू मन मारि एहि बाटे मोतिया हेराइल रे। दास कबीर इहै गावैं निरगुनवाँ अब की उहवाँ जाब तो फिर नहिं आउब रे ॥१६९॥

का लै जैबो ससुर घर ऐबो।
गाँव के लोग जब पूछन लगिहैं तब हम का रे बतैबो ॥
खोल ढुँघट जब देखन लगिहैं तब हम बहुत लजैबो।
कहत कबीर सुनो भाई साधो फिर सासुर नहिं पैबो ॥१७०॥

साँईं मोर बसत अगम पुरवाँ जहँ गमन हमार।
आठ कुवाँ नव बावड़ी सोरह पनिहार ॥
भरल घयलवा ढरकि गए रे धन ठाढ़ी मन मार।
छोट मोट डँड़िया चँदन कै हो, छोट चार कहार ॥
जाय उतरिहैं वाही देसवाँ हो, जहँ कोइ न हमार।
ऊँची महलिया साहब कै, हो लगी बिखमी बजार ॥
पाप पुन्न दोउ बनियाँ हो, हीरा लाल अपार।
कह कबीर सुन साइयाँ, मोर याहिय देस ॥
जो गए सो बहुरे ना, को कहत सँदेस ॥१७१॥

कौन रँगरेजवा रँगै मोर चुँदरी। पाँच तत्त कै बनी चुँदरिया चुँदरी पहिरि के लगै बड़ी सुँदरी। टेकुआ तागा करम कै धागा गरे बिच हरवा हाथ बिच मुँदरी। सोरहौ सिंगार छतीसो अभरन पिय पिय रटत पिया सँग घुमरी। कहत कबीर सुनो भाई साधो बिन सतसंग कवन बिधि सुधरी ॥१७२॥

ये अँखियाँ अलसानी, पिय हो सेज चलो ।
खंभा पकरि पतंग अस डोलै बोलै मधुरी बानी ।
फूलन सेज बिछाइ जो राख्यो पिया बिना कुम्हलानी ॥
धीरे पाँव धरो पलँगा पर जागत ननद जिठानी ।
कहत कबीर सुनो भाई साधो लोक लाज बिछलानी ॥१७३॥

जागु पियारी अब का सोवे । रैन गई दिन काहे को खोवे ॥
जिन जागा तिन मानिक पाया । तैं बौरी सब सोय गँवाया ॥
पिय तेरे चतुर तू मूरख नारी । कबहूँ न पिय की सेज सँवारी ॥
तैं बौरी बौरापन कीन्हो । भर जोबन पिय अपन न चीन्हो ॥
जाग देख पिय सेज न तेरे । तोहि छाँड़ि उठ गए सबेरे ॥
कह कबीर सोई धुन जागे । शब्द बान उर अंतर लागे ॥१७४॥

आयो दिन गौने कै हो मन होत हुलास ।
पाँच भीट कै पोखरा हो जामें दस द्वार ॥
पाँच सखी बैरिन भई हो, कस उतरब पार ।
छोट मोट डोलिया चँदन कै हो लागे चार कहार ॥
डोलिया उतारै बीच बनवाँ हो, जहँ कोइ न हमार ।
पइयाँ तोरी लागों कहरवा हो, डोली धर छिन बार ॥
मिल लेवँ सखिया सहेलर हो, मिलों कुल परिवार ।
साहब कबीर गावैं निरगुन हो साधो करि लो बिचार ॥
नरम गरम सौदा करि लो हो, आगे हाट न बजार ॥१७५॥

खेल ले नैहरवाँ दिन चारि ।
पहिली पठौनी तीन जन आए नौवा बाम्हन बारी ॥

बाबुलजी मैं पैयाँ तोरी लागों अब की गवन दे टारि ।
दुसरी पठानी आपै आए लेके डोलिया कहार ॥
धरि बहियाँ डोलिया बैठारिन कोउ न लागै गोहार ।
ले डोलिया जाइ बन उत्तारिन कोइ नहिं संगी हमार ॥
कहैं कबीर सुनो भाइ साधो इक घर हैं दस द्वार ॥१७६॥

डँड़िया फँदाय धन चालु रे, मिलि लेहु सहेली ।
दिना चारि को संग है फिर अंत अकेली ॥
दिन दस नैहर खेलिए सासुर निज भरना ।
बहियाँ पकरि पिय ले चले तब उजुर न करना ॥
इक अँधियारी कोठरी, दूजे दिया न बाती ।
दें उतारि तेही घराँ जहँ संग न साथी ॥
इक अँधियारी कुइयाँ दूजे लेजुर टूटी ।
नैन हमारे अस ढुरैं, मानों गागर फूटी ॥
दास कबीरा यों कहै, जग नाहिन रहना ।
संगी हमारे चलि गए हमहूँ को चलना ॥१७७॥

करो जतन सखो साईं मिलन की ।
गुड़िया गुड़वा सूप सुपेलिया, तज दे बुध लरिकैयाँ खेलन की ॥
देवता पित्तर भुइयाँ भवानी, यह मारग चौरासी चलन की ।
ऊँचा महल अजब रँग बँगला साँईं सेज वहाँ लागी फुलन की ॥
तन मन धन सब अरपन कर वहाँ सुरत सम्हारु परु पैयाँ सजन की ।
कह कबीर निरभय होय हंसा कुंजी बतादेउँ ताला खुलन की ।१७८॥

मिथ्याचार

दर की बात कहौ दरवेसा । बादशाह है कौने भेसा ॥
कहाँ कूच कहँ करे मुकामा । कौन सुरति को करौं सलामा ॥
मैं तोहिं पूछों मुसलमाना । लाल जरद का ताना बाना ॥
काजी काज करो तुम कैसा । घर घर जबै करावो वैसा ॥
बकरी मुरगी किन फुरमाया । किसके हुकुम तुम छुरी चलाया ॥
दरद न जानै पीर कहावै । बैता पढ़ि पढ़ि जग समुझावै ॥
कह कबीर एक सय्यद कहावै । आप सरीखा जग कबुलावै ॥
दिन भर रोजा धरत हो राति हतत हो गाय ।
यह तो खून वह बंदगी क्योंकर खुसी खोदाय ॥१७९॥
ऐसा जोग न देखा भाई । भूला फिरै लिए गफिलाई ॥
महादेव का पंथ चलावै । ऐसो बड़ो महंत कहावै ॥
हाट बाट में लावै तारी । कच्चे सिद्धन माया प्यारी ॥
कब दत्तै मावासी तोरी । कब शुकदेव तोपची जोरी ॥
कब नारद बंदूक चलाया । व्यासदेव कब बंब बजाया ॥
करहिं लड़ाई मति के मंदा । ईहैं अतिथि कि तरकस बंदा ॥
भए विरक्त लोभ मन ठाना । सोना पहिरि लजावैं बाना ॥
घोरा घोरी कीन्ह बटोरा । गाँव पाय जस चले करोरा ॥
तिय सुंदरी न सोहाई सनकादिक के साथ ।
कबहुँक दाग लगावई कारी हाँडी हाथ ॥१८०॥
सोग बधावा सम करि जाना । ता की बात इंद्र नहिं जाना ॥
जटा तोरि पहिरावै सेली । योग युक्ति कै गरभ दुहेली ॥

आसन उड़ए कौन बड़ाई। जैसे काग चील्ह मँड़राई ॥
जैसी भिस्त तैसी हैं नारी। राज पाट सब गिनै उजारी ॥
जैस नरक तस चंदन माना। जस बाउर तस रहै सयाना ॥
लपसी लौंग गनै एकसारा। खाँड़े परिहरि फाँकै छारा ॥
एहि बिचार ते बहि गयो गया बुद्धि बल चित्त।
दुइ मिलि एकै ह्वै रह्यो काहि बताऊँ हित्त ॥१८१॥

संतो देखउ जग बौराना।
साँच कहो तो मारन धावै झूठे जग पतियाना ॥
नेमी देखे धरमी देखे प्रात करहिं असनाना।
आतम मारि पखानहिं पूजैं उनमें कछू न ज्ञाना ॥
बहुतक देखे पीर औलिया पढ़ैं किताब कुराना।
कै मुरीद तदबीर बतावै उनमें उहै गिआना ॥
आसन मारि डिंभ धरि बैठे मन में बहुत गुमाना।
पीतर पाथर पूजन लागे तीरथ गरब भुलाना ॥
माला पहिरे टोपी दीन्हे छाप तिलक अनुमाना।
साखी सबदै गावत भूले आतम खबरि न जाना ॥
कह हिंदू मोहिं राम पियारा तुरुक कहै रहिमाना।
आपस में दोउ लरि लरि मूए मरम न काहू जाना ॥
घर घर मंत्र जे देत फिरत हैं महिमा के अभिमाना।
गुरुवा सहित शिष्य सब बूड़े अंत काल पछताना ॥
कहत कबीर सुनो हो संतो ई सब भरम भुलाना।
केतिक कहौं कहा नहिं मानै आपहिं आप समाना ॥१८२॥

संतो राह दोऊ हम डीठा ।
हिंदू तुरुक हटा नहिं माने स्वाद सबन को मीठा ॥
हिंदू बरत एकादसि साधै दूध सिंघाड़ा सेती ।
अन को त्यागै मन नहिं हटकै पारन करै सगोती ॥
रोज तुरुक नमाज गुजारै बिसमिल बाँग पुकारै ।
उनको भिस्त कहाँ ते होइहै साँझे मुरगी मारै ॥
हिंदू दया मेहर को तुरुकन दोनों घट सों त्यागी ।
वै हलाल वै झटका मारैं आगि दुनों घर लागी ॥
हिंदु तुरुक की एक राह है सतगुरु इहै बताई ।
कहहि कबीर सुनो हो संतो राम न कहेउ खोदाई ॥१८३॥

राम गाइ औरन समुझावै हरि जाने बिन बिकल फिरै ।
जा मुख बेद गयत्री उचरै जासु बचन संसार तरै ।
जाके पाँव जगत उठि लागै सो ब्राह्मन जिउ बद्ध करै ।
अपने ऊँच नीच घर भोजन घृणित करम करि उदर भरै ।
कृष्ण अमावस ढुकि ढुकि मगै कर दीपक लै कूप परै ।
एकादसी ब्रतौ नहिं जानै भूत प्रेत हठि हृदय धरै ।
तजि कपूर गाँठी बिख बाँधे ज्ञान गमाए मुग्ध फिरै ।
छीजै साधु चोर प्रतिपालै संत जनन भी कूट करै ।
कह कबीर जिह्वा के लंपट एहि बिधि प्रानी नरक परै ॥१८४॥

राम न रमसि कौन दँड लागा । मरि जैहै का करहि अभागा ॥
कोई तीरथ कोइ मुंडित केसा । पाखंड भरम मंत्र उपदेसा ॥
बिद्या बेद पढ़ि करे हँकारा । अंत काल मुख फाँकै छारा ॥

दुखित सुखित सब कुटुँब जेंवइबे । मरन बेर अकसर दुख पइबे ।।
कह कबीर यह कलि है खोटी । जो रह करवा निकसल टोटी ।।१८५।।

हरि बिनु भरम बिगुर बिनु गंदा ।
जहँ जहँ गए अपनपौ खोए तेहि फंदे बहु फंदा ।।
योगी कहै योग है नीको दुतिया और न भाई ।
चुंडित मुंडित मौन जटा धरि तिनहुँ कहाँ सिध पाई ।।
ज्ञानी गुनी सूर कवि दाता ये जो कहहिं बड़ हमहीं ।
जहँ से उपजे तहँहिं समाने छूटि गए सब तबहीं ।।
बाएँ दहिने तजो बिकारै निजु कै हरि पद गहिए ।
कह कबीर गूँगे गुड़ खाया पूछै सो का कहिए ।।१८६।।

जस माँस नर का, तस माँस पशु का, रुधिर रुधिर एक सारा जी ।
पसु का माँस भखै सब कोई, नरहिं न भखै सियारा जी ।।
ब्रह्म कुलाल मेदिनी भरिया उपजि बिनस कित गइया जी ।
माँस मछरिया जो पै खावै जौ खेतन में बोइया जी ।।
माटी को करि देवी देवा जीव काटि कटि देइया जी ।
जो तेरा है साँचा देवा खेत चरत किन लेइया जी ।।
कहत कबीर सुनो हो संतो राम नाम नित लैया जी ।
जो कुछ किय जिह्वा के स्वारथ बदल परारा दैया जी ।।१८७।।

भूला बे अहमक नादाना तुम हर दम रामहिं न जाना ।
बरबस आनि कै गाय पछारा गला काटि जिउ आप लिया ।।
जीता जिउ मुरदा करि डारै तिसको कहत हलाल किया ।
जाहि माँस को पाक कहत हैं ताकी उतपति सुनु भाई ।।

रज वीरज सो माँस उपानी माँस न पाक जो तुम खाई ।
अपनो दोख कहत नहिं अहमक कहत हमारे बड़न किया ॥
उनका खून तुम्हारी गरदन जिन तुमको उपदेस दिया ।
स्याही गई सफेदी आई दिल सफेद अजहूँ न हुआ ॥
रोजा नेवाज बाँग क्या कीजै हुजरे भीतर बैठ मुआ ।
पंडित बेद पुरान पढ़ै औ मौलाना पढ़ै कुराना ॥
कह कबीर वे नरक गए जिन हर दम रामहिं ना जाना ॥१८८॥

आओ वे मुझ हरि को नाम । और सकल तजु कौने काम ॥
कहँ तब आदम कहँ तब हौआ । कहँ तब पीर पैगंबर हूआ ॥
कहँ तब जमीं कहाँ असमाना । कहँ तब वेद किताब पुराना ॥
जिन दुनिया में रची मसीद । झूठा रोजा झूठो ईद ॥
साँच एक अल्ला को नाम । ताको नय नय करो सलाम ॥
कहुधौं भिस्त कहाँ ते आई । किसक हेतु तुम छुरी चलाई ॥
करता किरतिम बाजी लाई । हिंदु तुरुक दुइ राह चलाई ॥
कहँ तब दिवस कहाँ तब राती । कहँ तब किरतिम की उतपाती ॥
नहिं वाके जाति नहीं वाके पाँती । कह कबीर वाके दिवस न राती ॥ १८९ ॥

आसन पवन किए दृढ़ रहु रे । मन को मैल छाँड़ि दे बौरे ॥
क्या शृंगी मूड़ा चमकाए । क्या बिभूति सब अंग लगाए ॥
क्या हिंदू क्या मूसलमान । जाको साबित रहै इमान ॥
क्या जो पढ़िया वेद पुरान । सो ब्राह्मण बूझै ब्रह्मज्ञान ॥
कह कबीर कछु आन न कीजै । रामनाम जपि लोहा लीजै॥१९०॥

क्या नाँगे क्या बाँधे चाम । जो नहिं चीन्है आतम राम ॥
नाँगे फिरे योग जो होई । बन को मृग मुकुत गो कोई ॥
मूड़ मुड़ाए जो सिधि होई । मूँड़ी भेड़ मुक्त किन कोई ॥
बिद राखे जो खेलहिं भाई । खुसरे कौन परम गति पाई ॥
पढ़े गुने उपजै हंकारा । अध धर बूड़े वार न पारा ॥
कहे कबीर सुनो रे भाई । राम नाम बिन किन सिधि पाई ॥१९१॥
अस चरित देख मन भ्रमै मोर । तातें निस दिन गुन रमों तोर ॥
एक पढ़हिं पाठ एक भ्रम उदास । एक नगम निरंतर रह निवास ॥
एक जोग जुगुत तन होहि खीन । एक राम नाम सँग रहत लीन ॥
एक होंहि दीन एक देहिं दान । एक कलपि कलपि कै हों हरान ॥
एक तंत्र मंत्र औखधी बान । एक सकल सिद्धि राखैं अपान ॥
एक तीरथ व्रत करि काया जीति । एक राम नाम सों करत प्रीति ॥
एक धूम घोटि तन होहिं श्याम । तेरी मुक्ति नहीं बिन राम नाम ॥
सतगुरु शब्द तोहि कह पुकार । अब मूल गहो अनुभव विचार ॥
मैं जरा मरण ते भयउँ थीर । भै राम कृपा यह कह कबीर ॥१९२॥
संतो राम नाम जो पावैं । तो वे बहुर न भव जल आवैं ॥
जंगम तो सिद्धिहि को घावैं । निसि बासर शिव ध्यान लगावैं ॥
शिव शिव करत गए शिव द्वारा । राम रहे उनहूँ ते न्यारा ॥
जंगम जीव कबौं नहीं मारैं । पढ़ैं गुनैं नहिं नाम उचारैं ॥
कायहि को थापैं करतारा । राम रहै उनहूँ ते न्यारा ॥
पंडित चारो बेद बखानैं । पढ़ैं गुनैं कछु भेद न जानैं ॥
संध्या तरपन नेम अचारा । राम रहै उनहूँ ते न्यारा ॥

सिद्ध एक जो दूध अधारा । काम क्रोध नहिं तजै बिकारा ।।
खोजत फिरै राज को द्वारा । राम रहै उनहूँ ते न्यारा ।।
बैरागी बहु बेख बनावैं । करम धरम की जुगुत लगावैं ।।
घंट बजाय करैं झनकारा । राम रहै उनहूँ ते न्यारा ।।
जोगी एक जोग चित धरहीं । उलटे पवन साधना करहीं ।।
जोग जुगुत लै मन में धारा । राम रहे उनहूँ ते न्यारा ।।
तपसी एक जो तन को दहई । बस्ती त्यागि जँगल में रहई ।।
कंद मूल फल करे अहारा । राम रहै उनहूँ ते न्यारा ।।
मौनी एक जो मौन रहावैं । और गाँव में धुनी लगावैं ।।
दूध पूत दै चले लबारा । राम रहै उनहूँ ते न्यारा ।।
यती एक बहु जुगत बनावैं । पेंट कारने जटा बढ़ावैं ।।
निसि बासर जो जो कर हंकारा । राम रहै उनहूँ ते न्यारा ।।
पक्कर लै जिउ जबह कराहीं । मुख ते सबतर खुदा कहाहीं ।।
लै कुतका कहैं दंम मदारा । राम रहै उनहूँ ते न्यारा ।।
कहै कबीर सुनो टकसारा । सार सब्द हम प्रगट पुकारा ।।
जो नहिं मानहिं कहा हमारा । राम रहै उनहूँ ते न्यारा ।।१९३।।

सुनता नहीं धुन की खबर, अनहद बाजा बाजता ।
रसमंद मंदिर गाजता, बाहर सुने तो क्या हुआ ।।
गाँजा अफीमो पोस्ता, भाँग औ शराबें पीवता ।
इक प्रेमरस चाखा नहीं, अमली हुआ तो क्या हुआ ।।
कासी गया औ द्वारिका, तीरथ सकल भरमत फिरै ।
गाँठी न खोली कपट की, तीरथ गया तो क्या हुआ ।।

पोथी किताबें बाँचता, औरों को नित समझावता।
त्रिकुटी महल खोजै नहीं, बक बक मरा तो क्या हुआ॥
काजी किताबें खोजता, करता नसीहत और को।
महरम नहीं उस हाल से, काजी हुआ तो क्या हुआ॥
सतरंज चौपड़ गंजिफा, इक नर्द है बदरंग की।
बाजी न लाई प्रेम की, खेला जुआ तो क्या हुआ॥
जोगी दिगंबर से बड़ा, कपड़ा रँगे रँग लाल से।
वाकिफ नहीं उस रंग से, कपड़ा रँगे से क्या हुआ॥
मंदिर झरोखे रावटी, गुल चमन में रहते सदा।
कहते कबीरा हैं सही, घट घट में साहब रम रहा॥१६४॥

जिन के नाम ना है हिए।
क्या होवै गल माला डाले कहा सुमिरनी लिए॥
क्या होवै पुस्तक के बाँचै कहा संख-धुनि किए।
क्या होवै कासी में बसि कै क्या गंगाजल पिए॥
होवै कहा बरत के राखे कहा तिलक सिर दिए।
कहैं कबीर सुनो भाई साधो जाता है जम लिए॥१६५॥

अरे इन दोउन राह न पाई।
हिंदू अपनी करै बड़ाई गागर छुवन न देई॥
बेस्या के पायन तर सोवै यह देखो हिंदुआई।
मुसलमान के पीर औलिया मुरगी मुरगा खाई॥
खाला केरी बेटी ब्याहैं घरहि में करैं सगाई।
बाहर से इक मुर्दा लाए धोय धाय चढ़वाई॥

सब सखियाँ मिलि जेवन बैठीं घर भर करैं बड़ाई ।
हिंदुन की हिंदुआई देखी तुरकन की तुरकाई ।।
कहैं कबीर सुनो भाई साधौ कौन राह है जाई ।।१९६।।

अवधू भजन भेद है न्यारा ।

क्या गाए क्या लिखि बतलाए क्या भरमे संसारा ।
क्या संध्या तरपन के कीन्हे जो नहिं तत्त बिचारा ।।
मूँड़ मुँड़ाए जटा रखाए क्या तन लाए छारा ।
क्या पूजा पाहन की कीन्हे क्या फल किए अहारा ।।
बिन परचै साहब होइ बैठे करै बिषय ब्योपारा ।
ज्ञान ध्यान का मरम न जाने बाद करै हंकारा ।।
अगम अथाह महा अति गहिरा बीजन खेत निवारा ।
महा सो ध्यान मगन है बैठे काट करम की छारा ।।
जिनके सदा अहार अँतर में केवल तत्त बिचारा ।
कहत कबीर सुनो हो गोरख तरैं सहित परिवारा ।।१९७।।

मन न रँगाए रँगाए जोगी कपरा । आसन मारि मँदिर में बैठे नाम छाँड़ि पूजन लगै पथरा । कनवा फड़ाय जोगी जटवा बढ़ौलैं दाढ़ी बढ़ाय जोगी होइ गैलैं बकरा । जंगल जाय जोगी धुनिया रमौलैं काय जराय जोगी बनि गैलैं हिजरा । मथवा मुँड़ाय जोगी कपड़ा रँगौलैं गीता बाँच के होइ गैलें लबरा । कहत कबीर सुनो भाई साधो जम दरवजवाँ बाँधल जैबे पकरा ।। १९८ ।।

साधो भजन भेद है न्यारा ।
का माला मुद्रा के पहिरे चंदन घँसे लिलारा ।
मूँड़ मुँड़ाए जटा रखाए अंग लगाए छारा ॥
का पानी पाहन के पूजे कंदमूल फरहारा ।
कहा नेम तीरथ व्रत कीन्हे जो नहिं तत्त बिचारा ॥
का गाए का पढ़ि दिखलाए का भरमे संसारा ।
का संध्या तरपन के कीन्हे का षट करम अचारा ॥
जैसे बधिक ओट टाटी के हाथ लिये बिख चारा ।
यों वक-ध्यान धरै घट भीतर अपने अंग बिकारा ॥
दै परचै स्वामी होइ बैठैं करैं विषय व्यवहारा ।
ज्ञान ध्यान को मरम न जानैं बाद करैं निःकारा ॥
फूँके कान कुमति अपने से बोझ लिए सिर भारा ।
बिन सतगुरु गुरु केतिक वहिगे लोभ लहर की धारा ॥
गहिर गँभीर पार नहिं पावै खंड अखँड से न्यारा ।
दृष्टि अपार चलन को सहजै कटै भरम कै जारा ॥
निर्मल दृष्टि आतमा जाकी साहब नाम अधारा ।
कहत कबीर वही जन आवै तैं मैं तजै त्रिकारा ॥ १९९ ॥
भेख लो देख के कोई भूलो मती भेख पहिरे कोई सिद्ध नाहीं ।
काम औ क्रोध मद लोभ माहीं सने सील औ साँच संतोख नाहीं ॥
कपट के भेख ते काज सीझै नहीं कपट के भेख नहि राम राजी ।
कहत कब्बीर इक साँच करनी बिना काल की चोट सिर
खायगा जी ॥ २०० ॥

संसार-असारता

बिनसै नाग गरुड़ गलि जाई। बिनसै कपटी औ सतभाई॥
बिनसै पाप पुन्न जिन कीन्हा। बिनसै गुन निरगुन जिन चीन्हा॥
बिनसै अग्नि पवन अरु पानी। बिनसै सृष्टि जहाँ लौं गानी॥
बिश्नुलोक बिनसैं छिन माँहीं। हो देखा परलय की छाँही॥

मच्छ रूप माया भई यमरा खेल अहेर।
हरि हर ब्रह्म न ऊबरे सुर नर मुनि केहि केर॥ २०१ ॥

गए राम औ गे लछमना। संग न गै सीता अस धना॥
जात कौरवन लाग न बारा। गए भोज जिन साजल धारा॥
गे पाँडव कुंती सी रानी। गे सहदेव सुमति जिन ठानी॥
सरब सोन कै लंक उठाई। चलत बार कछु संग न लाई॥
कुरिया जासु अंतरिछ छाई। चलत बार कछु संग न लाई॥
मूरख मानुख अधिक सँजोवै। अपना मुवल और लगि रोवै॥
ई न जान अपनौ मरि जैबे। टका दस बिढ़ैं और लै खैबे॥

अपनी अपनी करि गए लगी न केहु के साथ।
अपनी करि गयो रावना अपनी दसरथ नाथ॥२०२॥

मानुख जन्म चुके जम माँझी। एहि तन केर बहुत हैं साँझी॥
तात जनति कह हमरो बाला। स्वारथ लागि कीन्ह प्रतिपाला॥
कामिनि कहै मोर पिय आही। बाघिनि रूप गरासै चाही॥
पुत्र कलत्र रहैं लव लाए। जंबुक नाईं रहि मुँह बाए॥
काकगीध दोउ मरन बिचारैं। स्यार स्वान दोउ पंथ निहारैं॥

धरती कहै मोहिं मिलि जाई । पवन कहै मैं लेब उड़ाई ॥
अग्नि कहै मैं ई तन जारों । स्वान कहै मैं जरत उबारों ॥
जेहि घर को घर कहै गँवारे । सो बैरी है गले तुम्हारे ॥
सो तन तुम आपन कै जानी । बिषय स्वरूप भूलि अज्ञानी ॥
इतने तन के साँझिया जनमों भर दुख पाय ।
चेतत नाहीं बावरे मोर मोर गोहराय ॥ २०३ ॥

भूला लोग कहै घर मेरा ।
जा घरवा में फूला डोलै सो घर नाहीं तेरा ॥
हाथी घोड़ा बैल बाहना संग्रह कियो घनेरा ।
बस्ती में से दियो खदेरा जंगल कियो बसेरा ॥
गाँठी बाँधी खरच न पठयो बहुार कियो नहिं फेरा ।
बीबी बाहर हरम महल में बीच मियाँ को डेरा ॥
नौ मन सूत अरुझि नहिं सूझै जनम जनम अरुझेरा ।
कहत कबीर सुनो हो संतो यह पद करो निबेरा ॥२०४॥
जो देखा सो दुखिया देखा तनु धरि सुखी न देखा ।
उदय अस्त की बात कहत हौं ताकर करहु विवेखा ॥
बाटे बाटे सब कोइ दुखिया क्या गिरही बैरागी ।
शुक्राचार्य्य दुखही के कारन गरभै माया त्यागी ॥
जोगी दुखिया जंगम दुखिया तापस को दुख दूना ।
आशा तृष्णा सब घट ब्यापै कोइ महल नहिं सूना ॥
साँच कहो तो सब जग खीझै झूठ कह्यो नहिं जाई ।
कह कबीर तेई भे दुखिया जिन यह राह चलाई ॥२०५॥

अब कहँ चले अकेले मीता । उठि किन करहु घरहु की चिंता ॥
खीर खाँड़ घृत पिंड सँवारा । सो तन लै बाहर करि डारा ॥
जेहि सिर रची रचि बाँध्यो पागा ।
सो सिर रतन बिदारहिं कागा ॥
हाड़ जरै जस लकड़ी झूरी । केस जरै जस तून कै कूरी ॥
आवत संग न जात को साथी । काह भयो दल साजे हाथी ॥
माया को रस लेइ न पाया । अंतर जम बिलार ह्वै धाया ॥
कह कबीर नर अजहुँ न जागा । यम को मोगरा धमसिर लागा ॥२०६॥
राम नाम भजु राम नाम भजु चेति देखु मन माँहीं हो ।
बच्छ करोर जोरि धन गाड़े चले डोलावत बाँहीं हो ॥
दाऊ दादा औ परपाजा उह गाड़े भुइँ भाँड़े हो ।
अँधरे भए हियौ की फूटो तिन काहैं सज छाँड़े हो ॥
ई संसार असार को धंधा अंत काल कोइ नाहीं हो ।
उपजत बिनसत बार न लागै ज्यों बादर की छाँहीं हो ॥
नाता गोता कुल कुटुम्ब सब तिनकी कवनि बड़ाई हो ।
कह कबीर एक राम भजे बिन बूड़ो सब चतुराई हो ॥२०७॥
ऐसन देह निरापन बौरे मुए छुवै नहिं कोई हो ।
डंडक डोरवा तोर ले आइन जो कोटिक धन होई हो ॥
ऊरध स्वासा उपजत त्रासा हँकराइन परिवारा हो ।
जो कोई आवै बेग चलावै पल एक रहन न हारा हो ॥
चंदन चूर चतुर सब लेपैं गल गजमुकता हारा हो ।
चोंथन गीध मुए तन लूटैं जंबुक आदर फारा हो ॥

कहत कबीर सुनो हो संतो ज्ञान-हीन मति हीना हो ।
एक एक दिन यह गति सबही की कहा राव का दीना हो ।।२०८।।

फूला फूला फिरै जगत में रे मन कैसा नाता रे ।
मात कहै यह पुत्र हमारा बहिन कहै बिर मेरा ।
कहै भाइ यह भुजा हमारी नारि कहै नर मेरा ।।
पेट पकरि कै माता रोवै बाँह पकरि कै भाई ।
लपटि झपटि कै तिरिया रोवै हंस अकेला जाई ।।
जब लग जीवै माता रोवै बहिन रोवै दस मासा ।
तेरह दिन तक तिरिया रोवै फेर करै घर बासा ।।
चार गजी चरगजी मँगाया चढ़ा काठ की घोरी ।
चारों कोने आग लगाया फूँक दिया जस होरी ।।
हाड़ जरै जस लाकड़ी केस जरे जस घासा ।
सोना ऐसी काया जरि गई कोई न आया पासा ।।
घर की तिरिया रोवन लागी ढूँढ़ फिरी चहुँ देसा ।
कहत कबीर सुनो भाई साधो छाँड़ो जग की आसा ।।२०९।।

रहना नहिं देस बिराना है ।
यह संसार कागद की पुड़िया बूँद पड़े घुल जाना है ।
यह संसार काँट की बाड़ी उलझ पुलझ मरि जाना है ।।
यह संसार झाड़ औ झाँखर आग लगे बरि जाना है ।
कहत कबीर सुनो भाई साधो सतगुरु नाम ठिकाना है ।।२१०।।

जियरा जावगे हम जानी ।
पाँच तत्त को बनो पींजरा जामें वस्तु बिरानी ।

आवत जावत कोइ न देखो डूबि गयो बिन पानी ॥
राजा जैहैं रानी जैहैं औ जैहैं अभिमानी।
जोग करंते जोगी जइहैं कथा सुनंते ज्ञानी ॥
पाप पुन्न की हाट लगी है धरम दंड दरबानी।
पाँच सखी मिलि देखन आईं एक से एक सयानी ॥
चंदौ जइहैं सुरजौ जइहैं जइहैं पवनो पानी।
कह कबीर इक भक्त न जइहैं जिनकी मति ठहरानी ॥२११॥

मन तू क्यों भूला रे भाई। सुध बुध तेरी कहाँ हेराई॥
जैसे पंछी रैन बसेरा बसै बिरिछ पर आई।
भोर भए सब आपु आपु को जहाँ तहाँ उड़ि जाई ॥
सुपने में तोहि राज मिल्यो है हाकिम हुकुम दोहाई।
जागि पर्यो तब लाव न लसकर पलक खुले सुधि पाई ॥
मात पिता बंधूसुत तिरिया ना कोइ सगो सगाई।
यह तो सब स्वारथ के संगी झूठी लोक बड़ाई ॥
सागर माँही लहर उठत है गनिता गनी न जाई।
कहत कबीर सुनो भाई साधो दरिया लहर समाई ॥२१२॥

मानत नहिं मन मोरा साधो, मानत नहिं मन मोरा रे।
बार बार मैं कहि समुझावौं जग में जीवन थोरा रे ॥
या काया को गरब न कीजै क्या साँवर क्या गोरा रे।
बिना भक्ति तन काम न आवै कोटि सुगंध चभोरा रे॥
या माया लख के मत भूलो क्या हाथी क्या घोरा रे।
जोरि जोरि धन बहुत बिगूचे लाखन कोटि करोरा रे ॥

दुबिधा दुरमति औ चतुराई जनम गयो नर बौरा रे ।
अजहूँ आनि मिला सत संगति सतगुरु मान निहोरा रे ॥
खेत उठाइ परत भुइँ गिरि गिरि ज्यों बालक बिन कोरा रे ।
कहत कबीर चरन चित राखो ज्यों सूई बिच डोरा रे ॥२१३॥
खलक सब रैन का सपना । समझ मन कोइ नहिं अपना ॥
कठिन यह मोह की धारा । बहा सब जात संसारा ॥
घड़ा जो नीर का फूटा । पता जो डार से टूटा ॥
अइस नर जाति जिंदगानी । अबहुँ लग चेत अभिमानी ॥
भुलो मत देख तन गोरा । जगत में जीवना थोरा ॥
तजो मद लोभ चतुराई । रहो निहसंक जग माँहीं ॥
निकस जब प्रान जावैंगे । कोई नहिं काम आवैंगे ॥
सजन परिवार सुत दारा । उसी दिन होयँगे न्यारा ॥
अइस नर जान यह देहा । लगा ले नाम से नेहा ॥
कटै जम-जाल की फाँसी । कहै कब्बीर अबिनासी ॥२१४॥
का माँगों कछु थिर न रहाई । देखत नैन चलो जाई ।
इक लख पूत सवा लख नाती । तेहि रावन घर दिया न बाती ॥
लंका सी कोट समुद्र सी खाई । तेहि रावन की खबरि न पाई ॥
सोने कै महल रूपे कै छाजा । छोड़ि चले नगरी के राजा ॥
कोइ कर महल कोइ कर टाटी । उड़ि जाय हंस पड़ा रह माटी ॥
आवत संग न जात सँगाती । कहा भए दल बाँधे हाथी ॥
कहै कबीर अंत की बारी । हाथ झारि ज्यों चला जुआरी॥२१५॥

अंतिम दृश्य

सुगवा पिंजरवा छोरि भागा ।
इस पिंजरे में दस दरवाजा दस दरवाजे किवरवा लागा ॥
अँखियन सेती नीर बहन लाग्यो अब कस नाहिं तू बोलत अभागा ।
कहत कबीर सुनो भाई साधो उड़िगो हंस टूटि गयो तागा ॥२१६॥

कौन ठगवा नगरिया लूटल हो ।
चंदन काठ कै बनत खटोलना तापर दुलहिन सूतल हो ॥
उठो सखी मोर माँग सँवारो दुलहा मोसे रूसल हो ।
आए जमराज पलँग चढ़ि बैठे नैनन आँसू टूटल हो ॥
चारि जने मिलि खाट उठाइन चहुँ दिसि धूधू ऊठल हो ।
कहत कबीर सुनो भाइ साधो जग से नाता छूटल हो ॥२१७॥

हम काँ ओढ़ावे चदरिया, चलती बिरियाँ ।
प्रान राम जब निकसन लागे उलट गई दोउ नैन पुतरिया ।
भीतर से जब बाहर लाए छूट गई सब महल अटरिया ॥
चार जने मिलि खाट उठाइन रोवत ले चले डगर डगरिया ।
कहत कबीर सुनो भाइ साधो संग चली वह सूखी लकरिया ॥२१८॥

अहंभाव

रमैया की दुलहिन लूटा बजार ।
सुरपुर लूट नागपुर लूटा तीन लोक मचा हाहाकार ॥
ब्रह्मा लूटे महादेव लूटे नारद मुनि के परी पिछार ।
सिंगी की मिंगी करि डारी पारासर कै उदर बिदार ॥

कनफूँका चिदकासी लूटे लूटे जोगेसर करत बिचार ।
हम तो बचिगे साहब दया से सब्द डोर गहि उतरे पार ॥
कहत कबीर सुनो भाई साधो इस ठगनी से रहो हुसिआर ॥२१९॥
जब हम रहल रहा नहि कोई । हमर माँह रहल सब कोई ॥
कहहु सो राम कौन तोर सेवा । सो समुझाय कहो मोहिं देवा ॥
फुर फुर कहो मारु सब कोई । झूठे झूठा संगति होई ॥
आँधर कहै सबै हम देखा । तहँ दिठियार पैठि मुँह पेखा ॥
एहि विधि कहौं मानु सब कोई । जस मुख तस जो हृदया होई ॥
कहत कबीर हंस मुकुताई । हमरे कहले छूटिहौ भाई ॥२२०॥
हम न मरैं मरिहैं संसारा । हमको मिला जिआवन-वारा ॥
अब ना मरों मोर मन माना । सोइ मुवा जिन राम न जाना ॥
साकत मरैं संत जन जीवैं । भरि भरि राम रसायन पीवैं ॥
हरि मरिहैं तो हमहूँ मरिहैं । हरि न मरैं हम काहे को मरिहैं ॥
कह कबीर मन मनहिं मिलावा । अमर भए सुख सागर पावा ॥२२१॥

जहँवा से आयो अमर वह देसवा ।
पानी न पौन न धरति अकसवा ॥
चाँद न सूरज न रैन दिवसवा ।
बाम्हन छत्रि न सूद्र बयसवा ॥
मुगल पठान अरु सैय्यद सेखवा ।
आदि जोति नहिं गौर गनेसवा ॥
ब्रह्मा विष्णु महेस न सेसवा ।
जोगि न जंगम मुनि दरवेसवा ॥

आदि न अंत न काल-कलेसवा ।
दास कबीर ले आए सँदेसवा ॥
सार सब्द नहिं चलु वोहि देसवा ॥ २२२ ॥

झीनी झीनी बीनी चदरिया ।
काहे कै ताना काहे कै भरनी कौन तार से बीनी चदरिया ॥
इँगला पिंगला ताना भरनी सुषमन तार से बीनी चदरिया ।
आठ कँवल दल चरखा डोलै पाँच तत्त गुन तीनी चदरिया ॥
साँई को सियत मास दस लागे ठोक ठोक के बीनी चदरिया ।
सो चादर सुर नर मुनि ओढ़े ओढ़ि के मैली कीनी चदरिया ।
दास कबीर जतन से ओढ़ी ज्यों की त्यों धर दीनी चदरिया ॥२२३॥

तोर हीरा हेराइल वा कचरे में ।
कोइ पूरब कोइ पच्छिम ढूँढ़ै कोइ ढूँढ़ै पानी पथरे में ॥
सुर नर मुनि अरु पीर औलिया सब भूलल बाड़ें नखरे में ।
साहब कबीर हिरा यह परखैं बाँध लिहलै लँगोटी के अँचरे में॥२२४॥

धुँधमई का मेला नाहीं नहीं गुरू नहिं चेला ।
सकल पसारा जेहि दिन माँहीं जेहि दिन पुरुष अकेला ॥
गोरख हम तब के बैरागी, हमरी सुरति नाम से लागी ।
ब्रह्मा नहिं जब टोपी दीन्हा, बिश्नु नहीं जब टीका ॥
शिव सक्ती के जनमौ नाँहीं, जबै जोग हम सीखा ।
सतजुग में हम पहिरि पाँवरी त्रेता झोरी झंडा ॥
द्वापर में हम अड़बँद पहिरा कलउ फिरौं नव खंडा ।
कासी में हम प्रगट भए हैं, रामानंद चेताए ॥

समरथ को परवाना लाए, हंस उबारन आए ।
सहजै सहजै मेला होइगा, जागी भक्ति उतंगा ॥
कहैं कबीर सुनो हो गोरख चलो सब्द के संगा ॥२२५॥

पढ़ि पढ़ि पंडित करि चतुराई ।
निज मुक्तो मोहिं कहहुँ बुझाई ॥
कहँ बस पुरुख कवन सो गाऊँ ।
सो मोहि पंडित सुनावहु गाउँ ॥
चार वेद ब्रह्मा निज ठाना ।
मुक्ति कर्म्म उनहूँ नहिं जाना ॥
दान पुन्न उन बहुत बखाना ।
अपने मरन की खबर न जाना ॥
एक नाम है अगम गँभीरा ।
तइँवाँ असथिर दास कबीरा ॥२२६॥

षोड़शोपचार सात्विक पूजा

अगर चँदन घसि चौक पुरावा सत्त सुकृत मन भावा ।
भर झारी चरणामृत कीन्हा हंसन को बतरावा ॥
पूरन मौज और रखवारा सतगुरु शब्द लखावा ।
लौंग लायची नरियर आरति धोती कलस लेसावा ॥
स्वेत सिंहासन अगम अपारा सो अति बर ठहराया ।
छाँड़े लोक अमृत की काया जग में जोलह कहाया ॥
चौरासी की बंदि छोड़ाया निर अच्छर बतलाया ।

साधु सबै मिलि आरति गावैं सुकृत भोग लगाया ।
कहैं कबीर सब्द टकसारा जम सों जीव छोड़ाया ॥२२७॥

पूरनमासी आदि जो मंगल गाइए ।
सत गुरु के पद परसि परम पद पाइए ॥
प्रथमै मँदिर झराइ के चँदन लिआइए ।
नूतन बस्त्र अनेक चँदोव तनाइए ॥
तब पूरन गुरु हेतु असन्न बिछाइए ।
गुरूचरन परछालि तहाँ बैठाइए ॥
गज मोतिन की चौक सु तहाँ पुराइए ।
तापर नरियर धोति मिठाइ धराइए ॥
केरा और कपूर बहुत बिध लाइए ।
अष्ट सुगंध सुपारी पान मँगाइए ॥
पल्लव कलस सँवारि सुज्योति बराइए ।
लाल मृदंग बजाइ कै मंगल गाइए ॥
साधु संग लै आरति तबहिं उतारिए ।
आरति करि पुनि नरियर तबहिं भराइए ॥
पुरुष को भोग लगाइ सखा मिलि खाइए ।
युग युग छुधा बुझाइ तो पाइ अघाइए ॥
परम अनंदित होइ तो गुरुहिं मनाइए ।
कह कबीर सतभाय सो लोक सिधाइए ॥ २२८ ॥

1.